प्रकाशक
वीरेन्द्रकुमार सकसेना बी० ए०
नवयुग ग्रंथ कुटीर
बीकानेर

छः रुपया

प्रथम संस्करण १९५५

प्राक्कथन

घटनाओ, दुर्घटनाओ और अघटनाओ का सकलन है यह उपन्यास। कैसा है, क्या है, क्यो है ? पढकर देखिये और इसका उत्तर अपने हृदय मे टटोलिये । सच और झूठ, तथ्य और अतथ्य के भीतर से समाज तथा जीवन की विडबना अपने सहज रूप मे झाक पा रही है या नही, इसी निर्णय पर इसकी सफलता और विफलता आधारित है ।

— श० द० सकसेना

लेखक के अन्य उपन्यास

बहूरानी	२)
भाभी	२)
ममता	३)
प्रीति की रीति	२॥)

सुख लुटाकर दुखों का ही प्रतिदान जिसने पाया है

उस

अपनी राजरानी को

मगरमच्छ

सकसेना

म ग र म च्छ



भूली भूली सी याद है उस दिन की, एक धुँधला-सा आभास भर मिलता है। सही हो शायद न भी हो।—पर जो बातें अब तक सुनता आया हूँ उनसे यह सूत्र सबद्ध है। इसलिए कह सकता हूँ या मान सकता हूँ कि उस धुँधली स्मृति में भी सचाई का अंश है।—छुट्टी का दिन है कि नहीं, नहीं कह सकता। पर पिताजी घर पर हैं, उनके एक हाथ में हुक्के की निगाली है, दूसरे हाथ से एक बालक को पकड़े हैं। उनके चेहरे पर वात्सल्य की कोमलता नहीं है। एक खीझ है, एक दुख भरी झुँझलाहट है। बालक के लिए इतना ही बहुत है। वह भय से काँप उठा है। पिता की यह मूर्ति उसकी कोमल वय के लिए अपरिचित भी है और असह्य भी। वह काँपता है, और थर-थराता है। वह मुँह से कुछ नहीं कहता, पर अन्तःकरण से अपने आपको धिक्कारता है। इस ओर पिता का ध्यान नहीं है। वे कुपित हैं। बालक को सुधारने की ओर तत्पर हैं।—यद्यपि मैं अब बालक नहीं हूँ परन्तु सुदूर बचपन की यह घटना कभी कभी याद आ ही जाती है।

आज पचीस साल बाद भी वह सब कुछ कठोर सत्य की तरह स्मृति की शिला पर जैसे उभरा हुआ है। उँगलियों के स्पर्श से सहज जाना जा

" पिताजी घर पर हैं ? "

" नहीं। "

" फिर ? "

"पिताजी बकेंगे !"–'मारेंगे' कहने में केदार के सामने हेठी जो होती। इसलिए 'बकेंगे' कहना ही ठीक समझा। केदार ने शब्द से अधिक अर्थ को ग्रहण किया। बोला—नहीं बकेंगे। आओ, आज बड़ा तमाशा है देखो इधर।

केदार ने डोर का एक गुल्ला हथेली पर रखकर हिला दिया। बड़ा-सा नारंगी के बराबर।

" अरे ! इतनी सारी डोर। "

" हाँ, और नहीं तो क्या ? चलो, पतंग उड़ेगी। "

मैं सब कुछ भूल गया। केदार के पीछे हो लिया। हम दोनों बैशाख की दोपहरी की परवाह किये बिना ही छायाहीन खंडहर की शून्यता में गायब हो गये।

आगे का प्रसंग याद नहीं पड़ता। बहुत से स्मृति के लेख धुँधले पड़ गये हैं। शायद दोनों के सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि खाली डोर से क्या होगा ? पतंग भी तो चाहिए। उस दिन जलेबियाँ न खाकर मैंने दोनों पैसों की पतंग उड़ा डाली। उड़ा भी कहाँ डाली ! मैं तो पतंग उड़ाना नहीं जानता। केदार ने उड़ाई और मैंने उसका आनन्द लिया। उस दिन दुपहरी कितनी जल्दी बीत गई। पता तब चला, जब गाँठ-गठीली डोर को तोड़ कर पतंग आकाश में उड़ गई और सामनेवाली हथेली ने देखते देखते उसे निगल लिया। केदार 'धत्तेरे की' कहकर रह गया और मैं रुआसा रुआसा सा हो कर दीवाल के सहारे खड़ा रहा।

मैं घर लौट आया। आहत-सा, पीड़ित-सा। घर पर इतना तहलका मचा होगा, यह मैं जानता तो केदार के आश्वासन सुनने में व्यर्थ समय न गँवाया होता।—माने दो आँखों ने इतना मचाया—रह आ गया।

सकता है। वह बालक अब कई बच्चों के पिता की उम्र का हो गया है। आदर, सम्मान और बड़प्पन ने उसके जीवन को ढक लिया है। वह बहुत दूर निकल आया है बहुत दूर।—उस बचपन से बहुत दूर।

कछुए के अंडे, कहाँ और कैसे मिले? अब तक याद नहीं है कि उनका रंग कैसा था? कितने बड़े बड़े थे? घर के पास जो ताल था और उसके किनारे जो वृद्ध जर्जर डाल पात विहीन पीपल का पेड़ था, उसी की जड़ में कहीं मिट्टी की तह के नीचे वे अंडे छिपे पड़े थे।—शायद कछुई अपने शरीर के नीचे दबाये उन्हें सेती थी। उसे हटा कर कैसे उन्हें फोड़ा गया, सो तो याद नहीं। शायद बहिन ने पिताजी से चुगली खाई होगी।

छुनके की निगाली की मार, कछुए के अंडे और केदार का संग—ये तीन बातें हैं। उनकी मीमांसा करता हूँ तो कुछ निर्णय नहीं कर पाता। मैं मातृहीन था, तो केदार पितृहीन। हम दोनों की जोड़ी विधाता ने ही बना दी थी, पर किसी को भी यह साथ पसन्द न था। अच्छा या बुरा कोई भी काम हम दोनों मिलकर करते वही सबको नापसन्द होता। कछुए के अंडों की घटना में केदार का हाथ था या नहीं, याद नहीं। पर उसकी भी मालिश मारी गई। मुझे समझा दिया गया। केदार का संग अवांछित भी है और अनुचित भी।

" पिताजी घर पर हैं ? "

" नहीं। "

" फिर ? "

"पिताजी बकेंगे।"–'मारेंगे' कहने में केदार के सामने हेठी जो होती। इसलिए 'बकेंगे' कहना ही ठीक समझा। केदार ने शब्द से अधिक अर्थ को ग्रहण किया। बोला–नहीं बकेंगे। आओ, आज बड़ा तमाशा है देखो इधर।

केदार ने डोर का एक गुल्ला हथेली पर रखकर दिखा दिया। बड़ा-सा नारंगी के बराबर।

" अरे! इतनी सारी डोर! "

" हाँ, और नहीं तो क्या? चलो, पतंग उड़ेगी। "

मैं सब कुछ भूल गया। केदार के पीछे हो लिया। हम दोनों वैशाख की दोपहरी की परवाह किये बिना ही छायाहीन खंडहर की शून्यता में गायब हो गये।

आगे का प्रसंग याद नहीं पड़ता। बहुत से स्मृति के क्षेत्र धुँधले पड़ गये हैं। शायद दोनों के सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि खाली डोर से क्या होगा? पतंग भी तो चाहिए। उस दिन अलेधियों न खाकर मैंने दोनों पैसों की पतंग उड़ा डाली। उड़ा भी कहाँ डाली? मैं तो पतंग उड़ाना नहीं जानता। केदार ने उड़ाई और मैंने उसका आनन्द लिया। उस दिन दुपहरी कितनी जल्दी बीत गई। पता तब चला, जब गाँठ-गठीली डोर को तोड़ कर पतंग आकाश में उड़ गई और सामनेवाली हवेली ने देखते देखते उसे निगल लिया। केदार 'धत्तेरे की' कहकर रह गया और मैं रुआसा-रुआसा सा हो कर दीवाल के सहारे खड़ा रहा।

मैं घर लौट आया। आहत-सा, पीड़ित-सा। घर पर इतना तहलका मचा होगा, यह मैं जानता तो केदार के आश्वासन सुनने में व्यर्थ समय न गँवाया होता।—सारे हो आओ ने दरवाजा मचाया—रह का गया।

भाभी, रमेश यह आ गया ! फिर मेरे पास आकर पूछने लगी— अरे कहाँ गया था रमेश ?

एक एक करके सबने यही प्रश्न किया। मैं भौचक रह गया। आखिर ऐसी क्या बात हुई जो मेरी तलाश, इस तरह सशक्त होकर करने की आवश्यकता पड़ी ? जीजी अपनी सहेलियों में घंटों बिता आती है। भाभी का दरबार सुबह से शुरू होकर तीसरे पहर समाप्त होता है। फिर क्या कारण है कि मैं ही व्यक्ति के मौलिक स्वत्व से वंचित किया जाऊँ ? मैंने उत्तर न देना ही मुनासिब समझा। किसी को कुछ नहीं कहा। अपने में ही गुमसुम हो रहा।

शाम हुई। बड़े भैया के सामने पेशी हुई। वहाँ भी मैं गरदन झुकाए खड़ा रहा, बोला नहीं। जीजी पेशकार का काम कर रही थीं। बोलीं —भैया रमेश के पास पैसे थे। उनका भी पता नहीं क्या कर आया ?

मैं बच गया।—छोटा बच्चा है। पैसे गिर गये होंगे—भैया का यह फैसला सुनकर मैं फूट पड़ा। सिसक-सिसक कर रोने लगा।

जीजी ने शायद मेरे मन की बात परख ली, बोलीं—केदार छोटे बच्चों को बहकाकर उनके पैसे ले लेता है। देखो, तुम्हारे पैसे लेकर पतङ्ग उड़ा डाली।—अबकी बार मिठाई खा जायगा।

इस उपदेश से समाधान नहीं हुआ। मौका मिलते ही मैंने केदार को मिठाई खाने के लिए पैसे दे दिए। आप भूखा फिरता रहा। यह सोचने पर भी नहीं सोच पाया कि इसी से केदार बुरा लड़का है, इसीसे मैं भी उसकी बुराई सीख रहा हूं।

मैं बीमारी से उठा था। पूरे चार आने लेकर घर से बाहर निकला था। मैं भी अब कुछ कुछ मान गया था कि केदार धूर्त है। उसे पैसे नहीं देने चाहिए। पर केदार जैसे मेरी ही ताक में था। झट आगया। आज उसके पास नये खेल का सदेश था। सुन्दर लट्टू और एक लम्बा डोरा। बस, मैं उसके साथ था। मेरे पैसे उसकी जेब में थे। लट्टू आये। बुखार की कमजोरी भूलकर मैं उनके घुमाने में व्यस्त होगया पर लट्टू मेरे हाथ से घूमना न चाहते थे। वे भी केदार के हाथों से प्रेम करते थे। उसकी उँगलियों में कमाल था। मैं उसकी प्रवीणता पर मन्त्रमुग्ध था।

अब मेरे ऊपर सख्त पहरा होगया। राजनैतिक बन्दियों की तरह हर घड़ी मेरी निगरानी की जाती। पैसे न मिलते। घर से बाहर निकलने की मुमानियत। जब कभी दो चार मिनट के लिए भी अकेला होता, तो उसी दरम्यान केदार मुझे अपनी दिनचर्या बताकर मेरे शान्त हृदय को आन्दोलित कर जाता। प्राय नित्य ही कोई न कोई योजना लेकर वह आया करता।

मेरा विचार है, मेरे पैसों का स्रोत बन्द हो जाने से केदार को नई नई योजनाएँ सोचनी पड़ीं। एक दिन सुना उसने खुद पतङ्ग बनाना शुरू किया है। छपे हुए कागजों का रजिस्टर घर में पड़ा था। उसी के कुछ पन्ने लेकर उसने कार्य प्रारम्भ किया। परिश्रम किया। सफल हुआ। मैंने भी उसकी उन पतङ्गों को देखा।

और एक दिन नगाड़ेवाली गाड़ी बनाई। डोरा हाथ में लेकर खींचते ही गाड़ी पर रखा हुआ नगाड़ा बजने लगता था। साधारण चीज थी पर मुझे वह कितनी प्यारी लगी—अपने केदार के हाथों की वह कला-कृति।

और एक दिन मिट्टी के खिलौने—हाथी, घोड़े, ऊँट, बन्दर, रथ, बहल, आदमी, औरतें, और न जाने क्या-क्या ?

और एक दिन हरे हरे नरकुल की बाँसुरी। ढेर की ढेर। मेले में लेजाकर सुना पाँच आने नगद उसने बचा लिए।

और एक दिन कागज की फिरकी बनी, रंगबिरंगी। अब तक मैं आह भर कर रह जाता था। आज नहीं रहा गया। एक फिरकी माँग बैठा। एक फिरकी दो पैसे में बिकती थी। लेकिन केदार ने मेरे लिए मना नहीं किया। चुपचाप एक देदी—बिना पैसा लिए ही। मैं गद्गद् हो गया और कुंठित भी।

जब मैं यह बात इस प्रकार नहीं सोच पाया था कि एक अबला की विवशता के सिवा केदार के पीछे कोई बल नहीं था। और यह तथ्य है कि बहुधा यहाँ बल ही गुण कहकर पूजित होता है। पिता के अभाव में, धन के अभाव में अभिभावक के अभाव में गुणों का भी अभाव लोगों को दिखाई पड़ता था। यदि माँ-बाप का कोई भाग्यशाली बेटा इतनी कला-कुशलता दिखा सकता तो उसमें चार चाँद लगे बिना न रहते।

केदार ने मुझे यह सूचना दी कि मैंने दो हंस बनाए हैं। उन्हें तालाब में आज तैराऊँगा, ठीक शाम को चार बजे।

इस समाचार से मैं चंचल हो उठा। तीन बजे ही मैं तमाम बंधनों की उपेक्षा करके घर से निकल भागा। जाकर तालाब के किनारे बैठ गया। भाभी की अठन्नी जीजी ने मेरे कुरते की जेब में डाल दी थी। उसीसे मैं खेलने लगा।

थोड़ी देर में केदार आ पहुंचा। उसके हाथों में दो हंस थे। लगता था कि अभी पर खोलकर उड़ जायेंगे। रुई से बने हुए ये दोनों पक्षी उसने पानी की सतह पर छोड़ दिये। हवा से उठती हुए लहरें तुरन्त ही उन्हें बहा ले चलीं। मैं चिल्ला उठा—ये तैर रहे हैं।

"हाँ, तैर रहे हैं।"

मैंने अठन्नी उसके ऊपर फेंककर कहा—ये हंस तो मैं लूँगा।

तुम पागल हो। तुम इनका क्या करोगे?

"मैं भी इन्हें तैराऊँगा।"

"तुम्हें मैं और बना दूँगा।"

"मैं तो यही लूँगा।"

केदार से छीना-झपटी में मैं तालाब के पानी में जा पड़ा। कपड़े मिट्टी और पानी से सन गये। केदार शंकित हो उठा। हंस मुझे दे दिए। मैं उन्हें गोद में दबाकर घर ले आया।

भाभी की खोई हुई अठन्नी का इन हंसों से सम्बन्ध जोड़कर घर में

जो काण्ड मचा वह दिल दहला देनेवाला था। इस बार बात घर के भीतर तक ही सीमित न रही। केदार की माँ तक पहुच गई। माँ बेटे को मालूम हो गया कि उनका अपराध साधारण नहीं है। अठन्नी उन्हें लाकर वापस देनी पड़ी। इस जुर्माने के रूप में जब्त कर लिए गये। न माँ ने आह निकाली, न बेटे ने। इस सचाई पर किसी को विश्वास नहीं हुआ कि अठन्नी कहीं तालाब में ही गिर गई थी और इस सौदे में केदार को घाटा ही घाटा पल्ले पड़ा। इस गये, घर की अठन्नी गई और सब से अधिक जो जा सकता था वह माँ-बेटे का मान गया। पास पड़ोस में घर घर जो चरचा चल पड़ी उसने उनके मुँह को स्याह कर दिया। यह तो अच्छा था कि उस दशा को छिपाकर रख छोड़ने लायक साज-सामान का उनके पास सर्वथा अभाव था, नहीं तो वे कई दिनों तक किसी को अपना मुँह भी न दिखा सकते। वह शाम किसी तरह कटी और—और सबेरा होते ही पीसने के लिए पाव सेर गेहूँ लाने माँ ने बेटे को सदुकदत्त गुसाईं के घर भेजा। आप साहू तेली की दूकान पर जाकर पैसे का तेल उधार ले आऊँ।

हालत खराब थी। पिताजी सब कुछ भूल गये थे। न कहीं आते थे, न जाते थे। मुझे गोद में लेकर बैठे रहते थे।

यूनानी हकीम का इलाज था। पिताजी ने हकीम साहेब से पूछा—हकीमजी, यह अपने एक साथी का नाम ले-लेकर बहुत पुकारता है। उसे इसके पास बुला देने में कोई हर्ज तो नहीं है?

हकीमजी ने कहा—कोई हर्ज नहीं। आप उसे बुला सकते हैं, लेकिन आप छिप कर नोट करते रहें कि उसके रहने तक हालत कैसी रहती है?

इसके बाद कहते हैं केदार घर से बुलाया गया।—परन्तु एक समस्या और खड़ी हो गई। केदार की माँ ने इनकार कर दिया। जीजी ही तो बुलाने गई थीं। उससे केदार की माँ ने बड़ी दृढ़ निर्भीकता से मना कर दिया। बड़े अभिमान के साथ उसने कहा—मेरा लड़का तुम्हारे यहां नहीं जायगा।

जीजी निरुत्तर लौट आईं। पिताजी सुनकर चुप रहे। केवल इतना कहा—नहीं आता है, न सही।

लेकिन भाभी को यह उत्तर उचित नहीं लगा। वे उबल पड़ीं। घर के द्वार पर खड़ी होकर उस दुखिया के आत्मगौरव के प्रतिकूल एक लंबा भाषण दे डाला। अपने बड़प्पन की ओट में न जाने और क्या क्या कह गईं?

सब कुछ सह लिया गया परन्तु एक 'कलमुँही' का विशेषण सहन न हुआ। अनेक अपशब्दों का आदान-प्रदान प्रारंभ हो गया और अच्छा खासा दंगल हो जाता, यदि पिताजी घर के भीतर न होते। केदार की माँ आज जिस बल के सहारे अबला नहीं है, उसी विशेष बल का प्रयोग करने से वह परास्त नहीं हो सकी। भाभी हार कर घर के भीतर चली आईं।

केदार को इसका पता न लगा हो सो बात नहीं, परन्तु वह आने से रुका नहीं। सन्ध्या समय आया। इस समय मेरा जी शान्त था, तो भी पिताजी केदार को मेरे कमरे में ले आये। मैंने उसे देखा—देखता ही रहा। इसलिए नहीं कि उसे मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता था

बल्कि इसलिए कि आज उसका और मेरा मिलन पिताजी की उपस्थिति में और उनकी इच्छा से हो रहा था। आज कोई भय नहीं था। मुझे प्रतीत हुआ कि केदार भी इस बात को समझ रहा था।

पिताजी ने एक कुर्सी खेंची। उस पर बैठ गये। केदार मेरी चारपाई पर एक किनारे आ बैठा, पूछा—रम्मू भय्यो कैसा जी है?

मने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी ओर देखता भर रहा।

उसने फिर कहा—इतने बीमार हो गये और मुझे खबर ही न दी।

उसका यह उपालम्भ वाजिब था, पर मैं क्या उत्तर देता? मेरा जी भीतर से गद्‌गद् हो गया।

सका। मेरे करवट बदलकर पड़ रहने से उनकी मनोदशा में यह परिवर्तन हुआ, यह जानकर भी मैं विचलित न हुआ। उसी तरह पड़ा रहा।

बहिन ने पूछा—रम्मू भैया, कैसा जी है? उठोगे नहीं? देखो, पिताजी तुम्हारे लिए बाजार से क्या क्या चीजें लाये हैं?

मेरे जी में जरा भी सिर उठाकर देखने की इच्छा न हुई। मैं जानता था, आज प्रातःकाल मैंने ही तो कितनी चीजों की सूची पिताजी को बनवा दी थी। वे अवश्य उनमें से कई ले आये होंगे। बच्चों की बीमारी में पिताजी विशेष रूप से मृदु हो जाते हैं। उस समय उनकी हर तरह की मांग वे पूरी करने का ख्याल रखते हैं। उनका विचार है कि इससे बहुत अच्छा असर पड़ता है।

वह रात पिताजी ने बड़े कष्ट से बिताई। बारबार मेरे ज्वर और मेरी नाड़ी की परीक्षा की। सुबह तक शायद ही आँख लगाई हो।—आज इतने दिनों बाद मुझे अपनी कई नादानियां बुरी तरह चुभती हैं, तब इस घटना की भी याद आ ही जाती है।

मैं नीरोग हुआ। घर से बाहर निकला, तब देखा केदार के घर में ताला पड़ा है। मालूम हुआ, वह अपनी मा के साथ कहीं दूर चला गया है। कुछ बुरा लगा। सब ओर खाली-खाली-सा रहा, पर धीरे धीरे वह अभाव जैसे आप ही भर गया। मैं केदार को भूल गया।

जीवन एक बहती धारा है। जो कुछ प्रवाह में आ पड़ता है वही परिचित हो जाता है। उसी से राग-द्वेष होता है। प्रवाह से विलग होने पर उसकी स्मृति धुँधली पड़ती जाती है। नई दुनिया आती है। नये फूल खिलते हैं, पर नये शीघ्र ही पुराने हो जाते हैं। वर्तमान अतीत बन जाता है। इस प्रकार जीवन-प्रवाह तो सतत प्रवहमान है। किसे मनुष्य प्यार करे? किसे सहेजे, और किसे विस्मृत हो जाने दे?

—

दो

मेरी सखी बिट्टो। यह उसका नाम नहीं, प्यार का सम्बोधन था। मा बाप इसी नाम से पुकारते थे। सुननेवालों को कितना ही कठोर जँचे परन्तु मुझे तो उसके इसी नाम में मिसरी का स्वाद आता।

तड़ित-सी चंचल, तरंग सी चपल, वह बड़े मोतियों का हार गले में पहने वह एकाएक मेरे जीवन के आँगन में आकर खड़ी हो गई। मैंने कब उसे देखा? कब पहचाना? कब प्यार किया? कब गलबहियाँ देकर खेला? यह सब इतना अचानक और अनायास हुआ कि मुझे ही विश्वास नहीं होता।

जीजी का ब्याह होगया। वे अपने घर चली गईं। भाभी प्लेग का शिकार हो गईं। मुझे और बड़े भैया को लेकर पिताजी गाँव से चलकर बुआ के घर पहुँच गये।—और सुबह जब उस गाँव में पहले पहल जागकर मैंने जिसे देखा वह थी बिट्टो। किवाड़ की ओट से थोड़ा सा झाँककर खड़ी मेरे जागने की प्रतीक्षा कर रही थी। मैंने आँखें खोलीं और उसने द्वार से बाहर आकर कहा—तुम कहाँ से आये हो?

मैंने नवागन्तुक भाव से कह दिया—हाँ।

इसका पता लग जाने पर गांव में लोग तहलका मचा देते।

बिट्टो ने पीठ पर लोटती हुई कबरी को उछाल कहा—तुम मेरे साथ बाग में चलोगे। वहा बास के झुरमुट में एक अजगर रहता है।

"अजगर तुमने देखा है?"

"तुमने जो तीरथ देखा है।"

"कैसा तीरथ?"

"कैसा तीरथ, ओ, बड़े आये, ये तीरथ नहीं जानते हैं।"

"तुम तो बुरा मान जाती हो।"

"तो अच्छा कैसे मान जाऊँ? मैं क्या तुम्हारा तीरथ छीने लेती हू।"

"अच्छा-अच्छा, पर तुम्हारा अजगर कहा है?"

"है, कहीं है।"

"कहा, कौन से बाग में?"

"मैं नहीं बताती।"

"नहीं बताओगी?"

"नहीं।"

"मुझे वहा नहीं ले चलोगी।"

"नहीं।"

"तो जाओ यहा से।"

"क्यों जाऊँ? नहीं जाती।"

बिट्टो तनकर खड़ी हो गई। क्रोध से उसका श्यामल चेहरा और भी सुन्दर दिखने लगा। मैंने कहा—मैं जानता हूँ।

"क्या?"

"कि अजगर कहा रहता है।"

"अच्छा बताओ कहा रहता है?"

"बाग में।"

अचरज में आकर बोली—बाग में किस जगह?

"बांस के झुरमुट में।"

आम की फांक की तरह अपनी बड़ी बड़ी आंखों को मेरे चेहरे पर गड़ाये वह स्तब्ध खड़ी रह गई। उसे विश्वास हो गया कि मैं सब कुछ जानता हूं।

क्रोध वह भूल गई। उसने मुझ से सुलह कर ली। वह मुझे अपने साथ-साथ ले गई। अपना घर दिखाया। कहां वह सोती है। कहां उसकी गुड़ियां रक्खी हैं। कहां खिलौने पड़े हैं। कहां उसकी माता बैठकर ठाकुरजी की पूजा करती हैं। कहां उसकी बुढ़िया दादी मरी थी, यह सब उसने एक एक कर मुझे दिखाया। अपनी बूढ़ी दादी की बात कहते कहते वह रो पड़ी। बड़े बड़े आंसू उसके गालों पर ढुलक पड़े। मैंने बड़े स्नेह से अपने कुरते के कोने से उसके आंसू पोंछ दिये और उसे धीरज दिलाते हुए कहा—तुम दादी के लिए रोती हो छिः। दादी तो सब की ही मर जाती है। मेरी दादी भी तो मर गई।

" हां बहुत छोटा, तुम से भी छोटा।"

" तभी तुम्हारी दादी मर गई ?"

" हां, और उसके थोड़े ही दिन बाद अम्मा भी।"

" अम्मा भी क्या ?"

" अम्मा भी मर गई।"

" एं, तुम्हारी अम्मा भी मर गई ?"

" यही तो।"

" तुम्हारी अम्मा मर गई। लोग उन्हें उठकर ले गये ? लकड़ियों पर रख कर जला दिया ?"

" हां।"

" फिर ?"

" कितने ही दिन हो गये।"

इतनी सारी बातें मैं सहज भाव में कह गया। मुझे किसी तरह का कोई आवेग प्रतीत नहीं हुआ। मा को मरे समय हो चुका था। यह बात अब नई न रह गई थी। याद भी धुँधली पड़ चली थी। लेकिन बिट्टो ने यह कह कर उस सोई हुई वेदना को फिर से जगा दिया—राम राम, तुम्हारी अम्मा मर गई। और तुम रोते भी नहीं ?

" मैं रोता हूं, बिट्टो।"

" रोते हो ?"

" हां रोता हूं, जब याद आती है तब रोता हूं।"

" किस बात की याद ?"

" अम्मा की याद।"

" अभी तुम्हें याद नहीं आ रही ?"

" क्यों नहीं ?"

" पर तुम रोते तो नहीं ?"

" मैं लड़का जो हूं।"

" इससे क्या ?"

सोचती हैं कि अपने हृदय को मसोसकर बहुत बेबसी की हालत से उन्होंने यह किया। कुछ यह सोचकर कि वे आलसी हैं। हर समय घर रहकर मेरी देखरेख न कर सकेंगे। नियन्त्रण न रहने से मैं बिगड़ जाऊँगा। —कुछ मेरी लम्बी बीमारी से परेशान होकर। इस तरह मैं उन बुआ की छाया में रह गया जो मेरे ऊपर प्राण निछावर करती थीं, मुझे हृदय से चाहती थीं।

बुआ के कोई सन्तान न थी। इनको मेरी माँ ने उन्हें बचपन से लाड लड़ाया थी। जीजी की तरह ही बड़े प्यार से उन्हें पाला था। उन्हें खिलाकर खाती थीं, उन्हें पिलाकर पीती थीं। इस प्रकार मुझे पालपोस कर बुआ मेरी माँ के ऋण से उऋण होना चाहती थीं।

जीजी अपनी ससुराल चली गई थीं। बड़े भैया नई भाभी को ब्याह लाये थे। मैं बुआ के पास आ गया था। बुआ का मेरे ऊपर पूरा अधिकार था। यह मुझे मालूम न हो सो बात नहीं मैं अच्छी तरह जानता था, लेकिन फिर भी अपनी मर्जी के अनुरोध को मुझसे टाला न जाता था। बुआ और बिट्टो में इस प्रकार खींचातानी आरम्भ हुई।

मैं जानता था बुआ जब जब मुझे रोकतीं तो उनकी दृष्टि मेरे हित की ओर होती थी और मेरी मर्जी जब मुझे बुलाती तो मेरी खुशी घड़ियों को स्वस्थ करने के लिए। यों मैं बुआ के आदेशों के इशारे पर चलता था, पर बिट्टो के संग के साथ सब कुछ भूल जाता था।

एक दिन शाम को बिट्टो के घर उसकी सहेलियों की दावत ठहरी। मैं भी वहाँ जा पहुँचा और भी कई लड़के-लड़कियाँ इकट्ठे हुए। चाँदनी रात थी। सुहावनी ऋतु। हम लोग देर तक खेल में लगे रहे। घर की चिन्ता ने किसी को व्याकुल न किया। आखिर घरवालों को ही हम सबकी तलाश करनी पड़ी।

लड़की की उम्र क्या है ?—बुआ ने पूछा।

"आठ नौ से अधिक नहीं।"

"राम राम।"

"तुम राम राम करती हो। उधर लड़की की माँ पर जोर डाला जा रहा है कि वह रामरूप को दमाद क्यों नहीं बनाती? पर उसने भी साफ़ कह दिया है कि जहर खा लूँगा पर ऐसा तो न करूँगी। रम्मो के लिए किशनस्वरूप भी तो बड़ा ही है। अभी तो वह बच्ची है।"

"इतनी समझ है तो वह किशनस्वरूप के साथ ही क्यों करती है?"

"पैसों के लिए। गरीबी सब कुछ करा रही है। लेकिन मैं तुमसे कहती हूं कि यदि पहले न गिना लिए तो पीछे रुपये उसे मिलेंगे भी नहीं।"

उपरोक्त बातचीत वाले दिन जब मैं, बिट्टो और तोता कोई खेल खेलने की तैयारी कर रहे थे हमने एक नई लड़की को अपने बीच पाया। मैले फटे कपड़े पहने थी वह। दुबली पतली कमजोर लड़की। सिर के बाल जिसके उलझे हुए थे। मालूम पड़ता था महीनों से कंघी नहीं की गई। सुडौल आकृति और गेहुआं रंग के चेहरे पर सुग्गे सी नाक बुरी नहीं लगती थी। कुछ नाक के स्वर से बोलती थी। अपने माँ बाप की गरीब दशा से परिचित थी। खाने पीने को सहूलियत मिली होती तो उसका शरीर इतना लचपचा न होता।

हम सब के बीच अनायास ही आगई वह। बिट्टो ने उसकी ओर ईर्षा भरी दृष्टि से ताका। मालूम पड़ता था उसकी उपस्थिति को वह सह नहीं पारही थी। बोली—तुम कौन हो?

"रम्मो"—उसने नाक के स्वर में बताया।

"यहाँ क्यों आई हो?"

"ऐसे ही।"

"तो भाग जाओ यहाँ से।"

इस आदेश को पाकर रम्मो बड़े विचार में पड़ गई। उसने एक बार मेरी ओर फिर तोता की ओर देखा। मानो पूछ रही थी कि क्या हमारा

भी यही आदेश है ?

मैंने बिट्टो से कहा—उसे रहने दो। चलो हम लोग खेल शुरू करें।

"नहीं, पहले उसे भगा दो यहाँ से।"

"वह तुमसे कुछ माँगती है ?"

"न माँगती हो। मैं उसके साथ नहीं खेलूँगी।"

"मत खेलना। वह तो नहीं कहती कि मुझे खिलाओ।"

"थोड़ी देर में कहने लगेगी।"

"तुम इन्कार कर देना।"

"नहीं, मैं उससे न बोलूँगी। उसकी सुग्गे सी नाक मुझे नहीं भाती है।"

तोता तब तक चुप था। हम दोनों की बातचीत बड़े ध्यान से सुन रहा था। बोला—यह नहीं होगा बिट्टो। हम रम्मो को अपने साथ खिलायेंगे।

बिट्टो ने मेरी राय जानने के लिए मेरी ओर देखा। मेरी राय स्पष्ट थी। यदि रम्मो खेलना चाहे तो खेले। मेरी ओर से कोई इन्कार न था।

तोता ने रम्मो से पूछा—तुम आज खिलौने खेलोगी ?

"नहीं"—रम्मो ने बिट्टो की ओर कनखियों से देखते हुए कहा। शायद बिट्टो के अधिकार को वह समझती रही थी।

हम लोगों ने अपना खेल शुरू किया। देर तक खेल में हम भूल गये कि रम्मो एक कोने में खड़ी हमारे खेल को देख रही है। उसकी इच्छा होती है, पर साहस नहीं होता कि बिट्टो का विरोध करके वह खेल में शामिल हो जाय। हमने खेल समाप्त किया तब भी वह ललचाई किन्तु उदास खड़ी थी।

संध्या समय मैंने देखा बिट्टो और रम्मो ऐसी हिलमिल गई हैं जैसे बरसों की सहेलियाँ हों। मैंने बिट्टो को चिढ़ाने के ख्याल से कहा—रम्मो खेलेगी तो मैं न रहूँगा ?

"सो क्यों ?

"मेरी इच्छा।"

"ऐसे आये ? इनके कहने से मैं अपनी रम्मो को छोड़ दूँगा।"

"सुग्गे-सी नाक जो है इसकी।"

"पर नाक ही तो रम्मो नहीं है, क्यों रम्मो ?"

रम्मो ने हँस दिया।—तुम सबकी ही नाक कौन अच्छी है ? तुम मेरी नाक की बात कहोगे तो मैं भाग जाऊँगी।

इसके बाद मैंने रम्मो से पूछा—रम्मो, तुम्हारा घर कहाँ है ?

"काशीपुर।"

"इतनी दूर ?" बिट्टो ने कहा।

"हाँ, बड़ी दूर है। हम लोग कितना चले हैं। तीन दिन बराबर चलने पर यहाँ पहुँच पाये हैं।

"तुम काशीपुर से यहाँ किसलिए आये हो ?" मैंने पूछा।

"पिता जी की दूकान उठ गई तो क्या करते हम ? वहाँ कोई काम तो न था। अम्मा ने कहा था कानपुर चलेंगे। वहाँ बहुत रोजगार हैं, नौकरी हैं।"

"कानपुर कब जाओगे तुम लोग ?"

"यह मैं क्या जानूँ ?"

"तुम्हें मोहनपुर अच्छा नहीं लगता ?"

"लगता है, पर अम्मा तो नहीं रहेंगी यहाँ ?"

"मैंने सुना है तुम्हारा ब्याह हो रहा है रम्मो ?"

मेरी बात सुनकर वह सकुचित हो लजा गई। अपना मुँह अपनी मैली ओढ़नी में छिपा लिया। बिट्टो ने बलपूर्वक उसकी ओढ़नी हाथ में से छुड़ा ली और मुँह उसका निरावरण करके पूछा—सच सच बता रम्मो तेरा ब्याह हो रहा है ?

"नहीं तो।" उसने अपना मुँह ढकने की चेष्टा करते हुए कहा।

"झूठी कहीं की। दुलहन बनेगी तू क्यों री ?" बिट्टो ने पूछा।

बिट्टो की अम्मा किसी कार्य से वहाँ आईं तो बिट्टो ने कहा—अम्मा, इस रम्मो का ब्याह हो रहा है तुमने सुना है क्या ?

वे बोलीं—मैं कैसे सुनती भला ? मैं तो तुम्हारी रम्मो को नहीं

जानती। आज ही तो उसे देख रही हू।—किसकी बेटी हो तुम रम्मो ?

रम्मो ने बहुत धीरे से उत्तर दिया—अम्मा को।

"अम्मा की सो तो ठीक। लेकिन मैं तुम्हारी अम्मा को भी तो नही जानती बेटी। तुम्हारी अम्मा कौन है वही बताओ न पहले।"

इस पर मैंने उन्हें सब बातें समझा दीं। सुनकर वे बोलीं—बड़ी अच्छी बात है। तो तुम अब यहीं रहोगी, इसी मोहनपुर मे ? लेकिन रम्मो तुम्हारा ब्याह तो हो रहा है पर तुम्हारी अम्मा ने तुम्हारी चोटी तक तो की नहीं है ?

इसके बाद बिट्टो की अम्मा उसे साथ ले गई। अच्छी तरह उसके बाल ओछे, तेल डाला और चोटी गूंथ कर माथे मे एक लाल बिन्दी लगा दी। जब इस तरह बन सँवर कर वह फिर हमारे बीच में आई तो उसका छोटा सा मुख गुलाब के फूल की तरह सुन्दर हो उठा था। हमारी छेड़खानियों का जब वह ठीक से उत्तर नहीं देने लगी तो उसके गर्व को हमने अनुचित नहीं समझा। बुरा भी नहीं माना।

अगले दिन रम्मो का ब्याह हो गया। वह मैले-कुचैले कपड़ों की जगह रंगीन वस्त्राभूषणों से लद गई। एक छोटी सजी-बजी गुड़िया की तरह आकर्षक दिखाई पड़ती थी वह। परन्तु रंग में भंग तुरन्त ही आरंभ होगया जब तीन सौ के स्थान पर पचीस-पचास रुपये ही देकर उसके माँ-बाप को मोहनपुर से बाहर कर दिया गया। इस घटना ने और भयानक रूप तब धारण किया जब किशनस्वरूप ने अपने पूज्य ज्येष्ठ भ्राता से अनुनय की कि जो बातचीत हो चुकी थी उससे भिन्न उचित नहीं है।

इस पर रामस्वरूप ने अपने भाई पर निर्मम दंड प्रहार करके उसे घर से निकल जाने का नोटिस दे दिया। अपमान और व्यथा ने किशनस्वरूप को इतना दुखी कर दिया कि अपने भाई के आदेश को सिरमाथे रखकर वह उसी रात घर से निकल गया। कहाँ गया, इसका किसी को पता नहीं। बेचारी रम्मो अकेली रह गई। ब्याह की, गहनों-कपड़ों की खुशी उसके अन्तर को आन्दोलित कर रही थी वह एकाएक गायब हो गई। कई

दिन तक उसके ओठों पर मुस्कान की वह हल्की स्वाभाविक रेखा हमें फिर देखने को न मिली। इसका कारण पति का विद्रोह कहें तो यह उस अबोध बालिका के प्रति अन्याय होगा और कहनेवाले की बुद्धि का भी विपर्यय ही उससे प्रकट होगा। डाल को फूटी हुई कली को समझकर फेंक देने की दुर्घटना में प्रणय का अत्याचार एक कारण शायद ही कभी हो सकता हो। तथ्य यह था कि माँ-बाप से इतने अचानक अलग होने की उसे कभी आशा न थी। फिर जिस तरह उसके माँ-बाप के साथ आखिर समय में व्यवहार किया गया था, वह उसकी आँखों के सामने तस्वीर की तरह खिंचा था। ऐसी दशा में उनसे फिर मिलने की आशा का सूत्र भी हाथ में न था। अनजान, पराये लोगों के बीच इस प्रकार अचानक आ पड़ने की दशा में एक छोटी बालिका से और क्या आशा की जा सकती थी? उस पर बड़ी विधवा ननँद का अतिशय कठोर शासन। तीन जेठ और एक देवर की भयजनक मुद्रा। क्या कर सकती थी वह बताइये। धीरे धीरे व ब्याह के वस्त्राभूषण भी दैनिक प्रसाधन के लिए उपलब्ध न थे। शायद किशनस्वरूप रहता तो वह उसके लिए कुछ करता। स्त्री चाहे, स्वाधीनता की मर्यादा में न आ पाती हो तो भी अपनेपन की स्वाभाविक प्रतीति के फलस्वरूप, वह असाधारण व्यवहार की अधिकारिणी तो होगी ही। अपने उस स्वत्व की माँग वह किसके सामने पेश करे?

उसके जीवन का एक सहारा रह गया था हम सब का साथ। उसमें भी अड़चन पड़ने लगी थी। कम से कम रम्मो के लिए वह निराश न रह गया था। विवाहित-जीवन की तपश्चर्या के साधारण नियम उसके ऊपर लगने शुरू हो गये थे। उसके अवकाश के क्षण अब गिने हुए थे। नहीं तो घर-गृहस्थी के अनेक आदेश मुँह फाड़े उसे ग्रास कर लेने के लिए हर समय प्रस्तुत रहते थे। फिर भी कोई समय निकाल कर वह बिट्टो के घर आ पहुँचती थी और हम अपनी दुनियाँ का मजा ले सकते थे।

रामस्वरूप का मकान बन कर तैयार हो चुका था। उसी खुशी में सत्य-नारायण की कथा का अनुष्ठान हो रहा था। पण्डित दीनानाथ एक मुझे

पत्रों की छपी पोथी लेकर सांझ से ही उपस्थित हो गये थे। कथा बांचने में उनकी बडी ख्याति थी। वे पुस्तक की भाषा ही नही बाँचते थे वरन् पुराणों तथा अन्य धर्मग्रथों में से जो जो उपाख्यान जुड सकते थे उन्हें बीच बीच में जोडते हुए बात को खूब विस्तार दे देते थे। श्रोता पडित जी के कथा-वाचन पर मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। जहां वे कथा वाचने लगते वहाँ लोगों की भीड़ हो जाती थी। आसपास के गावों के लोग भी खबर पाकर आ पहुँचते थे। आज भी सध्या समय से ही स्त्री और पुरुषों की, बालक और बुड्ढों की, एक बड़ी मडली रामरूप के घर पर आ जुड़ी थी।

एक लकडी की चौकी के चारों पायो के साथ बास खड़े करके, केले के पत्तो और आम की डालो से मडप बनाया गया था। चादनी की जगह सुहागिन स्त्री की रेशमी चूनरी डाल दी गई थी। फूलो और पत्तियो की वदनवारों से घर-द्वार और मडप सजा था। पडित दीनानाथ ने आते ही अपना कार्य आरभ कर दिया। गोबर से लिपी हुई स्वच्छ भूमि पर चौक पूर दिया। मुरादाबादी कलईदार सफेद लोटे में गगाजल भर कर घटकी जगह स्थापित किया। इस प्रकार आवश्यक तैयारी के बाद यजमान ने कलियुग के इस महायज्ञ की बाकायदा दीक्षा ली और आकर पुरोहित जी के समीप आसीन हुआ।

कथा आरभ हुई। अध्यायों की समाप्ति की घोषणा शख और घट-ध्वनि से एव लोगों के कोलाहल से दूर दूर तक मिलने लगी। जो लोग कथा के रसिक नहीं थे वे भी प्रसाद और पचामृत बँटने समय आ उपस्थित हुए और अपने भाग की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इस प्रकार कथा-यज्ञ का महान समारोह सम्पन्न हुआ। पडित जी ने दक्षिणा के लिए और आगत सज्जनों ने प्रसाद और पचामृत वितरण की उदारता के लिए यजमान की भूरि-भूरि प्रशसा की। बड़े बड़े सेठ साहूकार जब अच्छे-बुरे सभी तरीकों से शोषण में प्रवृत्त होकर अपनी तिजोरियों को भर लेते हैं और फिर एक धर्मशाला बनवाकर पापों का प्रक्षालन कर डालते हैं, और दानवीर की उपाधि लेकर धर्मात्मा बन बैठते हैं तो

अपने घरो को चल दिये। घरेलू मामले में पड़कर कोई शांति के लिए प्रयत्न करने को तैयार न हुआ। केवल अनवरी गायिका और उसके साजिन्दे देर तक बैठे आदेश की प्रतीक्षा करते रहे।

जेठ जी ने कनिष्ट भ्राता की वधू को हाथ से स्पर्श न करके चरण के प्रहार से ही दूर फेंकना ठीक समझा। इस चेष्टा में रम्मो की दुर्बल काया पास पड़ी टूटी खाट से जा टकराई और उसकी कमर का कूल्हा उतर गया और भी कई जगह चोटें लगीं। परन्तु चोट की असह्य वेदना को भी उसे चुपचाप ही सहना पड़ा। हल्लागुल्ला कर किसी को बताने की जरूरत न पड़ी। और ऐसा साहस वह कर भी कैसे सकती थी? जब उसे हर समय सागर में ही वास करना था तो मगर से बैर कैसे चल सकता था? यह वह अपनी उस कच्ची उम्र में भी भली भाँति समझती थी।

इस घटना के बाद से हमारा और रम्मो का साथ छूट गया। शासन की कड़ी सीमारेखा से उसे घेर दिया गया। कई महीने बाद एक दिन अचानक गंगास्नान के मेले में रम्मो से भेंट हो गई। घूंघट के आवरण के भीतर मैं तो उसे पहचान भी न पाया। उसी ने मेरी पीठ में एक उँगली चुभा कर मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। मैंने विस्मित होकर और पलट कर उसे देखा। अचानक मेरे मुँह से निकल गया रम्मो, तुम हो।

"हाँ, तुम तो जैसे मुझे भूल ही गये रमेश।"

"ऐसा तो नहीं है पर तुम्हें आज इतने दिन बाद जरूर देख पाया हूँ। चिट्ठी से मालूम होता रहा है कि तुम कैसी हो। लेकिन देखता हूँ कि तुम तो बिल्कुल बदल गई हो।"

शीघ्र ही उसकी ननद देवर जेठ सभी आये और सब के सब हड़बड़ाये हुए। आते ही 'चलो सँभालो, सामान ठीक करो' सुनाई दिया और सब समेटने में जुट गये। मेरी समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों किया जा रहा है? परन्तु शीघ्र ही पता लग गया जब रम्मो 'अम्मा अम्मा' कह कर एक स्त्री के लिपट गई और रो पड़ी। इसके उपरांत ही उसके बाप भी दिखाई दिये। उन्होंने अपने दमाद का पत्र लाकर रामरूप के हाथ में रख दिया। शायद किशनसरूप ने लिखा था कि वह अपनी बेटी को ले आये।

रामरूप ने पत्र के दो टुकड़े करके फेंक दिये और डपट कर कहा— पत्र लिख देने से ही उसे अपनी औरत पर सब अधिकार नहीं मिल गये। उससे कह देना कि पहले वह हमारे सामने आये। मैंने उस बदजात का ब्याह किया है, उसे आदमी बनाया है। उसके पीछे खुद अनेक कष्ट उठाये हैं। अनेक तरह के खर्च किये हैं। सब बातों का आकर हिसाब समझ ले और मुझे भी समझा दे फिर वह ले जाये अपनी बहू को।

कहा-सुनी हुई परन्तु लड़की की माँ के बीच में पड़ने से बात आगे नहीं बढ़ी। रम्मो का पिता यह प्रण करके गया कि अगले पन्द्रह दिन के अन्दर अपने दमाद को लेकर सोहनपुर आ पहुँचेगा। रामरूप को इसकी क्या चिन्ता थी?

दस

बहुत सी बातें कहने को हो गई हैं। सब बताने बैठ जायें तो कब खत्म हों? पाठक भी सुनते सुनते क्षमा-याचना करने लगें। —मैं बातें [illegible]

अक्षर भी न होऊँ पर स्कूल आये बिना निस्तार नहीं। मैं तो अपनी आदरणीया बुआ के आदेश-बंधन में बँधा हूं। जबतक उनकी प्रेरणात्मक प्रवृत्ति है तब तक मुझे स्कूल आना ही पड़ेगा। मैं लगातार आ रहा हूं। जबकि इसी अरसे में देवीसिंह स्कूल से अलग होकर ठाकुर देवीसिंह बन गये हैं और कलम, दवात, स्याही पुस्तक आदि की जगह सिर से एक फुट ऊँचा लट्ठ सँभाल लिया है।

मैं जब स्कूल जाया करता हूँ तो ठाकुर देवीसिंह से भेंट होती है। बड़े प्यार से, बड़ी कृपा से और बड़े सौजन्य से वे मिलते हैं। स्कूल में पढ़ने के कारण मैं जैसे परावलम्बी और निरीह होऊँ और स्वाधीन होने के कारण जैसे वे अधिकार सम्पन्न हों, यह बात मुझे प्रतीत हुए बिना न रहती। फिर भी इधर रोज रोज की दो बार मुलाकात होने से उनके साथ मेरी आत्मीयता बढ़ती जा रही है। ठाकुर देवीसिंह के मन में एक ही इच्छा है कि वे कभी फौज में भरती होंगे और मोटर ड्राइवरी सीखेंगे। जैसे भी हो यह इच्छा उन्हें पूरी करनी है। मेरे ऊपर उनकी विशेष कृपा का कारण, जहाँ तक मैं अनुमान कर सका हूं, मेरा शहर का निवासी होना है। उनका ख्याल है कि हम लोगों को नागरिक होने के नाते बहुत सुविधाएँ हैं, अफसरों से बहुत परिचय है और हम चाहें तो इस विषय में उनकी मदद भी कर सकते हैं। परन्तु दुर्भाग्य से उनकी यह धारणा मेरे विषय में तो एक अंश भी सत्य नहीं है तो भी इस असत्य को नंगा करके कभी मैंने उनके निकट उपस्थित नहीं किया है। न जाने क्यों हृदय में एक तरह का संकोच होता है उसे प्रकट करते हुए। इसीलिए जो सत्य नहीं है, एकान्त लिया है,

जाय, जो अशक्य नहीं है, तो फिर अभी से मैं क्यों दाल भात में मूसलचंद बन बैठूँ ?

यही सब विचार लिए मैं देवीसिंह से मिलता हूँ मेरी बातों से उन्हें आश्वासन प्राप्त होते हैं—उनके स्वप्न-मेघों को घिरने का अवकाश मिलता है। उनके आश्वस्त चेहरे पर चमक आ जाती है। अपनी लाठी ऊँची करके वे अनुरोध करते हैं—भाई रमेश, आज तो तुम्हे मटर की फलियाँ नहीं खिला पाऊँगा। हाँ, एक दो गाजर चखाऊँगा। मिश्री सी मीठी हैं। तुम खाना, तब कहना।

मैं कहता—नहीं जी देवीसिंह, मैं तुम्हारी गाजर-वाजर से बाज आया।

देवीसिंह—अरे वे गाजरें नहीं हैं जो तुम समझ रहे हो। एक बार मुँह में डालना तब इनकार करना।

इतना कह कर मेरे मना करते करते भी वे खेतों में गायब हो जाते हैं और मैं किसी पेड़ की छाया में या बाग की खाई पर बैठा रहता। भाग नहीं पाता उनके अनुरोध के बंधन को तुड़ा कर। थोड़ी देर में किसी काछी या किसान के खेत में से मुट्ठी भर चने के पेड़ उखाड़े हुए वे आ उपस्थित होते और सफाई देते हुए कहते हैं—अजी रमेश, ये लो होले खाओ तुम। गाजर मैं नहीं लाया। तुम्हें गाजर पसन्द नहीं होगी। शहर के आदमी जो ठहरे। भाई, ये चीजें तो हम गाँववालों को भाती हैं। फिर गाजर कुछ ठंडी होती है। कहीं तुम्हें नुकसान कर जाय। तब तुम तुम कहोगे कि देवीसिंह ने जबरदस्ती खिला कर बीमार कर डाला।

वह जिन जिन चीजों से मेरी मनुहार करता है वे अधिकांश इधर उधर से खसोटी हुई होती हैं।

ऐसा करके उसका आशय मेरे मन पर आधिपत्य स्थापित करने के अलावा और क्या हो सकता है यह मैं नहीं जानता। परन्तु मेरा मन इस तरह वश करने से क्या सचमुच उसे लाभ होने की आशा हो सकती है? इस जिज्ञासा का उत्तर देना मेरा काम नहीं है।

उस दिन सांझ को छुट्टी होने पर देवीसिंह नित्य की भांति मार्ग में प्रतीक्षा करता हुआ मिला। आज पहले से ही उसने दो गन्ने मेरे लिए ला रक्खे थे। दूर से ही देखकर बोला–रमेश, दौलतपुर की मिट्टी के ये गन्ने—

मेरा मन स्कूल में घटी एक दुर्घटना के कारण बिलकुल ही क्षुब्ध हो रहा था। कुछ रुष्ट होकर मैंने कहा—मैं नहीं खाता तुम्हारे गन्ने।

"क्यों, ये दौलतपुर के गन्ने मिलते ही कहाँ हैं? यहा ईख बोता ही कौन है?"

"तो रक्खो न उन्हें लेजाकर।"

"यह नहीं होगा रमेश। तुम्हें खाने पड़ेंगे।"

"मैं न खाऊँगा। छुऊँगा भी नहीं।"

"किसलिए? ऐसा किसलिए?"

"कह दिया, मैं नहीं खा सकता।"

"बिना कारण?"

"सच बात यह है कि मैं चोरी की चीज नहीं खाना चाहता। तुम समझते हो मैं जानता नहीं। मैं सब जानता हूँ कि तुम रोज रोज ये चीजें कैसे लाते हो?"

मेरी बातों से देवीसिंह के उपर वज्रपात हुआ। उसका चेहरा जलकर झुलस गया। उसकी सारी चमक, सारी तेजी, जाती रही। उसने कभी आशा न की थी वह मेरे मुँह से ये बातें सुनेगा। बड़ी कठिनाई से वह इतना कह पाया—तुम कहते हो मैं गन्ने चुरा कर लाया हूँ?

"कहता हूँ।—और यही ठीक है। देखो, देवीसिंह तुमसे सब बातें

न कहलाओगे। दौलतपुर से मोहनपुर तक हर एक किसान, हर एक काछी और हर एक नम्बरदार तुम्हारे मुकाम से परिचित है। जमीन्दार के लड़के होकर जब तुम यह पेशा करने लगे तो गरीब कैसे रहेंगे? वे तुम्हें चोर कह कर पकड़ भी नहीं सकते। तुम क्या इसका ऐसा बेजा फायदा उठाओगे? गरीबों को बरबाद कर दोगे?"

मुझे ख्याल था देवीसिंह इस बार अपनी लाठी उठायेगा और मुझे द्वन्द युद्ध के लिए ललकारेगा परन्तु इसके बिल्कुल विपरीत उसने मेरे पैर पकड़ लिए और आंखों में आंसू भर कर बोला—माफ करो भाई रमेश। मुझे तुम माफ कर दो। मैं अपनी भूल के लिए बहुत दुखी हूँ। मैंने इस तरह कभी नहीं सोचा था।

मैं—इसकी जरूरत नहीं है देवीसिंह।

देवीसिंह—तो तुम मुझे माफ नहीं करोगे?

मैं—मैं क्या माफ करूँ? माफ तो तुम्हें वे करें जिनका तुम इस प्रकार नुकसान करते रहे हो। मैंने तो तुमसे कुछ लिया ही है। तुम्हारे अपराध में थोड़ा भाग मेरा भी रहा है। लेकिन मैं बहुत कमजोर हूँ। इतना बड़ा बोझा उठा नहीं सकता। इसीसे डर कर तुम्हें मना किया।

देवीसिंह—जो भी हो, मैंने तो यह सोचा भी नहीं था कि इससे किसी को नुकसान होता होगा। यह बात तुमने सुझाकर मेरा बड़ा उपकार किया। मैं अब किसी से क्षमा नहीं मांगूगा। सबसे कहूँगा मैंने तुम्हारा इतना नुकसान किया। तुम मुझे दंड दो। दंड पाकर ही मैं सुखी होऊँगा।

मैंने देखा, देवीसिंह का चेहरा चमक उठा।

सध्या निकट थी। मैं घर चला आया। देवीसिंह शायद दंड याचना के लिए निकल। पड़ा बाद में मुझे यह सुनकर बड़ा दुख हुआ कि किसी ने भी उसके हृदय परिवर्तन की महिमा को नहीं समझा। जहां जहां भी वह गया वहां लोगों ने उसे झिंझोड़ा ही। इस तरह उसे तंग किया जैसे वे उसे रंगे हाथों पकड़ सकने मे समर्थ हुए हों। गांवों की ऐसी ही प्रथा है। वहाँ सबल की पूजा होती है। दुर्बल को सताया जाता है। परन्तु इससे क्या,

देवीसिंह के जीवन में तो एक नया पृष्ठ खुल गया। नया आदमी बनने का श्रीगणेश उसके जीवन में होगया।

दूसरे दिन अचानक चाँदकुवरि से भेंट हो गई। मैंने पूछा—तुम कब आगई ?

"मुझे तो आये दिन होगये।"

"लेकिन देखा तो नहीं।"

"दादी बीमार हो गई। इसी से उन्हें लेकर चला आना पड़ा।"

"अब कैसी है ?"

"वैसी ही हैं। अच्छी नहीं कह सकती।"

"तब तो तुम्हें बड़ी तकलीफ होगी।"

"हैं, लेकिन दादी बच जाँय तो कुछ भी नहीं।"

"दवाई देती हो ?"

"तुलसी की पत्तियाँ देती हूं। उन्हें दवा से भी ज्यादा इससे सन्तोष होता है।"

मैंने चाँदकुवरि के साथ जाकर आसन्न मृत्यु उस बुढ़िया को देखा। लेकिन मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब मैंने रोगी की आँखों के सामने उसकी ओर मुँह किए एक युवक बैठा पाया। किशोरावस्था उसके बलवान शरीर को छोड़ रही थी और जवानी सलज्ज आनत मुख धीरे धीरे आ रही थी। मैंने बुढ़िया दादी के वकाल शेष को देखकर यह समझ लिया कि सङ्कटकाल समीप है। मैंने चाँदकुवरि से कहा—दादी तो हड्डियाँ भर रह गई हैं।

दिन से रात-दिन बैठ कर सेवा की है। मैं कहती हूँ थोड़ा आराम कर लेना पर सुनते ही नहीं। परसों घन्टे भर के लिए बड़ी मुश्किल से घर भेज पाया था।"

उसकी चरचा हो रही है, शायद यह जानकर ही राधावल्लभ ने मेरी ओर देखा। कुछ कहा नहीं। मैंने ही पूछा—दादी कैसी लगती है तुम्हें?

"अब तो आशा हो रही है।"

चाँदकुँवरि ने आह भर कर कहा—भगवान करे ऐसा ही हो। लेकिन अब तुम बाहर निकलो मैं थोड़ी देर दादी के पास बैठूँगी।

राधावल्लभ ने हाथ के इशारे से मना कर दिया। चाँदकुँवरि मुझसे बोली—हम लोग लौट कर आरहे थे। रास्ते में ही ये मिल गये। गाड़ी में दादी को बेहोश देखकर साथ ही चले आये।

मुझे तो जल्दी ही मोहनपुर आना था। मैं चला आया। राधावल्लभ ऐसे आवश्यक काम में लगा था कि उससे कोई विशेष बातें नहीं हो सकीं। तो भी उसके इस नये रूप को देखकर मुझे अपने निर्णय में बहुत कुछ संशोधन करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। एक नई धारणा को लेकर मैं घर पहुँचा।

घर में पंडित दीनानाथ पंचांग खोले कुछ गणना कर रहे थे। सामने दो जन्मपत्र पड़े थे। ग्रहों की स्थिति और घड़ी पल का हिसाब कर पंडित जी ने बुआ को लक्ष्य करके पूछा – कुछ दिन पहले तुम्हें किसी बात की आशा हुई थी और बाद में निराश होना पड़ा था?

बुआ ने दबी हुई हलकी आह से स्वीकार किया। इसके बाद पंडितजी ने पूजा-व्रत अनुष्ठान की एक तालिका बनाकर दी। उसके अनुसार ही कुछ दिन जीवनचर्या रखने से इच्छापूर्ति का विश्वास दिलाया। इस प्रकार सौभाग्य का मार्ग निर्दिष्ट करके और दक्षिणा लेकर वे तो विदा होगये परन्तु बुआ को प्रकृतिस्थ होने में कुछ समय लगा। तब तक मुझे खाने पीने की प्रतीक्षा करनी पड़ी। काफी रात गये उस दिन उन्होंने मेरी सुधि ली, परन्तु इससे मुझे किसी प्रकार की वेदना नहीं हुई। असल में आज मेरे पास विचार करने के

लिए सामग्री थी और कुछ देर में अकेले रहकर उनमें डूब जाना चाहता था। मनुष्य के सामने जब उसकी सम्भावना के बिलकुल विपरीत घटनाएँ घटित हो उठती हैं तो वह उनकी अलौकिकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। देवीसिंह और राधावल्लभ को लेकर कभी इस प्रकार मुझे श्रद्धा के फूल नहीं चढ़ाने पड़े थे। यद्यपि उनके आरम्भिक परिचय के क्षण से ही उनमें अपनी अपनी विशेषताएँ मौजूद थीं। परन्तु देवीसिंह जिन बातों के कारण देवीसिंह था और राधावल्लभ राधावल्लभ, वे बातें ऐसी न थीं जिन पर मेरे जैसा अरसिक कोई रस ले सकता। प्रत्युत ऐसी ही अधिकांश बातें थीं जिनके कारण मैं इन दोनों को अपने विचारक्षेत्र से बाहर ही रखना पसन्द करता था। कौन कह सकता है कि हम जो चाहते हैं वही कर पाते हैं? चाहे कोई किसी तरह की ज़ोर ज़बरदस्ती न भी हो परन्तु यह देखा गया है कि बहुत सी बातों पर आदमी का अधिकार नहीं है। मैंने कभी जिन्हें नहीं चाहा है वे ही मेरे जीवन में प्रविष्ट होकर कब्ज़ा जमा बैठे हैं और जिन्हें मैंने हृदय के अन्तरतम से आत्मसात कर लेना चाहा है उनके हमारे बीच नदियों, पहाड़ों और समुद्रों का अन्तर पड़ गया है। और कौन कह सकता है कि जब उनकी आवश्यकता न रहेगी तो वे ही पथभ्रष्ट ग्रह उपग्रहों की तरह मेरी जीवनपरिधि में आकर न समा जायँगे?

करनी हो यहाँ तोता विश्राम की गारन्टी करा सकता है।

छोटी सी चार-छः पत्रों की उस पोथी को प्राप्त करने में तोता को थोड़ी शक्ति नहीं लगानी पड़ी। अनेक प्रकार की अनुनय विनय से आरंभ करके चौधरी और चौधराइन की सात पीढ़ियों की दानशीलता का गुण गान और प्रशस्तिपाठ उच्च कंठ से करना पड़ा। अपने और अपने पुण्य श्लोक पुरखों के जयोद्‌घोष से पुलकित और प्रफुल्लित चौधराइन ने हमें इस शर्त पर वह महाग्रंथ देना स्वीकार किया कि उसका जीर्ण कलेवर किसी तरह शीर्ण न होने पावे। इतनी छोटी शर्त पर एक अलभ्य पुस्तक को दे देने की उदारता के लिए उन्हें कोटिशः धन्यवाद देते हुए हम दोनों लौट आये। उस दिन बुआ को उनकी वांछित वस्तु देते हुए मुझे कम विजयगर्व न हुआ।

इधर उधर की अनेक बातों में मैं अपने को भुलाने लगा पर एक बात मेरे मन में बारबार घूम फिर कर आजाती है और मैं सोचने लगता हूँ कि मैं इस घर में अवांछित हूँ। न जाने कहाँ से मेरे मन में यह चोर घुस गया है कि बुआ जो करने जा रही हैं वह मेरे लिए हितकर नहीं है पर क्यों, इसका उत्तर मैं नहीं दे पाता। बुआ का घर मेरा नहीं है। बुआ ने मुझे पुत्र के स्थान का उत्तराधिकारी भी नहीं बनाया है परन्तु भीतर ही भीतर घनीभूत हो रहे वातावरण में मेरे मन में यही संस्कार जड़ पकड़ गया है कि यदि बुआ की साधना सिद्धि के समीप पहुँच रही हो तो मेरा निस्तार नहीं। संकल्प विकल्प की इस दशा के कंटकवन में मैं राह खोज रहा हूँ। कुछ समझ में नहीं आता। जी बारबार यही कहता है कि मुझे बुआ की संपत्ति की दरकार नहीं है? क्या मैं उसे किसी भी दशा में स्वीकार कर सकता हूँ? यदि यह सब सच है तो मुझे बुआ के प्रयत्न वांछनीय क्यों नहीं लगते? अवश्य मेरे हृदय में पाप है। मैं उस पाप को निकाल फेंकने की शपथ लेता हूँ। मैं उसे अपने मन-मन्दिर को अपवित्र नहीं करने दूँगा।

अभी पूरा एक साल ही बीता होगा। उस दिन काजी अधियारी

रात थी। टल्लू की 'घू घू' सुनकर मेरा हृदय अस्थिर हो गया था। उससे भयानक परिणामों की आशंका करके मेरे भय का अंत नहीं था। उसके बाद दूसरे दिन प्लेग फैल चली थी। सब भागने की तैयारी करने लगे थे। बुआजी चिन्तित थीं। क्या होगा, कहां भागना पड़ेगा? कैसे इस बला से बचा जायगा? इसी अस्थिरता के बीच फूफा जी मुझे अपने साथ घर के भीतर ले गये थे और कहा था—रमेश, मुझे और तुम्हारी बुआ को कुछ हो जाय तो यह स्थान मत भूलना। जो कुछ है सब यहीं है। किसी को बताना नहीं। यह सब तुम्हारा ही है बेटा।

फूफा जी की मेरे साथ विशेष घनिष्टता नहीं थी, न कभी रही थी। तिस पर भी उन्होंने सारे विश्वास और स्नेह का पात्र मुझे ही समझा, लेकिन क्यों? मैं उनकी बात का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे पाया। केवल स्वीकृति सूचक सिर हिलाकर रह गया था और अनजान में ही मेरी आंखें छलछला आई थीं। आजतक वह बात मैंने कभी किसी को नहीं कही है। आज उसे याद करके सोचता हूं कि तभी से तो मुझे कहीं बुआ की सम्पत्ति पर लोभ नहीं होगया है? कहीं मैंने मन ही मन अपने को उनका वारिस तो नहीं समझ लिया है? ऐसी भ्रांत और अयुक्त धारणा को सब तरफ से खोद कर फेंक देना चाहता हूं। मेरा जीवन और चाहे जिसके लिए बना हो, अपने सम्बन्धी और हितैच्छुओं के अर्जित वैभव को बटोर कर सुख शान्ति से उपभोग करने को नहीं बना है। इस पर मुझे एकान्त आस्था है। अपनी उस आस्था को लेकर मैं सन्तुष्ट रहना चाहता हूं।

जानता पर वह करनी सदा से यही रही है। इससे मुझे राहत मिलती है। वह आज भी कुछ नया लाई है, यह उसकी सूरत देखते ही मैं जान गया। मैंने पूछा—क्या हुआ री ?

"तुम्हीं बताओ क्या हो सकता है ?"

"हो सकता है तुम्हारा सिर।"

"मेरा सिर हरगिज नहीं हो सकता है।"

"सिर नहीं हो सकता तो कान होंगे।"

"और -"

"कान भी न होंगे तो नाक होगी, पूँछ होगी। ऐसा ही कुछ होगा।"

"मैं क्या गिलहरी हूँ ?"

"नहीं तुम छिपकली हो।"

"मुझे छिपकली बनाओगे तो मैं बुआ से कह दूंगी।"

"बुआ तुम्हें नहीं मिल सकतीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि वे छिपकलियों से बात नहीं करतीं।"

"मैं छिपकली नहीं हूं। देखो, मैंने कह दिया।"

"मैं कैसे कह सकता हू कि नहीं हो ?"

"आँखो से देखकर।"

"आँखों से देखकर यह नहीं बताया जा सकता।"

"तो नाक से सूँघ कर देखलो।"

"मेरी नाक ऐसी फालतू नहीं है जो छिपकलियो को सूँघकर उसे खराब करता फिरूँ।"

"फिर वही बात। तुम मानोगे नहीं मैं बुआ से कहती हूँ जाकर।"

बिट्टो दौड़ कर बुआ के पास जाने लगी। मैंने उसे बुलाया—अच्छा, सुन तो जा।

"क्या सुन जाऊँ ?"

"एक बात।"

"कौन सी ?"

"वही जो मैं तुमसे कहना चाहता हूँ।"

"अच्छा, बोलो।"

"मैं पूछता हूँ, तुम क्या कहने आई थी ?"

"मैं कहने आई थी कि—"

"कहो कहो रुकती क्यों हो ?"

"मैं कहती हू पर तुम किसी को बताओगे तो नहीं ?"

"नहीं।"

"सच, बताओगे नहीं ?"

"नहीं।"

"रम्मो तलैया में डूबकर अपने प्राण दे देगी।"

"हिश्!"

"हिश् नहीं, मैं ठीक कहती हू।"

"तुमसे ऐसी बात किसने कही है ?"

"रम्मो ने।"

"क्या कहा है ?"

"कहा है कि वह तलैया मे डूब मरेगी।"

"कौनसी तलैया मे ?"

"अपने घर के पिछवाडे वाली।"

"क्यो, वह ऐसा करेगी ?"

"वह कहती थी कि सब उसे सताते हैं। उससे अब सहा नहीं जाता।"

मैं जानता था कि बिट्टो जो सुन आई है वही कह रही है। उसे अच्छे बुरे का विशेष ज्ञान नहीं है। मैंने कहा—तुम जाकर रम्मो को समझा कर आओ।

नहीं होता।"

"यह मन्त्र वह न सुनेगी।"

"तो तुम उसे डराना।"

मालूम पड़ा, डराने की बात कुछ कुछ उसकी समझ में आ रही है। बोली—तो मैं उससे कह दूँगी कि तलैया में मगरमच्छ रहता है। वह उसे गड़प कर जायगा।

मैंने हँसकर कहा—वह उससे क्यों डरने लगी?

"हाय हाय, मगरमच्छ से नहीं डरेगी वह? अरे, उस मगरमच्छ से जिसने उस दिन इतनी बड़ी बकरी को मुँह में धर लिया था। कितना भारी था उसका मुँह! बाप रे बाप, याद है?"

"हाँ, याद है परन्तु उससे डरेगा तो वही जो मरना न चाहता हो। जो मरने के लिए ही तलैया में गिरने जारहा हो उसे उससे क्या डर?"

मेरी दलील का असर बिट्टो पर नहीं पड़ा। उसकी आँखों के आगे तो उस दिन के वृहत्‌काय मगरमच्छ की लंबी डाढ़ोंवाले गुफा-जैसे मुँह का भयानक दृश्य उपस्थित हो रहा था। मृत्यु कितनी भीषण होती है, उसका रूप कैसा निर्मम और कठोर है, यह तो उसने आँखों से देखा नहीं था। उसने विश्वासपूर्वक कहा—वाह जी, डर क्यों न होगा? वह तो उसका नाम सुनते ही सब कुछ भूल जायेगी।

"अच्छी बात, तो तुम जाकर कहो न उससे।—यह भी कह देना, मेरा नाम लेकर, कि ऐसी बात को कभी सोचे भी नहीं।"

बिट्टो जाने को उद्यत हुई तो फिर मेरे जी में आया, यह पगली कुछ कह न पायेगी। सोचा, कह दूँ कि वह रम्मो को अपनी माताजी के पास बुला लाये। वहीं मैं उसे समझा दूँगा। मुझे विश्वास है कि वह मेरी बात मान लेगी। फिर यह ख्याल आया कि कौन वह डूबी जाती है! यों ही कह रही होगी। वहीं से यह ले उड़ी। कहीं रम्मो ऐसा कर सकती है?

बात यहीं रह गई। मैं नहीं कह सकता कि बिट्टो ने जाकर उसे

समझाया या नहीं। शायद समझाया ही होगा।

भारतीय स्त्रियों और लड़कियों में यह बड़ा दोष है कि वे अपने प्राणों का कुछ भी मूल्य नहीं समझतीं। उन्हें तिनके की तरह त्यागने को तैयार रहती हैं और जबतक जीती हैं जीवन के प्रति भरसक उपेक्षा का भाव लिए रहती हैं, परन्तु साथ ही अपने पति पुत्रों या दूसरे प्रेम-सबधियो के प्राणो की रक्षा के लिए अनावश्यक रूप से सतर्क भी रहती हैं। इन बातों से उनके त्याग की महिमा प्रतिष्ठित होती है जरूर, परन्तु नारी अपनी पूजा के लिए भी तो सदा भूखी नहीं देखी जाती। अपने तन के लिए स्वार्थ लिप्त नारी की कल्पना मैं नहीं कर पाता क्योंकि मैंने ऐसी किसी भी स्त्री को नहीं देखा। अनेक स्त्रियों के संपर्क में मुझे आना पड़ा है। उनसे प्यार, स्नेह, उपेक्षा, घृणा, विद्वेष सभी कुछ मिला है किन्तु ऐसी लोलुप स्त्री तो एक भी न मिली जो एक मात्र अपनी काया के लिए सचेष्ट हो। कोई पति के लिए, कोई पुत्र के लिए तो कोई भाई के लिए घृणित से घृणित कर्मों में लगी हैं। नर राक्षसों की यत्नपूर्वक सेवा-सुश्रूषा और रक्षा-दीक्षा करते गृह-लक्ष्मियो को देखना एक साधारण सी बात है। उसके लिए आँखें खोल कर चलने की आवश्यकता नहीं है, न दिया लेकर ढूँढने की जरूरत है। गली गली में, गाँव-गाँव में ऐसे दृष्टान्त अनायास ही मिल जायँगे। जिसे न मिलें वह अभागा ही होगा।

जीभ न खुल सकी कि मैं उससे कुछ पूछता। आखिर उसी के मुँह से सुना—अरे, यह तो जिन्दा है। कैसा राक्षस है। जो इतनी ऊँचाई से गिरकर और गाडी के नीचे दबा रहने पर भी जिन्दा बना है।

यह कह कर उसने मुझे छोड़ दिया। मैंने हाथ के इशारे से उससे थोड़ा पानी लाकर मेरे मुँह में डाल देने को कहा, जिसके उत्तर में वह बोली तेरे मुँह मे पानी डालने से मुझे जो पुण्य होगा उससे उतना नहीं मिलेगा जितना तेरे मुह सूख कर मर जाने मिलेगा। सूरज की गरमी आप ही थोड़ी देर में तेरा फैसला कर देगी।

यह कहकर वह हम लोगों के सामान की गठरी सिर पर रखकर वहाँ से चली गई। कैसी निर्मम थी उसकी आकृति। एक बार भी उसने घूम कर मेरी ओर नहीं देखा। मैंने निरुपाय आँखें बन्द करली और सिर जमीन पर टेक कर पड़ रहा। ईश्वर की लीला, बजाय जेठ महीने की धूप के आकाश में बादल उठे, ठंडी हवा लहराई और मैं यमलोक पहुँचने के स्थान पर इस काबिल हुआ कि उठ सकूँ। उठकर मैंने अपने साथी की सँभाल की। वह अबतक अचेत था पर मरा नहीं था। दोनो बैलो की गरदनें मुड़ गई थी और गाड़ी का बोझ उनके ऊपर जा पड़ा था। मेरे लिए यह अशक्य था कि मैं गाड़ी को खिसका पाता। बैलो के मुँह से फेन निकल रहा था। मुझे एक उपाय सूझा। वही फेन लेकर कुछ तो मैंने अपने माथे पर और कुछ अपने गाड़ीवान के सिर और माथे पर लगाया। हवा के झोंको ने शीघ्र ही ठंडक ला दी। इससे मेरा साथी भी होश में आया। आँखें खोल दीं, परन्तु वह एक दम नंगा था। उसके सारे कपड़े वह दुष्टा खोल ले गई थी। मेरा गाड़ीवान यह न समझ पाया कि मामला क्या है? सब कपड़े और सामान कहां गये? मैंने अपनी धोती में से आधी फाड़कर उसे पहनने को देदी, और हाथ का सहारा देकर ऊपर लाया।

ऊपर आकर वह पुन अशक्त हो गया। उसे समीप की छाया में बिटाकर मैं इधर उधर सहायता की खोज में चला। वहा कहीं बस्ती का निशान न था। उस वन बीहड़ मे मैं अकेला चल पड़ा। बहुत दूर चलकर

एक नाले के पार सघन पेड़ों की ओट में कुछ काला-सा दीख पड़ा। उसी को लक्ष्य करके मैं चला। करीब आध घंटे मे मैं एक फूस और पत्तों से छाई झोपड़ी के द्वार पर जा खड़ा हुआ। मेरे वहाँ पहुँच जाने से मालूम होता था कि उस आश्रम की शांति भंग हो गई है। चिड़ियाँ वहा की चहचहा उठीं। गिलहरी चटचटा उठीं और छोटे मोटे जीव-जन्तु जिधर जिसके सींग समाये भाग चले। इस हलचल से मैंने अनुमान किया कि मैं व्यर्थ ही वहा आया। यदि वहाँ कभी हाल में कोई मानव रहा होता तो उस स्थान के पशु-पक्षी मुझे देखकर इतने भयभीत न हुए होते। मैं दो कदम और आगे बढ़कर कुटी मे झाँकने के बजाय पीछे मुड़ जाना ही तय कर रहा था कि भीतर से कर्कश स्त्री कंठ की आवाज आई—ठहरो, अब लौटने से क्या होगा ?

मैं ठिठक गया। वह स्वर वही था। जिससे अभी थोड़ी देर पहले मैं परिचित हो चुका था। इसके बाद मैंने एक दूसरे अवरुद्ध कंठ की धीमी आवाज सुनी। क्षणभर बाद एक स्त्री मेरे सामने थी। मैं किंकर्तव्य विमूढ़ हो उसकी ओर ताक रहा था। भय और आशंका से मेरा आसन्न विक्षत शरीर अवसन्न हुआ जा रहा था। वह बोली—कोई बात नहीं है। तुम नहीं मर सके हो न सही। मर जाते तो अच्छा होता। तुम्हारे कपड़े तुम्हारा सामान तुमसे सौगुनी आवश्यकता वाले एक मानव प्राणी के काम आ जाता। अच्छा, यह तो बताओ तुम्हारे साथी का क्या हुआ ? वह तो अब जिन्दा नहीं है न ?

मैंने सिर हिलाकर इनकार किया। वह बोली—वह भी नहीं मरा ? रामराम। कैसे दुख की बात है। इतने दिन बाद एक सुयोग देकर भी भगवान ने उसे व्यर्थ कर दिया।

इस प्रकार तिरस्कार करने की जरूरत नहीं। असल बात यह है कि हम लोगो का वे चाहने पर भी कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। तुम भले ही बिगाड़ सको—बल्कि तुम तो मुझे सर्वसमर्थ लग रही हो।

"छि छि, ऐसा न कहो भाई। भगवान् के लिए ऐसे अपशब्द सुनाने वाले तुम पहले आदमी मेरे सामने आये हो। मैं कहती हूँ प्रभु के अभिशाप कोप से बचने के लिए अपने शब्द वापस ले लो।"

मैं—शब्द वापस लेने की तो आकांक्षा नहीं है, प्रथा भी नहीं है और तब जबकि तुम भगवान् की ऐसी कुरूप मूर्ति स्थापित किये बैठी हो।

"परन्तु सामान लेने की है, यही न ?"

"यदि आपकी अनुग्रह हो तो।"

"मेरी अनुग्रह कुछ नहीं, अनुग्रह भगवान् की। सामान तुम्हारा यह रहा। ज्यो का त्यो है। अच्छी तरह देख लो। तुम दोनों मर गये होते तो यह उनके काम आ जाता।"—इशारा उस नरककाल की ओर था जो कुटिया के भीतर मरणासन्न पड़ा था।

कुटिया के द्वार की टाटी उसने थोड़ी खिसका दी। मैंने आश्चर्य, करुणा, भय, जुगुप्सा और ग्लानि से भरकर एक ऐसी मानवकाया देखी जो जीवनभर कभी भूल नहीं सकूँगा। तारतार होरहे एक गले हुए गंदे वस्त्र से ढकी क्षीण दुर्बल ठठरियो की एक देह। सांस धीरे धीरे आ-जा रही थी अन्यथा मैं उसे कई दिन पूर्व की लाश समझ बैठता।

उस स्त्री ने कहा—इस शरीर को ढँकने के लिए तुम दोनो की अहित-चिंतना करके मैं यह सब ले आई थी। इसके लिए तुम मुझे चाहो दड दो, चाहो शाप दो।

मैंने विक्षुब्ध होकर कहा—लेकिन मैं तो वापस मांगने का आग्रह नहीं कर रहा हूँ। जब ले आई हो तुम्हीं रख लो उन्हे।

उसने जीभ काटकर कहा—नहीं, यह नहीं। ऐसा नहीं।

मैं—तुम हम दोनो को मरा ही मान लो? क्षमा करो।

"बस, जो मृत्यु के मुख में पैर दे चुका है। उसके लिए मैं दो जीवित

कुल-शील मुर्दों की सामग्री पर जीवित, न छूने लायक व्यक्ति के यहाँ कैसे रहोगे ?—समाज से दूर निर्जन में इस दयनीय दीन दशा में रहनेवाले हम दोनों प्राणी अछूत नहीं हैं यह मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूँ। कभी हम लोग भी समाज के ही एक अंग थे, कोई दस पन्द्रह साल पहले ही।

मैंने कहा—मातेश्वरी, मैं तुम्हारी बातचीत से ही समझ रहा हूँ कि तुम साधारण नारी नहीं हो। तो भी तुम्हारी जीवनचर्चा सुनने की अपेक्षा मुझे अपने साथी की चिन्ता अधिक हो रही है।

"अच्छी बात है। तुम यहीं ठहरो। मैं उसे लिए आती हूँ।" कहकर वह घने वृक्षों में अदृश्य हो गई।

हम दोनों रात भर वहीं रहे। हमने उस रुद्र-कराला नारी के भीतर सेवा की पवित्र देवी के दर्शन किये। अपना सब कुछ जीवन, यौवन, रूप और रस अपने रोगी दस्यु प्रियतम की परिचर्या में अर्पित करके वह वहाँ रह रही थी। स्वार्थ-लिप्सा से दूर परिस्थितियों की कठोरताओं से लड़ती हुई। हमारा आतिथ्य उसने बन के फल फूलों से किया परन्तु उसमें किसी तरह की त्रुटि नहीं रहने दी। दूसरे दिन विदा होते समय बड़ी कठिनाई से रोगी के हेतु मैं अपने कुछ कपड़े उसके पास छोड़ पाया और कोई चीज उसने स्वीकार न की। एक परम आत्मीया की भाँति अश्रुमोचन करते हुए उसने हमें विदा दी। हमें भी ऐसा लगा कि सचमुच ही अपने किसी सच्चे सुहृद बंधु से वियुक्त होना पड़ रहा हो। हमारे चलते चलते उसने मेरे कान में फुसफुसा कर बताया—इनके सिर के लिए सरकार ने दस हजार का इनाम रख छोड़ा है?

मैंने आश्चर्य के भाव से उसकी ओर देखा परन्तु अविश्वास नहीं कर सका।

इसी प्रकार और भी कई अवसर आये जब दुष्टा और पतिता नारियों की आंतरिक-झाँकी मुझे देखने को मिली और सदा ही वह बाह्य से एक दम भिन्न और आलोकपूर्ण थी। जीवन की इस संक्षिप्त कहानी में अवसर आया और विचारसूत्र छिन्न न हुआ, तो उनका उल्लेख हो सकेगा।

ग्यारह

रम्मो जैसी छोटी लड़की में नारी-सुलभ दर्प और आत्मनिर्णय की ऐसी अनोखी ओजस्विता होगी इसे मैं तब जान पाया जब सचमुच ही वह तलैया में कूद पड़ी परन्तु तलैया तो क्या वह आग में भी कूद पड़ती तो भी न मरती क्योंकि भगवान् को उसे जिन्दा रखना था और राधावल्लभ को उसे बचाने का श्रेय मिलना था।

रम्मो मर न सकी पर इससे उसके कष्टों का बहुत कुछ अन्त होगया। वह फिर ऐसा न कर ले इसलिए घरेलू नियन्त्रण और कठोरताएं कम हो गईं। वह दूसरी समवयस्क लड़कियों की तरह घर से निकल सकती थी और खेल कूद में शामिल हो सकती थी। उसके प्रतिरोध की परिणति सुख और स्वातन्त्र्य की प्राप्ति में हुई। कुछ यह बात भी थी कि विशनसरूप अब घर से भागा हुआ आवारा ही न था वह एक अच्छी जगह नौकर हो गया था इससे घरवालों को आशाएँ हो गई थीं। अफीम और गाँजा के ठेके पर काम मिल जाना और वह भी मुनीम का कोई छोटी बात नहीं है। अभी कुछ दिन बड़े मुनीम के नीचे काम करना होगा, उसके बाद तरक्की मिल जायगी। तरक्की का मतलब है किसी छोटी दुकान का सर्वाधिकार।

पदारूढ़ हो जाने पर ही छुट्टी लेगा। तब वह अपनी स्त्री को भी अपने साथ ले जा सकेगा।

यह सब रम्मो से जानकर मैंने उससे पूछा—तुम ये सारी बातें कैसे जानती हो?

'मुझे ऐसा ही लगता है'—उसने उत्तर दिया।

मैंने पूछा—भला रम्मो, तुम्हें तलैया में कूदने की क्या जरूरत थी?

रम्मो—तुम क्या जानो?

मैं—इसीलिए तो पूछता हूँ।

रम्मो—मुझे लेकर बहुत से झगड़े हो चुके हैं और बहुत से हो सकते हैं। न जाने किसको मेरे कारण दुख उठाना पड़े। हम लड़कियाँ तो बस इसीलिए दुनियाँ में आती हैं।

"तुम तो बुढ़ियों जैसी बातें करती हो रम्मो।"

"तुम नहीं जानते रमेश, पहले जहाँ मेरे देने की बात थी वहाँ से पिता जी ने कुछ रुपये लिए थे। यहाँ भी उन्हें पूरे रुपये नहीं मिले। वे कर्ज कैसे चुकायेंगे? उनके ऊपर बहुत कर्ज है।"

मेरे पास रुपये होते तो मैं उसे देता या नहीं यह तो बताना कठिन है पर मेरे ऊपर उस बात ने प्रभाव बहुत डाला। मैंने कहा—तुम्हें उसकी क्यों चिन्ता होती है?

"न जाने क्यों होती है?"

"तुम्हारे पास रुपये कभी हो जायें तो दे देना।"

"मेरे पास कब होंगे रुपये?"

मैं भी सोचने लगा कि कब होंगे उसके पास रुपये? और होंगे भी तो कहाँ से आयेंगे?

इसी समय बिट्टो कहीं से भागती हुई आई और पूछ बैठी—तुम्हें किसने निकाला था रम्मो भाभी! राधावल्लभ ने?

रम्मो—क्यों?

बिट्टो—यह चन्दन नहीं मान रहा है!

मैं—क्या कहता है चन्दन ?

चन्दन भी आ पहुँचा और कहने लगा—मैंने तो सुना था कि वह कई दिन से घर से निकल गया है ? उसका कहीं पता नहीं है।

रम्मो—लेकिन उन्होंने तो निकाला था।

चन्दन—तुम उसको जानती हो ?

"नहीं।"

"फिर कैसे कहती हो ?"

"मुझे निकालकर घर खबर जो की थी उन्होंने।"

मैंने चन्दन से पूछा—तो राधावल्लभ गया कहाँ है ?

"कुछ पता नहीं। उसकी मा को भी पता नहीं।"

मैंने कहा—मैं बता सकता हूँ।

तुम बता सकते हो ?—चन्दन ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ।'

"तो उसकी मा से कह आओ, बेचारी बैठी रो रही है। उसके मुँह में तो तीन दिन से अन्न-जल नहीं गया है। तिस पर रात को कोई सन्दूक में से रुपये निकाल ले गया है।"

"शायद वही ले गया हो।"

"दौलतपुर ?"

"हाँ। चाँदकुँवरि की दादी शायद अभी तक बीमार है।"

यह बात सुन कर राधावल्लभ की माँ ने मुझे बुला भेजा। मुझसे पूछा—भैया रमेश, तुम्हें पता है राधावल्लभ का ?

"हाँ, मैंने बताया था न चन्दन को। दौलतपुर में वे हो सकते हैं। चाँद कुंवरि की दादी बीमार हैं। मैं पढ़ने जा रहा हूँ। वहाँ होंगे तो भेजूँगा।"

"जरूर भेजना बेटा। न हो तो मैं ही किसी को साथ करदूँ। पण्डित जी हैं नहीं। होते तो भी वे कुछ न करते। उन्होंने तो उसे इस तरह छोड़ दिया है कि जो चाहे करने देते हैं। मेरी बात वह सुनता नहीं है। मैं क्या करूँ ?"

"आप घबड़ाएँ नहीं। मैं जाकर भेजता हूँ।"

मैं उन्हें सान्त्वना देकर चला आया। मेरा अनुमान सच बैठा। राधावल्लभ चाँदकुँवरि के द्वार पर ही मुझे मिला। इस बार वह प्रसन्न था। मैंने पूछा—दादी, ठीक है ?

"हा ठीक है भाई। ठीक न होने से कैसी विपत्ति खड़ी हो जाती।"

मैंने उसकी बात का समर्थन किया, सोचा—सचमुच ही दादी के न रहने से चादकुँवरि का क्या होता ? वह किसके सहारे रहती ? यह सोचते समय मैं यह भूल ही गया कि इस दुनिया मे सहारा है ही कहा ? सभी तो निराधार हैं।

मैंने कहा—मैं तुम्हें यह कहने आया हूँ राधावल्लभ, कि पंडित जी घर नहीं हैं। तुम्हारी माँ को तुम्हारी खोज-खबर नही है। वे पड़ी रो रही हैं। तुम्हें इसी दम यहाँ से चला जाना है।

"और तुम—?" राधावल्लभ ने पूछा।

"मैं पाठशाला जा रहा हूँ।"

"वहा जाये बिना नहीं बन सकता है ?"

"न जाने का कोई कारण हो तो नहीं भी जाऊँ।"

"तो भाई तुम यहा ठहरो। दो आदमी आनेवाले हैं। तुम उन्हें

दादी से मिला देना।"

"यह मैं कर दूँगा।"

इस प्रकार राधावल्लभ को मैंने वहाँ से भेज दिया। खुद बैठ गया। आज दादी राधावल्लभ के गीत गाते नहीं थकती थीं। उन्होंने एक एक करके उसके गुणों की गाथा सुना डाली।—कैसा दयालु है उसका हृदय, कैसी उदार है उसकी वृत्ति। अपने शरीर की चिन्ता तो उसे छू नहीं गई है। ब्राह्मण का बालक होकर जात-पाँत की मर्यादा से एक दम रहित। सबसे आत्मीय जैसा व्यवहार। भगवान् उसका भला करे।

रम्मो को तलैया से निकालने की जोखम उठाने के बाद यहाँ राधावल्लभ की इतनी प्रशंसा मैंने सुन पाई। उसके खुद के मुँह से एक शब्द भी नहीं सुना था। यह वही राधावल्लभ था जिसने एक दिन अपने हृदय की ईर्षा को मेरे आगे व्यक्त किया था, यह वही राधावल्लभ था जिसने सुचेता के घर चाँदकुँवरि के माथे पर एक पत्थर दे मारा था। आज वह इतना बदल गया है! मनुष्य भी एक पहेली है। वह इस क्षण जिस रूप में है अगले क्षण बिलकुल ही भिन्न हो सकता है।

मैं कुछ अपने में, कुछ दादी की बातों में, खोया सा बैठा था। मुझे ख्याल भी न था कि कोई लोग आयेंगे और उन्हें मुझे दादी से मिलाने का भार सौंपा हुआ है। फिर कोई आया भी नहीं। इतने में चाँदकुँवरि ने घर में पैर रक्खा। उसे ख्याल भी न था कि राधावल्लभ की जगह मैं ले चुका हूँ। उसने आकर दादी के हाथ पर कुछ रुपये रख दिये। मुझसे बोली—तुम कब आये रमेश?

मैंने कहा—बहुत देर से बैठा हूँ। तुम कहाँ गई थी?

उत्तर दादी ने दिया, बताया—भैया पिछले छः महीने से वज़ीफ़ा नहीं मिला था। सो मैंने कहा जाकर ले आओ। इस समय रुपये की कितनी तंगी थी हमें।

वाली लड़की थी। लेकिन दादी का इंजन तो गरम था। वे कब रुकने
वाली थीं वे कहती गई —मना करते करते भी राधावल्लभ इतने सारे रुपये
डाल गया है। लेकिन जब वजीफे के रुपये आगये हैं तो ये कौन लुगगा?
चाँदकुँवरि को बुढ़िया की बातें असह्य हो उठी थीं। वह बोली—तुम
से यह सब पूछता कौन है? और उनसे रुपये लिए ही क्यों गये?
"बोलो बेटा, यह हमसे पूछती है किसलिए लिये? कोई डाल कर
चला जाये तो उसे क्या लेना कहते हैं?"
मैंने सिर हिलाकर दादी की बात का समर्थन किया। उससे साहस
पाकर वे बोलीं—उसे भी क्या दोष दिया जाय भैया रमेश। उसने देखा
कि घर का काम नहीं चल रहा है इसीसे—रुपये हो जाते ही हम उसे
लौटा देंगे। क्या रख लेंगे हम उसके रुपये? यह ऐसी लड़की है। मर
जाय किसी से मांगे नहीं।
अच्छा अच्छा, अब यह गुणगाथा रहने भी दो दादी।—चाँदकुँवरि ने
कुछ कुछ रुष्ट होकर कहा।
दादी फिर भी न रुकीं। कहने लगी—भैया रमेश, तुमसे क्या छिपा
है? कोई गैर तो तुम हो नहीं। यह तुमसे भी कहना नहीं चाहती।
मैंने कहा—दादी, असल बात यह है कि चाँदकुँवरि जानता हूँ कि
मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं खुद ही दूसरे के घर पड़ा हूँ। इस प्रकार
मेरा तो कुछ ठीकठिकाना नहीं। फिर यह मुझसे क्यों कहेगी?
चाँदकुँवरि—यही सही।
इसी बीच बाहर से किसी ने आवाज दी। मैंने उठकर देखने की चेष्टा
की। चाँदकुँवरि ने कहा—तुम बैठो न। मैं जानती हूँ वे कौन हैं। दादी,
लाओ दे आऊँ रुपये, साहजी आये हैं।
दादी से रुपये ले जाकर चाँदकुँवरि ने बाहर ही चुका दिये। आकर
बोली—दादी, वे राधावल्लभ के रुपये रमेश के हाथ ही भेज देने होंगे।
दादी—भेज दो, इसमें वह बुरा तो न मानेगा?
चाँदकुँवरि—तो रहने दो।

इसके बाद चाँदकुँवरि से मेरी बातें होती रहीं। उसने बताया—सुचेता जल्दी ही आने वाली है। इस बार वह तीन चार महीने यहीं रहेगी। उसका पति उससे बहुत प्रसन्न नहीं है। दोनों में कई दिन से बातचीत बन्द है। सुचेता की मा बहुत चिन्ता कर रही हैं। एक और बात उसने बताई कि देवीसिंह की फौज में नौकरी लग गई है। उम्र तो उसकी थोड़ी है पर शरीर के आकार ने उसे काफी सहायता दी है।

इस प्रकार न जाने कौन-सा प्रसंग छिड़ा और चाँदकुँवरि ने उसका उत्तर देने के लिए माथे पर आपड़े केशों को हाथ से समेटा। मेरी दृष्टि उसके ललाट पर पड़ी। कई दिनों की बात याद हो आई।

मैंने कहा—राधावल्लभ ने तुम्हारे माथे पर जन्मभर के लिए छाप लगा दी है। क्या तुम्हें अपना मुँह काच में देखते समय उस दिन की याद या नहीं आती है? लगता है जैसे अभी कल की ही बात हो पर उसे तो कई महीने हो गये हैं।

चाँदकुँवरि ने उत्तर दिया—हाँ ऐसा ही तो लगता है। इसके अलावा एक दूसरा चिन्ह अभी दादी की बीमारी में फिर लगाने का मौका उसने पा लिया है जो।

मैं—सच। कहाँ?

चाँदकुँवरि—सब जगह क्या खोल कर दिखाई जा सकती है? उस दिन का चिन्ह दुःख और क्रोध का कारण बना था आज का इच्छा और भक्ति का।

"तो तुम राधावल्लभ की भक्त हो गई हो?"

समानता का आभास मिलता रहा है। वह भी जीवन की प्रत्येक घटना को अपने चिन्तनक्षेत्र में लेजा कर उसका विश्लेषण करती है। मैं इस बंधु बांधवों और मित्रों से भरे संसार में कभी कभी अपने को नितान्त एकाकी समझ बैठता हूँ उसी तरह वह भी अपने लिए विचार करती प्रतीत होती है। चलती दृष्टि से छोटी से छोटी बात को देखने का उसे अभ्यास नहीं है। मैंने उसकी बात का समर्थन करने के इरादे से कहा—तुम्हारी बात सच है।

इसके बाद इधर उधर की अनेक बातें हुईं और हमें समय का पता ही न चला। जब चला तो जल्दी में मुझे छुट्टी लेकर भागना पड़ा।

बारह

लगता है अब बुआ हताश हो गई है। उनका कोई व्रत अनुष्ठान फल नहीं लाया। इसीसे वे घूम फिर कर मेरे ऊपर केन्द्रित हो रही हैं। जब तक वे मुझे भूले थीं तब तक मुझे यह विस्मृत होगया था कि मैं कहाँ हूँ। अपने आप में मस्त और खोया मैं स्वतन्त्र विचरण करता था। कभी ध्यान भी न आता कि मुझे कहीं और भी जाना है और संसार में अपने जीवन का मार्ग निश्चित करना है। अब जब बुआ ने मुझे विशेष भाव से अपनाना आरंभ किया तो मेरा मन विद्रोह करने लगा। कुछ जी में ऐसा आने लगा कि इस सोहनपुर से मेरा कौन सा सम्बन्ध है? संकट काल के कुछ दिन यहाँ बिताने भाग्य में लिखे थे उन्हें बिता चुका हूँ। स्कूल से छुट्टी मिलने का भी समय

आगया है। परन्तु बुआ का घर छोड़ने में जैसा उत्साह मुझे हो रहा है वैसा दौलतपुर गाँव के छोटे से स्कूल को छोड़ने में नहीं हो रहा है। जीवन के सबसे मनोरंजक क्षण मैंने स्कूल के अपने साथियों के साथ रहकर बिताये हैं। वे क्या कभी धूमिल हो सकते है? स्कूल के कच्चे और फूस से छाये मकान के प्रति मेरे हृदय के मोह का अन्त नहीं है। फिर साथियों और सहेलियों को छोड़ते जी में हूक उठती है, परन्तु जो करना है करना ही होगा। न बिट्टो रोक पायेगी न रम्मो। नदी के बहते जल को किनारे इच्छा रखते हुए भी कब रोक पाये हैं?

बचपन की एक संध्या की याद आ रही है। मेरा दरियल मित्र, पागल मदारी, मेरे हाथ से किरासिन तेल की डिब्बी लेकर घट घट करके पी गया था और उसके इनाम मे गुड़ की एक ढली जिसके भीतर नमक और कंकड़ के टुकड़े भरे हुए थे लेकर और मुँह मे डालकर बेतहाशा भागा था। दक्षिण दिशा की ओर जिधर बीहड़, बंजर, मैदान और खेत पड़े हैं, उधर ही वह भागता चला गया था और फिर कभी नहीं लौटा। मैंने कितने दिन शाम को बैठ कर उसकी राह देखी थी पर मदारी का पता न चला। जिससे पूछा उसने इधर उधर कर दिया पर कोई यह न बता सका मेरा वह बाल्यबन्धु कहाँ अदृश्य हो गया था। मै यों बड़ा सीधा और सुशील लड़का माना जाता रहा हूँ पर समझ नहीं पड़ता मदारी के प्रति मे इतना नटखट क्यों था? क्यो मे उसे बराबर तंग करता था। उसे जब तब नमक या मिट्टी की ढली गुड़ मे लपेट कर देता था और वह भी तब जब वह किरासिन तेल पानी की भाँति पीकर दिखाये।

किसी मौसम में शरीर पर कपड़ा नहीं लपेटा था। सड़क की धूल और कंकड़ पत्थर उसके बिछौना थे। आसमान ओढ़ना। पेड़ की छाया की उसे परवाह न थी। वस्त्रों की उसे चिन्ता न थी।

मदारी की वह नग्न मूर्ति, उसके मुँह की वह दीन भावना, उसकी आँखों की वह उद्देश्यहीन वाचालता सुदूर बचपन से मेरे मन में समाई हैं। क्या जाने मेरे चले जाने पर किसी के हृदय में मेरे प्रति भी इसी प्रकार की स्मृतिरेखाएँ अवशिष्ट रहेंगी या नहीं ?

मदारी निराट् अकेला ही नहीं जन्मा था। उसके गरीब माँ बाप ने भरसक उसे सुखी बनाने के उपाय कर दिये थे। उसे पालपोस कर बड़ा किया था और एक लड़की को बहू बनाकर ले आये थे। ये बातें तब की हैं जब तक वह पागल नहीं हुआ था। माँ बाप तो इतना करके परलोक सिधार गये। रह गये मदारी और उसकी बहू। बहू ने मदारी से अधिक उसके भतीजे को पसन्द किया। वह मदारी की न रही, यह बात उसे जब से मालूम हुई तभी से वह अपने आपको खो बैठा। मदारी को लोगों ने पागल होते ही देखा, यह नहीं देख पाये कि किस अभाव की पीड़ा ने उसके मानस को अस्तव्यस्त कर दिया। दुनियाँ बहुधा परिणाम को देखती है कारण की खोज नहीं करती। मदारी का भतीजा अपनी चाची के साथ कभी जिस ओर चला गया था, वही दक्षिण दिशा मदारी के लिए सदा से आकर्षण की वस्तु रही है। वह क्रोध, हर्ष या दुख में जब उत्तेजित होता था तो उसी ओर दौड़ जाया करता था। आवेग कम होने पर लौट आता था, अधिक से अधिक घंटे आध घंटे में। यह मैंने अनेक बार देखा था। मैं उसके आवेग को जान गया था। जब उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। आँखें फैल जाती थीं। मुँह पर भावों की लहरें दौड़ती थीं। होठ कांपते थे और वह जल्दी जल्दी इधर उधर देखने लगता था, फिर जैसे कुछ याद आने पर भाग छूटता था—बेतहाशा, पूरदम बेतहाशा। लेकिन उस दिन जो भागा तो भागा ही चला गया। उस दिन का उसका आवेग न जाने कहाँ शान्त हुआ होगा ?

बुआ ने मेरे मन के विद्रोह को भाप लिया। एक दिन बड़े प्यार से मुझे छोटे बच्चे की तरह गोद में ले लिया, बोलीं—भैया रमेश!

मैंने कहा—हूँ ऊँ।

"एक बात बताओगे?"

"कौन सी?"

"जो मैं पूछूँ।"

"हाँ।"

"बिट्टो कैसी लड़की है?"

"तुम नहीं जानतीं?"

"जानती हूँ। तभी तो पूछती हूँ तुम्हें कैसी लगती है वह?"

"अच्छी भी है और बुरी भी।"

"यह कैसे हो सकता है भैया?"

"कभी कभी अच्छी हो जाती है और कभी कभी बुरी।"

इस उत्तर से बुआ हँस पड़ीं और बोलीं—मैं तुम्हारा ब्याह कर दूँ उससे तो कैसा हो?

"तो मैं उसे कच्चा ही खा जाऊँगा।"—यह कह मैं भी हँस पड़ा।

बुआ ने कहा—तू पागल है।

मैं बुआ की गोद में से अपने को छुड़ा कर भाग निकला। लेकिन उन्होंने जो नई बात कानों में डाल दी थी वह मेरे भीतर चक्कर काटने लगी। बिट्टो से मेरा ब्याह हो जाय तो कैसा हो, यही मेरे मन में बारबार घूमने लगा। मैं अशान्त हो उठा।

हम दोनों साथ साथ तमाशा देखने गये। नट की दो नटखट छोरियाँ कबूतरी की तरह कलाबाजी करती थीं। ऊँचे अधर आसमान में एक पतली डोरी पर हाथों में हाथ डाले वे निडर भाव से नाची थीं। दर्शक मुग्ध थे। बिट्टो विस्मृत। मैं कभी उन्हे देखता था कभी बिट्टो के विस्मय विमुग्ध मुख को। छोरियों का पिता बैठा इशारे कर रहा था और कभी कभी आदेश भी देता था। उनकी माँ ढोलक पीट रही थी और एक नवयुवक मँजीरे बजा रहा था। नट-मंडली का जीवन एक दम विचित्रताओं से पूर्ण लग रहा था। स्वस्थ कृष्णवर्ण अनार्य जाति के शुद्ध रक्त को अपनी नाड़ियों में अति पुरातन काल से प्रवाहित करते हुए, साथ ही अपनी जाति की अद्‌भुत साहसपूर्ण कला-कुशलता को रक्षित रक्खे, यह फिरन्दर जाति अब तक जी रही है। गाँवों और नगरों में स्थायी रूप से बसना वह पसन्द नहीं करती। मुक्त प्रकृति के साथ साथ विचरण करती हुई वह जीवन बिता देती है। प्रकृति की लाड़िली सन्तान होने का गौरव इन्हीं लोगों को प्राप्त है। इसीलिए इनके शरीर की कांति, गठन और चुस्ती को देखकर हर किसी को ईर्षा हुए बिना नहीं रहती।

तमाशा खत्म होने पर बिट्टो ने एक गहरी साँस ली। मैंने कहा ऐसे क्या करती है? चाहे तो तू भी ये बातें सीख सकती है।

बिट्टो—मैं कैसे सीख सकती हूं? मेरी जान फालतू है क्या? पैर फिसल जाय कि बस—

मैं—और ये कैसे कर लेती हैं। सीखने से क्या नहीं हो सकता?

बिट्टो—नहीं, मैं नहीं सीखना चाहती।

"तब कोई जबरदस्ती है क्या?"

"अगर चाहूँ भी तो कौन सिखायेगा?"

"मैं।"

"तुम्हें ये कलाबाजियाँ आती हैं?"

"तुझे सिखाने लायक आती हैं।"

"अच्छी बात है मैं सीखूँगी।"

उस दिन मैंने बिट्टो को नट-लीला सिखाने के बहाने इधर से उधर और उधर से इधर कितनी बार पटका। उसकी माँ यह देखकर हँसी से लोट पोट हो गई। बिट्टो ने बहुत हाय-तोबा की तब कहीं जाकर उसे मुक्ति मिली। मेरे नट- विद्या-ज्ञान से उसे ऐसी विरक्ति और चिढ़ होगई कि फिर कभी उसने उसका नाम नहीं लिया।

× × × ×

नट-मण्डली में मँजीरे बजाने वाला बाँका जवान दोनों नट कन्याओं का भावी पति था। वह बहुत दिनों से उनका उम्मेदवार था। कहते हैं लड़कियों के माँ-बाप उसकी अनेक प्रकार से परीक्षा ले चुके हैं। उसके गुणों ने उन्हें घायल कर दिया है और इसीलिए उन्होंने उसे अपनी मण्डली में शामिल कर लिया है परन्तु ब्याह अभी तक नहीं हुआ है। अपने साथ साथ रख कर वे उसे खूब ठोक-बजा लेना चाहते हैं। दो दो लड़कियों के जीवन को जिसके हाथ में देना है उसकी परख पूरी तरह करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं। सुनने में आता है कि युवक ने अपने सास-ससुर को पूरी तरह सन्तुष्ट कर दिया है और अब दो-एक दिन से ही उसका का भाग्य जागनेवाला है। इस नट-मण्डली का डेरा मोहनपुर के बाहर ही कहीं बाग में पड़ा है। वहीं ब्याह का उत्सव होने को है।

युवक ने अपनी दोनों भावी पत्नियों के लिए सामर्थ्य के अनुसार चीजें, कपड़े और गहने ला रक्खे हैं। ताड़ी और शराब का प्रबंध हुआ है। युवकों और युवतियों के समूह नृत्य का आयोजन है। ये सब सूचनाएँ मुझे तोता से मिली हैं। मेरा मन घर के बंधन तोड़ कर भाग निकलना चाहता है। इधर को सुराग लग जाय तो सब चौपट हो जाय, परन्तु रात को किस प्रकार घर से बाहर रहा जाय? इसके लिए भी तो कोई बहाना नहीं है।

भोजनोपरान्त जब मैं बाहर निकला तो तोता के स्थान पर बिट्टो दौड़ कर आती दिखाई दी। मैंने कहा—क्या है री।

'तुमने कुछ सुना नहीं?''

''नहीं तो।'

"रम्मो, जा रही है।"

"कहाँ, कब?"

"अभी, अपने पति के साथ। आज ही आये थे।"

"आज आये थे, और अभी लौट जा रहे हैं?"

"अभी, इसी वक्त। बड़े भाई से उनका झगड़ा है।"

बात ठीक निकली जब मैं और बिट्टो देखने गये तो गुड़िया की तरह कपड़ों में लिपटी रम्मो गाड़ी पर बैठने जा रही थी। सब भाई वहाँ मौजूद थे परन्तु किशनसरूप को या रम्मो को कोई किसी तरह की सहायता नहीं दे रहा था। साफ मालूम होता था कि किशनसरूप अपने हृदय को बरबस दबाये सामान को ठीक कर रहा है। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। अभी अभी वह अपने बड़े भाई से झगड़ कर अपने पैतृक घर से न जाने कब तक के लिए सबंध तोड़े जा रहा था। बिट्टो भला क्यों मानने लगी। उसने बढ़कर रम्मो के घूँघट से मुँह सटा कर पूछ ही तो लिया—जा रही हो?

मुँह से नहीं, इशारे से उत्तर मिला—हाँ।

इसके बाद उन दोनों ने धीरे धीरे कुछ और बातें कीं जो मैं सुन नहीं पाया। आखिर मैं इतना सुन सका—तो कब लौट कर आओगी?

रम्मो ने वधू की मर्यादा की रक्षा करते हुए केवल हाथ हिला दिया। जिसका साफ अर्थ था कि उसे कुछ पता नहीं है।

बस गाड़ी चल दी। मैं बिट्टो और अनेक लोग दूर तक उसको जाता देखते रहे। संध्या समय की यह विदा कोई अनहोनी घटना नहीं थी परन्तु तो भी उसमें कुछ ऐसा था जो बरबस हृदय के भीतर जाकर समाने लगा और तब। बात आज भी उस घटना की स्मृति कोई सुखद स्मृति नहीं है।

में विलीन हो जा रही उस गाड़ी को लौट लौट कर देख लेते हों और फिर आपस में कुछ कहने लगते हों। मैंने बिट्टो से कहा—लो, गाड़ी हम लोगों की नजरों से तो ओझल हो गई पर ये ताड़ वृक्ष तब तक उसे देखते रहेंगे जब तक वह अंधेरे में मिल नहीं जाती।

ये इतने ऊँचे जो हैं—बिट्टो ने कहा। थोड़ी देर ठहरकर फिर बोली—मैं भी वृक्ष हुई होती तो उनकी गाड़ी को देर तक देख पाती।

"देखने से क्या होता ?"

"वह रो रही थी बिचारी।"

"तुझे भी जाना होगा मोहनपुर से एक दिन। तब तू भी इसी तरह रोयेगी।"

"मुझे भी जाना होगा ? मैं क्यों जाऊँगी बताओ ?"

"तू नहीं जायेगी ?"

"नहीं।"

"सदा यहीं बनी रहेगी ?"

"तुम चाहते हो मैं चली जाऊँ ? तो मैं एक जगह जाऊँगी, बताऊँ ?"

"बताओ।"

"ओह, तब की बात करती हो तुम ?"—कहकर मैंने बिट्टो की ठुड्डी हाथ से ऊपर उठाकर अपनी ओर सामने करके पूछा।

"तो क्या मैं भूल गई हूँ।"

"लेकिन बिट्टो—"

"लेकिन क्या ?"

"मैंने तो तुमसे झूठ बोला था।"

"झूठ ?"

"मैंने यह बात बना कर कही थी कि हम तीर्थ करने गये थे।"

"झूठ तो तुम सदा ही बोलते हो रमेश। मैं क्या यह नहीं जानती ? पर तुमने यह बात बनाई थी क्यों ?"

"तुम जानती हो मैं सदा झूठ बोलता हूँ ?"

"हाँ।"

"कब ? कैसे ?"

"अम्मा से पूछ लेना।"

"अम्मा से क्या पूछ लेना ?"

"अम्मा ही कहती हैं तुम सदा झूठ बोलते हो ?"

"पुछवाओगी ?"

"सौ बार।"

"चलो, अभी।"

"चलो"—कहकर बिट्टो उठ पड़ी।

"अच्छा, अम्मा से मैं क्या झूठ बोलता हूँ ?"

"अम्मा कहती हैं—रमेश आओ खा लो तब तुम कहते हो अभी अभी खाकर आया हूँ अम्मा। क्या वे यह नहीं जान पातीं ?"

"यह बात है। इसी के लिए तुम मुझे झूठा कहती हो ?"

"इसी तरह और बहुत सी बातें हैं। अम्मा को क्या सब सब याद पड़ी हैं ? और याद होने पर भी वे क्या तुम्हारे सामने कहेंगी ?"

"यदि इसी से मैं झूठा हूँ तो होने दो। और सुनो, हम लोगों ने

इस बार तीर्थ यात्रा की बात इसलिए बना रक्खी थी कि हम शहर से प्लेग के कारण भागे थे। यदि हम सच्ची बात बता देते तो सोहनपुर में कोई ठहरने नहीं देता।"

बिट्टो को इस तथ्य की कल्पना भी नहीं हो सकती थी। वह स्तब्ध मेरे मुख को देखती रह गई।

नट-कन्याओं के विवाहोत्सव का दृश्य देखने में नहीं जा पाया। प्रारंभ से विघ्न का आरंभ पड़ गया था वह बना ही रहा। मैं घर में लेट गया। बड़ी देर में अनेक दुश्चिन्ताओं के बाद निद्रा आई। आधीरात के लगभग मेरी गंभीर नींद एकाएक भंग हो गई। पड़ोस के घर से किसी की अत्यन्त वेदनाभरी कराहने और व्याकुल होने की आवाज सुनाई दी। अत्यंत पीड़ा से कोई छटपटा रहा था। भला यह कौन हो सकता है? इसे ऐसा कौनसा दुख है? मैं बहुत ही दुखित और चिन्तित हो उठा। उस अँधेरी रात में मेरे लिए यह शक्य नहीं था कि मैं यह जान पाता कि कराहनेवाला कौन है और इसे क्या तकलीफ है? पीड़ित की आवाज और स्पष्टतर होती गई और कंठ स्वर से मालूम पड़ने लगा कि कोई पुरुष है। मेरे भय का अंत नहीं था। करुणामिश्रित आतंक से अभिभूत मैं किसी तरह भी शेष रात भर सो नहीं पाया। प्रात काल आलस और जमुहाइयों के बीच मैं जागा। बुधा के पास उठ कर गया और पूछा—रात कौन रो रहा है था?

उत्तर मिला—रामरूप।—कभी कभी उसके पैरों में दर्द उठता है।

"मैंने तो आज ही सुन पाया।"

"तुम सोते रहते हो, फिर आज रात यह दौरा भी और दिनों से अधिक है।"

तो भी उसकी दयनीय दशा का जिन्हें साक्षात्कार हुआ है वे द्रवित हुए बिना न रहेंगे।

मैं अपने को इस सम्बन्ध में हर तरह से असहाय पाता हूँ। इच्छा रहते भी उसकी कोई सहायता नहीं कर सकता। कई रातें बीत गईं और वह चीख चिल्लाकर ही रात बिता पाता है।

इधर दो चार दिन से ओझों और झाड़ फूँक वालों का दौर शुरु हो गया है। कोई ब्रह्मराक्षस का प्रभाव स्थिर करता है तो कोई शहीदों की चाल मानता है। कोई देवी के कोप का निर्णय देता है। किसी किसी ने खोटे ग्रहों की सूची तयार की है। किसी किसी को शत्रु की घात का सन्देह है। सवेरे से शाम तक साईं, पण्डित, ज्योतिषी, मौलवी, मुल्ला और ओझों का आना जाना हो रहा है। कभी कभी कोई मारा मारा वैद्य या हकीम भी आ जाता है पर उसे ये भाग्यवादी किसी तरह ठहरने नहीं देते। इधर बीमार को राहत नहीं। उसका कष्ट दिनदिन बढ़ता जा रहा है। यह अवश्य है कि कभी कभी क्षणिक आराम मिल जाता है। जिस गुणी के प्रयत्न काल में विराम मिलता है वह थोड़ी देर के लिए अपनी विद्या को सफल समझ लेता है पर शीघ्र ही उसका विश्वास खण्डित हो जाता है।

उस दिन पहली बार मुझसे रहा नहीं गया। मैं उसके पास ही आ खड़ा हुआ। मेरे खड़े होने से धूप में व्यवधान पड़ गया। रामरूप ने सिर उठाकर कहा—क्यों भाई ?

मैंने कहा—बड़े कमजोर हो गये हैं ?

ईषत् गहरी साँस के लहजे में उत्तर मिला—क्या करें ?

"इलाज क्यों नहीं करते हैं ?"

"अब करूँगा। तुम्हारी राय मानूँगा लल्ला। ये हरामजादे ओझे और पंडे तो कुछ करने ही नहीं देते।"

"बिना इलाज कुछ नहीं होने का।"

"यह मैं जानता हूँ। झाड़ फूँक ने तो मुझे अपाहिज कर दिया है। अब मैं किसी की एक नहीं सुनूँगा। अगर मरना ही है तो अस्पताल में मरूँगा। एक डाक्टर के इलाज के समय मृत्यु सन्तोषप्रद तो होगी। मन की मन में तो नहीं रह जायगी।"

इसी समय उसका छोटा भाई हरसरूप आ गया। उसे उसने आदेश दिया—भैया, ठीक करले सामान। गाड़ीवाले से कहलादे। कल सबेरे अस्पताल ले चलना होगा। जो होगा देखा जायगा। एक घड़ी की देर भी अब बरदाश्त नहीं है।

छोटे भाई ने आदेश को शिरोधार्य करने का भाव प्रकट किया और चल पड़ा।

मैं जब वहाँ से लौटकर आया तो मुझे किस कदर आनन्द हो रहा था। मेरी बात कितनी शीघ्रता से स्वीकार हो गई थी। मेरी बात का इतना मूल्य था उसके निकट।

तेरह

सोहनपुर छोड़ना तो था परन्तु इस प्रकार अकस्मात नहीं। कौन जानता था कि पिताजी यों अचानक बीमार पड़ जायेंगे और मुझे भागकर आना पड़ेगा। अपने भाई की बीमारी से अभिभूत बुआ मुझे लेकर तुरन्त चल पड़ीं। भैया अपनी नौकरी पर से लौट आये। जीजी ससुराल से आगईं, लेकिन शोक! सारी दौड़धूप अकारथ रही। सबके पहुँचने से पहले ही रोगी की चेतना नष्ट हो चुकी थी। मुँह का शब्द बन्द होगया था। केवल गले में से घरघराहट की धीमी आवाज निकलती थी। अर्धनिमीलित आँखों में से ज्योति की रेखा धीरे धीरे क्षीण हो रही थी। जीवन-पर्यन्त नीम की ताजी दातुन से स्वच्छ किये जाते रहे उनके मोती से दाँत अपनी स्वाभाविक कान्ति से विहीन हो रहे थे। इस बीमारी के प्रारम्भ से ही उनकी परिचर्या का संपूर्ण भार स्वेच्छा से सरदार की माँ ने अपने ऊपर ले लिया था। वे ही इस समय उनके समीप उपस्थित थीं। हम लोगों के पहुँचने पर उन्होंने आँखों में आँसू छलकाकर हम लोगों की ओर देखा और बोलीं—इनकी तो कल से ही ऐसी हालत हो रही है।

अकेले में पाकर कहा—रमेश, तू बुआ के साथ जायगा ?

क्या जानूँ ?—मैंने उत्तर दिया।

"बुआ तो यही कह रही थीं।'

"तब यही होगा।

"पर वे यह भी तो कह रही थीं कि तुझे आगे पढ़ना है। वहाँ तो आगे पढ़ाई नहीं।"

"यह ठीक है। इसीसे शायद मुझे उनके साथ न जाना पड़े।'

"तो मत जाना तू भाई यहाँ पढ़ने लिखने का सुभीता रहेगा।"

वह शायद कहना चाहता था कि मैं उसके घर में रह जाऊँगा। लेकिन वह यह कह न सका। मुँह पर आई हुई बात को दबा गया। संसार में यह विशेषता सदा से रही है कि वह अपने आपको बिल्कुल अनावरित कभी नहीं करता। कुछ न कुछ अवश्य रख लेता है।

मैंने कहा—लेकिन यहाँ मुझे कौन रहने देगा ?

आरोप उपस्थित करता है जिसे सुनकर कोई भी समाज का सदस्य ग्लानि से गले बिना नहीं रह सकता। रात दिन के इन उपाधिपत्रों को सचित करते करते केदार को भी उनके प्रति वैराग्य उत्पन्न होगया है। वह अब उन पर विशेष ध्यान नहीं देता। रामचरन तिवारी को बिगाड़ कर उनके कुलीन पुरखों को बदनाम और उनके सम्माननीय घर को बरबाद करने की बात को भी उसने सहज भाव से सह लिया है। यद्यपि यह बात कही जा सकती है कि रामचरन तिवारी कोई बच्चा नहीं है। केदार के समवयस्क हैं, उससे कुछ अधिक पढ़े-लिखे हैं और समझदार हैं, और इतने पर भी यदि वे केदार के प्रभाव में आ जाते हैं तो दोष उनका ही है। लेकिन उन्हें दोष दे कौन? बड़े घर के लड़के को उन बातों का पता क्या? कोई न कोई पथप्रदर्शक उसके लिए चाहिए ही और वह केदार से बढ़कर कहाँ मिल सकता है।

इतनी सारी बातों के बाद भी मैं केदार के संबंध में मैं अपनी निजी धारणा किसी और ही तरह की रखता हूँ। उसकी एक सुकोमल आत्मीयता का मैंने बहुत पहले से अनुभव किया है। वह कभी एकान्त स्वार्थ के वशीभूत होकर मित्रता के व्यवहार को दूषित नहीं करता है। रामचरन तिवारी को पतन की ओर ले जाने में उसका कितना हाथ है यह भी अभी तक विश्वस्त ढंग से निर्णीत नहीं हो पाया है।

मनुष्य को हीनतर अवस्था का प्राणी बना देने वाली इन परिस्थितियों ने आखिरकार केदार के दृढ़ स्वभाव पर भी असर डाला है। वह अपनी अवस्था का अनुभव करने लगा है। इसी से आज वह मुझसे पुनः इसका आग्रह नहीं कर सका कि मैं उसी के घर रह जाऊँ।

मैंने अपनी ओर से कहा—यहाँ रहना होगा तब तो आप सब हैं ही।

मेरे कथन से उसके चेहरे पर स्वाभाविक रंग लौट आया। उसने हँसकर कहा—हाँ, इसमें क्या बात है।

बुआ मुझे छोड़ देती तो शायद कुछ दिन उसका साथ करना ही स्वीकार करता पर वे न मानीं। मुझे एक बार फिर मोहनपुर की दुनिया में चला गया।

इस बार सोहनपुर आते आते मेरे मन में यही विचार बारबार आता था कि क्या कभी मुझे यहाँ से छुटकारा भी मिलेगा ? क्या सोहनपुर के साथ मेरे जीवन का अटूट सबंध हो गया है ? क्या किसी प्रकार मैं यहाँ से निकल कर मुक्त वातावरण में विचरण कर सकूँगा ? अपने घर का जो बंधन मुझे पात तक बाँधे हुए था वह तो पिता जी के निधन से दूर हो गया पर सोहनपुर का बंधन तो दृढ़तर होता जा रहा है।

इस बार किसी तरह मेरा मन सोहनपुर में नहीं लग रहा है। गजेन्द्र-मोक्ष से पूर्व गज के मन में जैसी छटपटाहट थी उससे भी अधिक मैं व्याकुल हो रहा हूं। भगवान् ने गज की गुहार सुन ली थी लेकिन मेरी सुनने की उन्हें फुरसत कब होगी ? इस बेचैनी के बीच मेरे लिए एक ही परितोष का विषय था—मेरी सखी बिट्टो का विमल हास्य। उसकी विनोदमयी मूर्ति के साथ मैं थोड़ी देर के लिए अपने हृदय की वेदना को भूल जाता था। वह भी इधर इस प्रयत्न में रहती थी कि मेरे लिए विनोद की अधिक से अधिक सामग्री जुटाये। शायद उसे मेरे भीतर उठ रहे बवंडर की पूर्वसूचना मिल चुकी थी। मुझे घर के भीतर एकान्त में बैठे रहने का वह मौका ही न छोड़ती थी। कोई न कोई बहाना लेकर आ उपस्थित होती और मुझे बाहर खींच ले जाती।

कल एक ब्याह के घर में वह हो आई है वहाँ का समाचार मुझे देना है। इसलिए वह सीधी मेरे पास आ पहुँची। बिट्टो ने बताया—किस किस तरह वहाँ आगत स्त्रियाँ नाचीं। कैसे कैसे गीत गाये गये। उसके बाद किस प्रकार स्त्रियों ने नाटक किया।

ढक लिया ।

मैं—जो बात किसी की समझ से न आये उसे तो करके दिखाना ही पड़ेगा ।

बिट्टो—सच, तुम्हारी समझ में नहीं आया रमेश, कि वे कैसे नाचीं थी ?

मैं—नहीं, कैसे आये ? मैंने तो उन्हें नाचते देखा नहीं । मैं किसी ब्याह के घर में गया भी नहीं यदि जाता भी तो क्या स्त्रियों में पहुँचता ? हाँ, मैंने मृत्यु के समय उन्हें कुहराम मचाते देखा है, अपने ही घर में ।

मालूम पड़ता है मुझे अभागा ख्याल करके बिट्टो के हृदय में मेरे लिए ममता का अंकुर उग आया । उसने यत्नपूर्वक सीखी हुई नृत्यकला का प्रदर्शन कर दिखाने में कोई कसर न रक्खी । जब मेरे मुँह से 'वाह वाह' की ध्वनि अनायास फूट पड़ी तो वह एक बार फिर लजा गई । नाचने के परिश्रम से आरक्त उसके गुलाबी गालों पर एक हलका मीठा तमाचा जड़ते हुए मैंने कहा—बिट्टो, तुझे इतना सुन्दर नाचना आता है ।

उसने भोले भाव से उत्तर दिया—तुम्हीं ने तो नचाया है ।

उसके उत्तर से पुलकित होकर मैंने कहा—तू इसी तरह रहे तो क्या मैं सोहनपुर छोड़कर कहीं जाऊँ ।

वैसे तुम कहाँ जाओगे ?—उसने पूछा ।

"जहाँ जी चाहेगा ।"

"फिर कब लौट कर आओगे ?"

"कभी नहीं ।"

"कभी लौटोगे ही नहीं ?"

"नहीं ।"

"यह भी कहीं हो सकता है ?"

"क्यों ?"

"तुम जहाँ जी चाहेगा जाओगे, और कभी लौटोगे नहीं ।—यह भी कहीं हो सकता है ?"

"हाँ, यही होगा । मैं जल्दी ही जाऊँगा यहाँ से ।"

मेरी बात से बिट्टो सोच में डूब गई। बड़ी देर तक उदास रहकर बोली—मैं तुम्हें बुलाऊँ तब भी नहीं आओगे?

"तुम्हें मेरा पता कैसे लगेगा?"

"पता मैं लगा लूँगी।"

"मैं ऐसी जगह जाऊँगा जिसका पता मुझे भी नहीं है। परन्तु यदि तुम्हें वहाँ का पता चल जाय और तुम बुलाओ तो मुझे आना ही पड़ेगा।"

मेरे उत्तर की अन्तिम बात से उसे कुछ परितोष हुआ।

मैंने जो यह इतनी बात बिट्टो से की वह यों ही नहीं थी। बुआ के साथ बेबसी में सोहनपुर आकर भी मेरा जी यहाँ नहीं लग रहा था। हृदय में यही हो रहा था कि अब कहाँ के लिए चल दूँ। आगे पढ़ने की अब कोई व्यवस्था हो सकेगी इस ओर अब मैं विचार भी नहीं करता था। पिता जी रहते तो निश्चय ही मैं और कुछ बात नहीं सोचता। जाकर चुपचाप हाई स्कूल में भरती हो जाता। वह मार्ग तो एक तरह से बन्द ही हो गया था।

पिता जी की सम्पत्ति के बँटवारे के बाद भैया के ऊपर मेरा भार नैतिक दृष्टि से विशेष नहीं रह गया था। उन्हें मेरी चिन्ता न करनी चाहिए थी। लेकिन किस अनुरोध से वे इसे अपना कर्तव्य समझने लगे कि मुझे आगे पढ़ायें, मेरे जीवन के निर्माण में यत्नशील हों? उनका एक पत्र बुआ के नाम आया। उसमें उन्होंने लिखा।—बुआजी, पिताजी की यह बड़ी इच्छा थी कि रमेश को वे किसी काबिल बना जाँय। उनकी वह चिन्ता पूरी न हो सकी। अब जब वे नहीं

बदली सी छा गई । किसी गहरी ठेस से उनका अन्तर हिल गया । उनकी यह दशा देख कर मेरा समस्त उत्साह फीका पड़ गया ।

ब्यालू के बाद फूफा जी ने पूछा—पत्र तुमने पढ़ लिया होगा ।

बुआ ने कोई उत्तर न दिया । फूफा जी फिर बोले—क्यों जी, तुम्हारी क्या राय है ?

बुआ—क्या ?

फूफा—रमेश को भेजने की ।

बुआ—रमेश को पढ़ाना तो है, लेकिन क्या उसे इतनी दूर भेजना चाहिए ? कौन उसकी देखरेख करेगा ?

फूफा जी—उसकी भाभी करेगी ।

बुआजी—अगर भाभी कर सके तो देख लो । भेज दो, लेकिन मेरा मन तो नहीं कहता ।

फूफा—जब उसे पढ़ाना है तब कहीं न कहीं तो भेजना ही पड़ेगा । अकेले रहने की अपेक्षा भाई भौजाई के पास रहना अच्छा रहेगा ।

बुआ—तो लिख दो, भेज देंगे । लेकिन इतनी जल्दी क्या पड़ी है ? उनसे कह दो दो-एक महीने ठहर कर आयें ।

फूफा—यह भी खूब । स्कूल में भेजने के लिए भी क्या तुम्हारे पंचांग का मुहूर्त माना जायगा ?

बुआ कुछ रूठ कर बोलीं—न माना जाय, तुम भेज दो । मैं कुछ भी न बोलूँगी ।

आखिर फूफा ने भैया को स्वीकृति भेज दी । मेरे जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ होने जा रहा था । मैं प्रसन्न था, उत्सुक था और रह रह कर भविष्य के झरोखे में झाँकने की उत्कंठा से चंचल हो रहा था ।

चौदह

रामरूप अस्पताल से जिस दिन घर आया तो उसका कायाकल्प हो चुका था। उसका पशु-दुर्बल शरीर सुन्दर स्वस्थ और सबल दिख रहा था। मालूम पड़ता था मेरी सलाह उसे अब तक याद थी। मुझे देखते ही वह मुस्करा दिया। मैं कृतकृत्य होगया।

मैंने हँसकर पूछा—अब तो ठीक है?

"ठीक हूँ लल्ला, लेकिन और कुछ दिन साले ओझों के फेर में पड़ा रहता तो मिट्टी में मिल जाता।"

मैंने सिर हिलाकर अपनी सम्मति की गंभीरता से उसे अवगत करने की चेष्टा की। इसके बाद मैंने पूछा—अब आपके दर्द तो नहीं होता?

"दर्द अब क्या होगा? बिजली चढ़ाने के बाद भी क्या दर्द रह सकता है? डाक्टर साहब ने अपने हाथों से बिजली लगाई। क्या अजब इलाज है। आनन फानन आराम होता है। एक यहाँ के धरे हैं पूरे ढोल। जो बिताओ का ज्ञान भी जिन्हें नहीं होता।"

मुझे नया जीवन मिला। रुपये भेजे थे। उन्होंने बहुत काम किया।—रामरूप ने कहा।

मुझे बहुत देर में लिखा। पहले लिख देते तो मैं कभी का आजाता।—किशनसरूप ने दुखी होकर कहा।

रामरूप—लिखना चाहा था मैंने, लेकिन-लेकिन—

"आपने समझा शायद—"

"हाँ, मैंने समझा –"

किशनसरूप की आँखों से आँसू ढुलक पड़े। रामरूप ने उसे खींच कर छाती से लगा लिया। रुंधे कंठ से बोला—मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया था भाई। ओह, वह बात मुझे भूलती नहीं।—बहू को अकेली छोड़ आये? साथ ले आना था।

"हाँ ले आता, लेकिन—"

"उस बेचारी को भी मेरे से अन्याय ही मिला। कैसे आती फिर वह?"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं थी। इतनी जल्दी में चला हूँ कि नहीं ला सका उसे।"

"जल्दी ही लौट जाओगे?"

"पाँच छः दिन के भीतर।"

"हाँ-हाँ, मैं तो अब ठीक ही हूँ। तुम जल्दी ही लौट जाओ भाई। बहू वहाँ अकेली है।"

"मैं उसका प्रबन्ध कर आया हूँ। मेरे नीचे जो गुमाश्ता काम करता है। उनकी स्त्री उसके साथ रह जायगी। मकान [illegible] है। किसी बात का डर नहीं है। बिल्कुल सदर में मकान है।"

कर, उसकी बात-चीत सुनकर कौन कह सकता है कि यह वही किशनस्वरूप है। अभी उस दिन की घटना है यही किशनस्वरूप अपनी स्त्री को लेकर चला गया था। बैलगाड़ी में बैठे बैठे उसने सबसे नमस्कार किया था तब उसकी आँखों में हलका जल झलमला रहा था। शून्य उदास मुख मुरझाया सा दिखता था। बेबसी में ही वह पत्नी को लिए जा रहा था। अब बात ही और है। पत्नी के साथ अकेले साधिकार जीवन बिताकर अब वह गृहस्थ बन गया है। उसकी बोली भी बदल गई है। मोहनपुर की घरेलू भाषा के स्थान पर वह खड़ीबोली बड़े लहजे से बोलने लगा है। जैसे परदेश के बाहर और भीतर दोनों को उसने चारों ओर लपेट लिया हो। गाँव की कोई चीज अपने साथ रखी है तो वह है अपनी मुखाकृति जिसे वह चाहने पर भी बदल नहीं सकता।

इसके बाद किशनस्वरूप का ध्यान मेरे पर गया। अपने बड़े भैया से पूछा—यह कौन है ? मैं पहचान नहीं पाया हूँ भैया।

रामस्वरूप ने उत्तर दिया—अरे सच। तू इतनी जल्दी गाँव के लड़कों को भूल गया ?

किशनस्वरूप—देखा तो जरूर है पर याद नहीं पड़ता।

इस पर मुझे हँसी आ गई। वह मुझे हँसता देखकर अप्रतिभ हो गया, फिर कृपा जी का नाम लेकर पूछा—उनकी स्त्री का भतीजा है न ? नाम तो मुझे किसी तरह याद नहीं आ रहा है।

रामस्वरूप और मैंने सम्मिलित स्वीकृति प्रदर्शित कर आगे के संकट से उसे उबार लिया।

हूं और मेरे लिए किशनस्वरूप जैसे अधिकारारूढ़ युवक का कोई आदेश देना अनुचित भी नहीं है, किशनस्वरूप को रोक कर मेरे प्रति सम्मान दर्शाना चाहा। मुझे किशनस्वरूप की बात कुछ पसन्द भी नहीं आई थी, तो भी मैंने किसी तरह का प्रतिरोध न दिखाकर बिस्तर उठा लिया और भीतर की ओर चल पड़ा।

रामस्वरूप ने मुझे रोककर कहा—रहने दो लल्ला।

मैं बिस्तर लेजाकर भीतर रख आया। जब मैं लौट कर आया तो रामस्वरूप की आँखों में मेरे लिए कृतज्ञता थी। किशनस्वरूप के व्यवहार के लिए वह किंचित व्यथित सा हो रहा था।

अगले दिन सन्ध्या समय किशनस्वरूप गाँव से बाहर पगडंडी पर मुझे मिल गया। गाँव की सहज स्वाभाविक भाषा से भिन्न खड़ी शहरी बोली में मुझसे पूछा—कहाँ से आ रहे हो?

"गाँव से।"

"गाव में तुम किसको जानते हो?"

इस प्रश्न से मेरे दिमाग का पारा कुछ अंश ऊपर चढ़ गया। मैंने इस भाव को दबा कर उत्तर दिया—कुछ आपको ही जानता हूँ। क्या एक रात में ही आप मुझे अजनबी समझने लगे?

मेरी बात से घबरा कर वह कुछ होश में आ गये। मेरी ओर गहरी नज़रों से देखा और क्षमायाचना के लहजे में बोले—मैंने देखा नहीं था आपको।

मैंने भी स्वर को सरल करके कहा—कोई बात नहीं है।

दर्दों से भरा जीवन कैसा मौज का जीवन था। मैं तो बहुत दिन स्कूल में पढ़ नहीं पाया। लेकिन जो दो चार साल पढ़ा वह अमूल्य स्वप्न की तरह अब कभी कभी याद आ जाया करता है। उस समय एक बहुत बुड्ढे अध्यापक थे। वे झूम झूम कर हम लोगों को पढ़ाया करते थे।"

यह कुछ और कहने जा रहा था परन्तु मैंने बीच में बाधा डाल कर पूछा—ठीक है, लेकिन एक बात बताओगे?

"क्यों नहीं बताऊँगा। पूछो।"

"आपको परदेश में अच्छा लगता है या गाँव में?"

"गाँव में—यहाँ क्या किसी का जी लगेगा? न कोई जगह जाने आने की, न कोई चीज देखने की। घर से निकलो कि खेतों में। थोड़ी दूर गये नहीं कि नदी का किनारा। मीलों तक सूखी बालू या झाऊ का वन। जी क्या लगे किसी का यहाँ?"

"मेरा भी जी अब यहाँ से उचट गया है। सोचता हूँ कि कैसे छुटकारा मिले।"

"कहाँ जाओगे तुम?"

"अपने भैया के पास जाऊँगा।"

"वहाँ क्या करना होगा?"

"पढ़ूँगा।"

"इतना पढ़ना लिखना क्या कम है जो और पढ़ोगे?"

"अभी तक तो मैंने पढ़ा ही क्या है?"

"यही मैं कहता हूँ कि इतना बहुत है। तुम काम पर लग जाओ। आज पढ़े-लिखे नौकरियाँ खटकाते फिरते हैं। दुनिया को काम चाहिए। आदमी चाहे पढ़ा हो या बेपढ़ा।"

"मैं क्या काम जानता हूँ जो काम पर लग जाऊँ। मुझे काम पर लगा देगा ही कौन?"

में काम करनेवाला हूं।"

"पर आप तो बड़ी उमर के हैं, सब कुछ देखा है। काम का ज्ञान रखते हैं।"

"ज्ञान तुम भी तो रखते हो भाई।"

"यह मैं नहीं मान सकता।"

"मानो चाहे न मानो। मुझे तो लगता है कि तुम किसी काम में पीछे रहनेवाले नहीं हो।"

"यह मान भी लें तो भी मुझे कौन काम पर लगायेगा ?"

"यह मेरे जिम्मे रही। मैं तुम्हें काम पर लगवा देता हूं।"

"घर से बाहर जाना पड़ेगा ?"

"और नहीं तो क्या ? तुम क्या मटके में ही गुड़ फोड़ना चाहते हो ?" यही तो गांव के हर आदमी में ऐब होता है। गृह प्रेम के रोग से वह कभी अपने को मुक्त नहीं कर पाता।"

"मुझे कहाँ जाना होगा ?"

"जहाँ भी जाना हो। घर से बाहर पैर रखो ही फिर चाहे [illegible] चाहे कलकत्ता, कोई इस पर विचार करने नहीं बैठेगा।"

"अच्छी बात है। कभी देखा जायगा।"

"हाँ जब तुम्हारा जी चाहे तब अड्डा याद रखना। [illegible] स्थान है। [illegible] है। [illegible] लग सकेगा।"

में काम करनेवाला हू।"

"पर आप तो बड़ी उमर के हैं, सब कुछ देखा है। काम का ज्ञान रखते हैं।"

"ज्ञान तुम भी तो रखते हो भाई।"

"यह मैं नहीं मान सकता।"

"मानो चाहे न मानो। मुझे तो लगता है कि तुम किसी काम में पीछे रहनेवाले नहीं हो।"

"यह मान भी लें तो भी मुझे कौन काम पर लगायेगा?"

"यह मेरे जिम्मे रही। मैं तुम्हें काम पर लगवा देता हू।"

"घर से बाहर जाना पड़ेगा?"

"और नहीं तो क्या? तुम क्या मटके में ही गुड़ फोड़ना चाहते हो?" यही तो गाव के हर आदमी मे ऐब होता है। गृह प्रेम के रोग से वह कभी अपने को मुक्त नहीं कर पाता।"

"मुझे कहाँ जाना होगा?"

"जहाँ भी जाना हो। घर से बाहर पैर रखते ही फिर चाहे दिल्ली हो चाहे कलकत्ता, कोई इस पर विचार करने नहीं बैठता।"

"अच्छी बात है। कभी देखा जायगा।"

"हाँ जब तुम्हारा जी चाहे तब भटिंडा याद रखना। पंजाब में [illegible] स्थान है। रेलों का बड़ा केन्द्र है। वहां पहुंच कर मेरा पता आसानी से लग सकेगा।"

"अगर घर से निकल पड़ा तो पता लगाना क्या बड़ी बात है?"

"हाँ, कुछ भी नहीं। बड़ी बात तो घर से चल पड़ना ही है।"

"आप यहाँ कितने दिन तक हैं?"

"दो तीन दिन से अधिक नहीं।"

इतनी बातें करके हम दोनों पृथक हुए। उस समय न तो मुझे [illegible] कि एक दिन सचमुच ही मैं भटिंडा जा पहुँचूँगा और न [illegible] ने ही यह सोचा होगा। बहुत सी बातें जीवन में अचानक [illegible] हैं

कब था ?"

"तो आप दिल्ली चलिये ।"

"आप दिल्ली में रहते हैं ?"

"हाँ जी ।"

"किस जगह ?"

"जहाँ चलकर आपको ठहरना होगा ।"

"आप वहाँ क्या काम करते हैं ?"

"मैं तो वहाँ मौज करता हूँ, और आप शायद विद्यार्थी हैं ?"

"विद्यार्थी तो हूँ पर ऐसा ही जो बिना टिकट सफर कर लेता है और उद्देश्य रहित चल पड़ता है ।"

"नौजवानों में इतना हौसला तो कोई बुरी चीज नहीं ।—तो आप मेरे मेहमान होंगे ?"

"सहर्ष ।"

गाड़ी दिल्ली पहुँची और एक नौजवान एक जिन्दादिल महाशय [illegible] का मेहमान बना । दीनानाथ महाशय रिटायर्ड अफसर हैं । जीवन आराम में गुजारा था । बुढ़ापे में पेंशन लेकर घर बैठे हैं । एक लड़का है । इंजीनियरिंग में पढ़ता है । दो लड़कियों के ब्याह हो गये हैं । दो अविवाहित हैं जिनमें एक बिल्कुल ब्याहयोग्य है । उसी के लिए वर की तलाश में बड़े शहरों की खाक छानकर लौटे हैं । मुझे अपने साथ ले जाकर वृद्ध दीनानाथ ने [illegible] करके घर के हर एक सदस्य से मेरा परिचय करा दिया । उस घर के हर एक प्राणी ने मुझे इस प्रकार स्वीकार किया जैसे सभी बहुत पहले से मुझे जानते हों ।

जहाँ जी चाहेगा वहाँ जाकर भगवद्भजन कर सकूँगा।

मैंने कहा—यह तो आपका विचार ठीक है। जितनी जल्दी हो सके यह कार्य कर डालिये।

दीनानाथ—पर भाई, इतना सरल यह काम दिखता नहीं है। उपयुक्त पात्र की खोज करना और उसमें सफल हो जाना सहज नहीं है।

मैंने पूछा—अभी तक आपको सफलता नहीं मिली?

वे—मिल जाती तो क्या मैं अब तक बैठा रहता।

इसके बाद श्रीमती दीनानाथ आ पहुँचीं और बोलीं—आप इन्हें नहाने धोने भी देंगे या यों ही बातों में लगाये रहेंगे?

दीनानाथ खिसियाये। सफाई देते हुए बोले—अभी भेजता हूँ। मैं रमेशबाबू से तो चार काम की बातें कर रहा था।

श्रीमती ने बात काटकर कहा—काम की बातों के लिए बाद में समय की कमी न होगी।

मैंने कहा—हाँ, यही तो छपा है न।

वे—तो आपने पढ़ा है?

मैं—हाँ अभी अभी पढ़ रहा हूँ।

इस पर वे प्रसन्न हुईं और कहने लगीं—आज इस समय तो नहीं शाम को नन्दो से कहूँगी, वह आपको अपना नाच दिखायेगी।

मैंने सिर हिलाकर स्वीकृति देदी।

उस सध्या को तो मुझे नींद आगई। हाँ, दूसरे दिन सन्ध्या समय नन्दो की नृत्य प्रवीणता देखकर मेरा हृदय गद्‌गद होगया। भक्ति विह्वला मीरा के भावों को नाचकर उसने इस खूबी से दर्शाया कि मैं वैष्णवों की मंडली में कुछ काल के लिए पहुंच गया।

यह सब सहज भाव से हुआ। मैं उन्मुक्त मन से जनकदुलारी और जनकनंदिनी का प्रशंसक बन गया। उनके घर का वातावरण ही ऐसा था कि मैं यदि अपने को अलग अलग करने की चेष्टा करता तो [illegible] जाता। बातचीत में, व्यवहार बर्ताव में, मैं खूब आगे रहा और [illegible] उन लोगों में पसन्द की गई। मैं जानता हूँ मैं [illegible] में उस परिवार के समकक्ष नहीं था परन्तु अपने तौर-तरीके से मैंने उस कमी को छिपा लिया। यह नहीं था कि इसके लिए मुझे प्रयत्न न करना पड़ा हो। काफी प्रयत्न के उपरान्त मैं इसमें सफल हो सका। बहुत कुछ मेरी सफलता का श्रेय गु[illegible] महाशय की विनोदशीलता को था और कुछ कुछ उनकी [illegible] के निष्कपट खुले बर्ताव को।

लड़की है यह मैं बता चुकी हूँ। परमात्मा ने तुम्हें इस घर में जो भेजा है भैया, वह इसी उद्देश्य से कि एक सत्पात्र के हाथ में वह इसे सौंपना चाहता है। नहीं तो कहाँ तुम्हारा घर और कहाँ दिल्ली।

इस प्रस्ताव को इस तरह अचानक पेश किये जाते देख मुझे बड़ा अजीब-सा लगा। सामने बैठी हुई जनकदुलारी के लजाये चेहरे पर एक नजर डालकर मैंने क्षण भर चुप्पी साध ली। उसके बाद बोला—आपका प्रस्ताव मेरे लिए हर एक दृष्टि से सौभाग्य का संदेश है।

दीनानाथ महाशय अपने आवेश को न रोक सके, उच्च स्वर से बोले—निश्चय ही रमेशबाबू आप नन्दो की माँ की बात को पसन्द करते हैं? यही होना चाहिए।

मैंने उनकी आशाओं पर ठंढा पानी छोड़ते हुए अपना वक्तव्य जारी रक्खा। मैंने कहा—किन्तु मैं इस संबंध में कोई फैसला करने को स्वतन्त्र नहीं हूँ।

पिता दोनों के सम्मिलित प्रस्ताव बल्कि आवेदन ने बाधाओं की समस्त सम्भावनाओं को तिरोहित कर दिया था। मैं भविष्य की सुनहरी कल्पनाओं में खोगया। मुझे अपनी विशेषताओं का आभास मिलने लगा और अपनी ओर आत्मविश्वास बढ़ चला।

जनकदुलारी के साथ जब उस दिन भी शतरंज की बाजी बिछाने के लिए जनकनंदिनी मेरे सिर होगई तो मैंने कुछ सकुचित होते हुए कहा—आज नहीं।

"क्यों आज क्या हुआ ?"

"इच्छा नहीं है।"

"घर की याद आ रही है ?"

"हाँ।"

"किसे याद कर रहे हैं ?"

"भाभी को। मैं उनसे बिना कहे ही चला गया था। बड़ी फिक्र कर रही होगी।"

"—और रास्ते में मिल गये पिता जी। वे आपको यहाँ खींच लाये। इसका आपको बड़ा दुख होगा।"

"मुझे क्यों दुख होने लगा ?"

"तो आप यहाँ आने से प्रसन्न हैं ?"

"निश्चय।"

"मैं नहीं मान सकती।"

"क्यों ?"

"क्योंकि यहाँ आपका जी नहीं लगता। घर की याद आती रहती है। भाभी फिक्र कर रही होगी, यही सोच रहे हैं ?"

"यह सोचते हुए भी तो यहाँ जी लग सकता है।"

"यदि लग सकता होता तो [illegible] आप [illegible] विरक्त किस तरह होते ?"

"सदा के लिए तो विरक्ति की बात मैं नहीं कहता। मैं तो [illegible]

हूँ, नन्दो, जो तुमने मुझ जैसे अरसिक को एक शौक लगा दिया।"

"मैंने तो नहीं आपसे सीखने को कहा था। जीजी के कहने से ही तो आप आकर शामिल हुए थे।"

"इसके लिए मैं तुम्हारे ऊपर कोई दोषारोपण नहीं कर रहा। उल्टे मैं तो कृतज्ञ हूँ, तुम दोनों बहिनों का जिनके सत्संग में मुझे एक ऐसा लाभ हुआ जिससे छुट्टी और बेकारी का थोड़ा सा समय मनोरंजन के साथ कट सकेगा। यह इतना लम्बा और नीरस जीवन विस्तृत मरु-भूमि की तरह साँय साँय करने न पाये इसका एक अच्छा साधन हाथ आगया।"

"तो चलो बाजी बिछाओ। मैं जीजी को बुलाये लाती हूँ।"

मेरी मौन स्वीकृति पाकर वह चली गई।

नन्दो—आप लोग आज खेल नहीं रहे हैं। मुझे चिढ़ा रहे हैं। मैं जानती हूं। इसलिए मैं फिजूल यहाँ रहकर अपना सिर खपाना नहीं चाहती।

वह एक किताब उठाकर दूसरे कमरे में चली गई। अब रह गये हम दो—मैं और जनकदुलारी। मैंने बिना किसी को लक्ष्य किये कहा—सच मुच ही आज की बाजी व्यर्थ रही।

आप जानते हैं क्यों?—जनकदुलारी ने सहज भाव से कहा। परन्तु सिर उठाकर मेरी ओर ताका नहीं।

मैंने सिर हिलाकर जताया—नहीं।

"मुझे तो लग रहा है कि दोनो ओर कोई चोर है। अपना मैं निकाल कर फेंक देना चाहती हू रमेशबाबू।"

मैं स्तब्ध और चुप।

वह कहती गई—अम्मा ने जो बात कही है वह ठीक नहीं है। आप उसे कभी न मानेंगे यह मुझे लग रहा है, और मानना बेकार भी है। मेरा हृदय और शरीर दोनों किसी दूसरे के हो चुके हैं।

तुम्हारे पिता जी को पता है?—मैंने पूछा।

जनकदुलारी—नहीं। वे इस विषय में निर्दोष हैं। वे तो अम्मा की हाँ में हाँ भरना जानते हैं।

"अम्मा यह सब जानकर भी ऐसी बात क्यों करती है?"

"पिताजी मेरे चुनाव को न मानेंगे, यही आशंका। दूसरा कारण भी हो सकती है।"

'पर यदि वे धैर्य के साथ उन्हें समझाएँ तब भी न मानेंगे?"

"धैर्य का समय नहीं है। शीघ्र ही सब कुछ प्रगट हो जाने का भय उपस्थित हो गया है इसीसे।"

मैं चुप निश्चल बैठा रह गया।

कर नमस्ते करके वह वहाँ से भाग गई। उसके जाते जाते मैंने भी प्रत्युत्तर में कहा—नमस्ते जी, सदा के लिए मैं भी आज जा रहा हूँ।

मालूम पड़ता है मेरी बात अनसुनी करके वह नहीं गई। क्योंकि थोड़ी ही देर में नौकर एक ताँगा ले आया और मुझसे कहा—बाबूजी, ताँगा आगया है।

उस समय घर में महाशय दीनानाथ और नन्दो दोनों ही नहीं थे। अम्माजी से मैंने हाथ जोड़कर विदा माँगी तो उन्होंने रुआँसी होकर कहा—बेटा भगवान सब अच्छा करेंगे।—तुमने तार पढ़ तो लिया है अच्छी तरह? पहुँचते ही लिखना। भाई के ठीक होते ही हम लोग आ पहुँचेंगे। आज कल उन्होंने सब काम निबटा लेना है।

के बाद रात को साढ़े नौ या दस बजे पंजाब के उस प्रसिद्ध स्टेशन पर जा उतरा। भूखा-प्यासा, धूल से भरा, थकावट से चूर, आंखों के सामने तमाशा आरहा था। मैं सिर पर हाथ रखकर प्लेटफार्म पर बैठ रहा। एक पुलिस के सिपाही द्वारा कर्तव्य की याद दिलाये जाने पर बाहर निकला। मुसाफिरखाने में इधर उधर घूम कर भोजन की तलाश की तो रोटियों की एक दो दूकानें मिलीं। वहाँ रोटियों के ढेर लगे थे। यू०पी०जैसी भोजन व्यवस्था वहाँ नहीं थी। बड़ी बड़ी दाढ़ी वाले कद्दावर सिक्ख और जाट उन रोटियों के साथ न्याय कर रहे थे। मेरे कुल छ पैसे लगे। दाल शाक और रोटी हर एक वस्तु से मैं तृप्त होगया। पेट की तृप्ति तो हुई पर अब कोई अपना अपने वतन का मिले तो जी शांत हो। पर वहाँ लम्बी लम्बी दाढ़ियों, ऊँचे कद्दावर शरीरों और पंजाबी बोली के सिवा कुछ न मिला। इस नई दुनियां मे थोड़ी देर में ही मेरा जी व्याकुल हो उठा। मैंने इधर उधर किशनसरूप की तलाश की। कहीं पता नहीं लगा। पंजाब के लोग तो मेरी बात भी पूरी तरह समझ न पाये। मैं इधर से उधर कितनी बार घूमा। रात के ग्यारह बजे सौभाग्य से अपने ही गांव के एक मुसलमान सज्जन से भेंट हुई। वे पुलिस में मुलाजिम थे। मुझे अपने घर का आदमी जान बड़ी आवाभगत से मिले। उधर का हालचाल पूछकर अपनी खातिर की। उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार को देखकर यही लगता था कि घर से बाहर रहनेवाले को अपने घर और वहाँ के लोगों के प्रति कैसा मधुर भाव होता है। एक क्षण के लिए भी यह विचार नहीं उठता कि हिन्दू और मुसलमानों के लिए एक नहीं दो अलग अलग देश चाहिए।

उनसे कहो कि मोहनपुर से कोई आया है।

"क्या नाम है?"

"रमेश"

"अरे, रमेश है, रमेश!" कहती हुई रम्मो दौड़कर छत से नीचे उतरने लगी, तो मेरा जी स्नेह से पुलकित हो उठा। शीघ्र ही किशनसरूप भी आ पहुँचे और कुशल प्रश्न किये।

मुझे बाद में उन्होंने बताया कि रम्मो ने जब से सुना था कि मैं यहाँ आने की सोच रहा हूँ तब से वह अनेक बार तकाजा कर चुकी है। उसने यह भी उन्हें बताया है कि वह मेरी रोज की साथिन है।

मैं सचमुच ही अपने लोगों के बीच में था। शाम के समय ही मेरी भोजन व्यवस्था होने लगी। मैंने बहुत मना किया पर कौन सुनता था।

खाया तो क्या, मैंने केवल स्पर्श कर लिया। मेरा पेट तो दिनभर सरदार की कहानियों और जायकेदार साग से भरा हुआ था। मेरे स्पर्श से ही अपने श्रम को सार्थक माननेवाली रम्मो का रोम रोम पुलकित और प्रसन्न हो उठा।

रम्मो बीच में ही पूँछ उठी—कब से मोहनपुर नहीं गये ? तिने की याद मुझे बराबर आया करती है। खास कर उस दिन की जब वह मुझे एकाएक अपने साथ खेलने न देना चाहती थी और तुम्हारे साथ भी भाग पड़ी थी। उस दिन के बाद फिर तो ऐसी मिली कि फिर साथ लिए बिना कहीं न जाती। अम्मा तो उनको मेरे लिए जान देती थीं। मुझे जहाँ पाजातीं वहीं मेरी चोटी गूँथ देतीं, कपड़ा ठीक कर देतीं, हाथ मुँह धो देतीं। कितनी ममता थी उनमें।

भटिंडा में बैठे बैठे मुझे उसकी बातों ने क्षण भर को मोहनपुर की दुनियाँ में पहुँचा दिया। मुझे लगा कि जनकदुलारी ने दो तीन दिन पहले जिस चोर की मेरे भीतर कल्पना की थी वह सचमुच मिथ्या नहीं है, यहीं कहीं उसका निभृत निवास है।

किशनस्वरूप किसी काम से भीतर आये और नीचे से ही आवाज दी—दो मिनट के लिए इधर आ सकोगी ?

कुछ लजाई सी रम्मो ने कहा—क्या कहते हो ? और इतना कह उठ कर चली गई।

मैं अकेला कल्याणी के पास बैठा रह गया। मेरे मनोरंजन करने की इच्छा से वह बोली—तुम्हें यहाँ कैसा लग रहा है ?

मैंने उत्तर दिया—अभी कुछ दिन पहले कुछ इसी तरह का प्रश्न जनकदुलारी ने किया था। क्या आप सब के पास पूछने को इसके सिवा कुछ नहीं होता ?

"यदि यही पूछें तो हर्ज क्या है ?"

नवस्थापित रिश्ते की याद करके मेरी बात पर कल्याणी का आनन दीप्त होकर खिल उठा। मैंने देखी उस श्यामा युवती की लावण्य-छटा। अपूर्व छवि का अनूठा वितान मेरी आँखों पर छा गया। भटिंडा-यात्रा का पूरा पुरस्कार प्राप्त हो चुकने में कुछ शेष न रहा।

"तो अब तुम्हें यहीं रहना होगा।"

"मैं जाता कहाँ हूँ ?"

"जाने कौन देता तुम्हें ?"

"इसमें तो मेरा ही लाभ है।"

"और किसी का बिलकुल नहीं ?"

"यह मैं कैसे कहूँ ?"

"अटकल लगाइये।" यह कह कल्याणी जोर से हँस रही थी कि एकाएक घूँघट खींचकर चुप हो रही। मैंने घूम कर देखा। एक अधेड़ आदमी मेरे पीछे खड़ा था और कुछ कुछ विस्मय से मेरी जानकारी हासिल कर रहा था। कल्याणी चुपचाप उसके आदेश की प्रतीक्षा कर रही थी। क्षण भर इसी तरह खड़े रहकर उसने कल्याणी से जानना चाहा—भोजन में आज इतने विलंब का कारण क्या हो सकता है।

कांड हुआ उसकी कल्पना भी तब मुझे नहीं थी।

संध्या समय रम्मो ने मुझे बताया कि कल्याणी का पति सुन्दरलाल कितना शंकाशील आदमी है। कुछ बड़ी उम्र का होने से उसका विचार है कि उसकी नवोढ़ा पत्नी उसके प्रति स्त्री के कर्तव्य को पूरी तरह नहीं निभाती। वह यह सहन नहीं कर सकता कि उसकी स्त्री किसी युवक के साथ किसी प्रकार के वार्तालाप में रस ले।

मैंने इस पर कहा—तब उसे ऐसा न करना चाहिए। क्यों उसके [illegible] को बढ़ने का अवसर देती है?

तुम भी कहते हो ऐसा न करना चाहिए?—रम्मो ने पूछा।

"क्यों मैं और क्या कहूँ? जिस बात से शक बढ़े वैसा करके क्यों लड़ाई झगड़ा क्यों बुलाया जाय? इसे क्या तुम अच्छा समझती हो?"

"एक अधेड़ उम्र के आदमी को नवयुवती से ब्याह करके क्या इतना उदार नहीं होना चाहिए कि वह पत्नी की भावना की कद्र कर सके? [illegible] इनकी उम्र में भी तो कम अन्तर नहीं है, परन्तु इनका स्वभाव ऐसा है [illegible] अविश्वास और संदेह जानते ही नहीं। कितनी बार मैं [illegible], [illegible] लोगों के बीच रह जाती हूँ। मैं जो चाहूँ करूँ, पर इन्होंने क्या कभी [illegible] गई? मैं कहती हूँ इस आदमी का अविश्वास कल्याणी को खो देगा। ऐसी गृहलक्ष्मी इस शख्स को फिर न मिलेगी।"

इस बार उसका चेहरा मलिन और उदास था। भीतर से कुछ मरी मरी सी वह आकर खड़ी होगई और बोली—जीजी, दो आने की एक पुड़िया मेरे लिए नहीं मँगा दे सकतीं?

रम्मो—तू पगली हुई है कल्याणी। यह जीवन क्या इतनी सस्ती चीज है जो दो आने की पुड़िया खाकर दे दिया जाय?

इसके बाद रम्मो मेरी ओर मुड़कर कहने लगी—अब तुम ख्याल कर सकते हो इस अभागिनी की पीड़ा को। दो आने की अफीम खाकर यह अपनी नई जवानी के आनन्दमय जीवन को समाप्त कर देने में प्रसन्न हो रही है।

"तुम लोगों को प्राणों के विसर्जन कोई नई बात नहीं है। बात बात में जीवन को तुच्छ तृण की तरह समझने में तुम लोग बड़ी बहादुर होती हो।"—यह कहते कहते मुझे सोहनपुर की बात याद आगई जब स्वयं रम्मो नदिया में जा कूदी थी। मालूम पड़ा कि रम्मो के मस्तिष्क में भी वही बात घूम गई थी।

उसने अपने को सभालकर कहा—बस बस रहने दो। तुम लेकिन देखो तो सही।

कुली से रात को ही कह दिया था। वह चार बजे ही मेरा सामान ले गया। करीब साढ़े चार बजे रम्मो और किशनचन्द से विदा होकर मैं चला। मालूम पड़ता है कल्याणी पहले से ही द्वार पर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। दरवाजे पर पहुँचते ही उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और बोली—मुझे अपने साथ नहीं ले चलोगे?

मैंने हँसने का बहाना करके कहा—फिर कभी आऊँ तो चलना।

"तब तक मैं यहाँ थोड़े ही रहूँगी। मैं हँसी नहीं करती। मैं इस [illegible] से जल्दी ही अपने को मुक्त कर लूँगी। तुम जाओ। जीजी की [illegible] जल्दी ही सुन लोगे।"

उसने मेरा हाथ छोड़ दिया। मैंने [illegible] गले से यह कहते हुए उसे अभिवादन किया—ऐसा पागलपन मत करना, भाभी। ये सब [illegible] की बातें हैं। घर से निकली हिन्दू नारी के लिए कहीं जगह नहीं [illegible] यह तुम्हें बताने की [illegible] मैं नहीं [illegible]।

कल्याणी—अच्छी बात, जाओ।

इसके बाद मेरी जेब में एक रूमाल डाल दिया, कहा—[illegible] की यह निशानी तो लेते जाओ।

मियाँ को सभापतित्व मिलने का कारण उनकी बेहिसाब सिगरेट फूँकने की विशेषता है। वे एक फूँक में दो तिहाई सिगरेट खाक कर देते हैं।

दूसरे दिन कक्षा में पहुँचे तो मास्टर डेविड ने कहा— नये आये हुए लड़के खड़े हो जाँय।—मैं और दो अन्य लड़के खड़े हुए।

मास्टर डेविड—देखिये जनाब, आप लोग नये आदमी हैं। इसलिए यह बताना जरूरी है कि इस कक्षा में शैतान लड़कों का एक गिरोह है लेकिन मैं आशा करता हूँ कि नये लड़के अपने साथी चुनने में ऐसे लोगों से दूर रहेंगे।

इस प्रवचन के बाद उन्होंने हामिद मियाँ की ओर इशारा किया और फरमाया—अजी मियाँ साहेब, जरा खड़े तो हो जाइये।

मियाँ को सभापतित्व मिलने का कारण उनकी बेमिसाल सिगरेट फूँकने की विशेषता है। वे एक फूँक में दो तिहाई सिगरेट राख कर देते हैं।

दूसरे दिन कक्षा में पहुँचे तो मास्टर डेविड ने कहा—नये भरती हुए लड़के खड़े हो जाँय।—मैं और दो अन्य लड़के खड़े हुए।

मास्टर डेविड—देखिये जनाब, आप लोग नये आदमी हैं। इसलिए यह बताना जरूरी है कि इस कक्षा में शैतान लड़कों का एक गिरोह है, लेकिन मैं आशा करता हूँ कि नये लड़के अपने साथी चुनने में ऐसे लड़कों से दूर रहेंगे।

इस प्रवचन के बाद उन्होंने हामिद मियाँ की ओर दृष्टिपात किया और फरमाया—अजी खाँ साहेब, जरा खड़े तो हो जाइये।

हामिद मियाँ भीगी बिल्ली की तरह, अपनी अचकन के छोर को दो उँगलियों के बीच लिए, खड़े होगये। मिस्टर डेविड ने कहा—देखिये इन नवाब साहेब को। ये तीन साल से इसी कक्षा मे तशरीफ रख रहे हैं और टस से मस नहीं होते। अगले छः साल तक, अगर स्कूल के हेडमास्टर इन्हें रियायत देने को तैयार न होंगे, तो ये कहीं जाने का नाम न लेंगे। आप लोग यह जानना चाहते होंगे कि इनको इस दरजे से ऐसा कौनसा प्रेम है? बात यह है कि दूसरे दरजे मे सिगरेट क्लब की सहूलियत नहीं है, जिसका सभापतित्व करना ये किसी तरह छोड़ नहीं सकते।

हम लोगो ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। चुपचाप बैठे रहे। इससे मास्टर डेविड को शायद तसल्ली हो गई। उन्होंने सोचा शिक्षा सफल हुई परन्तु वे कितनी भूल मे थे। हम लोग तो दल मे पहुँचने से ही दीक्षित हो चुके थे।

मास्टर डेविड का आवारा निरंकुश लड़कों के लिए प्रायः प्रतिदिन प्रवचन हो जाने के बाद ही पढ़ाई आरम्भ हो पाती थी। यह नित्य नियम था और पढ़ाई के दौरान में यदि क्लब के किसी मेम्बर ने मास्टर साहिब को रुष्ट कर दिया, जो एक साधारण बात थी क्योंकि इस क्लब का कोई सदस्य पढ़ने लिखने से विशेष वास्ता रखता हो इस बात पर किसी को विश्वास

को रोकते नहीं थे जो स्वय करते हो। यद्यपि चाय के अवगुणो से वे पूरी तरह परिचित थे। अपनी इस कमजोरी को वे छात्रो क सामने खुले रूप में स्वीकार करते थे।

मुझे पता नहीं दौलतपुर की पाठशाला मे मैं क्या क्या गुण दोष लेकर आया। शायद तब अवस्था थोडी थी और इतना विवेक नहीं था कि मैं इन बातो की मीमासा कर पाता। परन्तु इस हाई स्कूल से सिगरेट और चाय के दो वरदान मुझे ऐसे प्राप्त हुए जो मेरे आजीवन सगी रहे। इनके कारण मेरा जीवन आनद से चाहे जितना वचित रहा हो पर कभी मैंने अपने आपको अकेला असहाय अनुभव नहीं किया और यदि मेरी प्रस्तुत जीवन गाथा में, धरती की छाया पाठकों को मिल रही है, तो उसके निर्माण म इन दोनों का बहुत बडा हाथ रहा है।

एक दिन नैनाबाबू की तरफ से चायपान का अनुष्ठान था। काफी विचार विमर्श के बाद नवाब साहब की गढ़ी वाले बाग मे पार्टी का होना तय पाया। इस स्थान का यह पुराना नाम अभी तक चला जाता है वैसे न अब वहाँ नवाब साहब की गढ़ी है न कोई बगीचा। गढी की जगह कुछ सरकारी इमारतें बन गई है, और बाग की जगह वीरान मैदान। बहुत दूर एक कोने मे पीपल बरगद, अन्जीर और शहतूत के कितने ही पेडो से घिरे दो तीन पुराने मकान खडे है। समय की सलवटो से दूर से ही मालूम होजाता है कि वे अपनी जिन्दगी जी चुके है और अब कयामत के दिन की प्रतीक्षा मे है। इतने पर भी यह अप्रकट नहीं रहता कि वे किसी विध्वस्त वैभव के अवशेष है और उनके भीतर रगीन स्वप्नो की स्मृतियाँ सिसक और कराह रही होगी। चायपान के समारोह में भाग लेकर सब दोस्त इधर उधर टोलियो मे बँट गये और जहाँ तहाँ गपशप करने लगे। मैं और हामिद मियाँ देर तक घास पर लेटे चाय और सिगरेट की प्रशसा करते रहे। बातें चुक जाने पर वे बोले—आओ यारो, थोडी जियारत भी कर आयें।

और इसी जियारत के लिए हम दोनो ऊपर बताये जीर्ण शीर्ण मकानो

मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। तब तक संगमरमर की शिला के पास वाले अंधेरे द्वार से एक बृहदाकार मानव मूर्ति प्रकट हुई। हामिद मियां ने झुककर कोर्निश की। मैं भी अनायास उनके साथ ही जमीन तक आगे झुक गया।

जब मैंने सिर उठाया तो एक भीमाकृति वृद्ध मनुष्य को देखा जिनकी रूपरेखा इस लोक के आदमियों जैसी न थी। सफेद बालों से सिर और मुँह इस प्रकार गुम्फित हो गया था मानो बहुत सा ऊन चिपका कर चेहरे को विकृत और भयानक बना लिया गया हो। दो आँखें अजीब तरह की रोशनी से दीप्त हो रही थीं। आवाज भारी और घनगर्जन सी सुन पड़ी जब उन्होंने दो चार शब्द जल्दी जल्दी मुँह से निकाले। मैं तो समझ भी न पाया कि नवाब साहेब कौनसी अरबी बोल रहे हैं। मेरी बुद्धि के ऊपर तरस खाते हुए हामिद मियाँ ने बताया—नवाब साहब तुम्हारे ऊपर बहुत खुश हैं।

इतनी रस्म अदा करके नवाब साहेब संगमरमर की अपनी मसनद पर बैठ गये। सामने हम लोग आसीन हुए।

नवाब साहेब को इस बार मैंने बहुत पास से और बखूबी देख पाया। शरीर को छोड़कर उनकी खाल बहुत नीचे तक झूलने लगी थी। महलों के खँडहरों की भाँति ही उनका शरीर जर्जर हो रहा था, पर वह यह बात याद दिलाये बिना नहीं रहता था कि कभी वह भी शक्ति और जीवन की आग से ओतप्रोत था। उनकी भौंहें इतनी घनी थीं और इस कदर बढ़कर फैल गई थीं कि अचानक देख लेने से आदमी का धीरज छूट जाय। भौंहों से खिसककर आँखों पर हाथ फेरते हुए दाढ़ी तक बार बार बल जा रहे थे। सूथन और कुरता जिन्होंने उनके बदन को ढक रखा था हजारों पैबन्दों का एक समूह मात्र थे। मालूम पड़ता था नवाब साहब को सारी जिन्दगी उन्हीं की मरम्मत में लगा देनी पड़ी थी। प्राचीनता के भग्नावशेष स्वरूप महलों व उनके शरीर के साथ उनकी पोशाक भी एक गणनीय वस्तु थी।

मैं छिटककर उठ बैठा और हम दोनों पलक मारते ही बाहर भाग आये। पीछे नवाब के भारी पैरों की धमक सुनाई पड़ रही थी। बाहर निरापद स्थान में पहुँच कर हम दोनों खड़े हो गये। देखा, नवाब साहब बाहर आ गये और भयकर हिंसा की ज्वाला ने उनके, दाढ़ी मूछों और भौंहों से ढके चेहरे को पहले से भी अधिक डरावना बना दिया है। वे पहले जैसी ही कोई अरब फारसी मिश्रित जबान बोल रहे हैं। शायद हम दोनों को गद्दार काफिर और धोखेबाज समझ रहे हैं।

हामिद मियाँ ने दो चार ढेले उठाकर उधर फेंके। इससे नवाब साहब क्रोध से काँपने और कभी इधर और कभी उधर दौड़ने भागने लगे।

हामिद ने चिल्लाकर पूछा—वह अशर्फियों का दफीना कहाँ है? पहले वह हमको बताना होगा।

इस पर नवाब साहब ठहर गये। हामिद ने फिर वही बात दोहराई—अशर्फियों का दफीना बता देने पर हम आपके दोस्त हैं। समझे।

नवाब साहब के भाव बदले। वे फिर अपने सयत रूप में आते दिखाई दिये। हामिद ने जोर देकर पूछा—बोलो, कहाँ?

नवाब साहब ने हाथ के इशारे से हम दोनों को अपने समीप बुलाया। उस समय उनके आग्रह की मुद्रा दर्शनीय थी।

ठीक उसी समय हमारे साथियों ने शोर मचाया। वे सब लौटने की तैयारी में हम दोनों की खोज कर रहे थे। हमें दुख है कि हम फिर नवाब साहब के अनुरोध का पालन कर सके। रास्ते में मैंने हामिद से कहा—यह तुम्हारी ज़ियारत तो अच्छी रही।

हाँ देखो कैसी अच्छी रही—कहकर वे मुस्करा दिये। फिर मेरे अनुरोध पर उन्होंने मुझे बताया कि यह आदमी सचमुच ही नवाबी मसनद का हकदार है। अस्सी साल पहले जब नवाबी जब्त हुई थी उस समय से आज तक यह इन्हीं खँडहरों में रह रहा है। एक लहमें के लिए भी कभी अपनी जगह छोड़कर नहीं जाता। इसे पता भी नहीं है कि शहर में क्या क्या है? यह अपनी दुनियाँ में रहता है। अपनी आन का इतना

लोग अभी अभी लौटकर जाँय तो भी वह हमें नहीं पहचानेगा। मजा देखना हो तो वही नाटक ज्यों का त्यों फिर दोहराया जा सकता है।"

सब मित्रों की सलाह ठहरी कि फिर एक बार वहाँ चला जाय और हामिद के कथन की परीक्षा की जाय। मैंने विरोध करते हुए कहा—क्यों फिजूल बुड्ढे की शान्ति में खलल डालते हो?

जब सब तैयार हों तो मेरी कौन सुनता था? लोग न माने और सब के सब बूढ़े नवाब के दौलतखाने पर जा पहुचे। फिर पहले की तरह सब बातें हुईं। दीवाने-खास में दरबार लगा। नवाब साहब अपने पूरे नवाबी ठाठ से मसनद पर आ विराजे। अंग्रेज सरकार से अपने वसीले को पाने के लिए नवाब साहब की इच्छा होते हुए भी किस तरह झूठी शान उन्हें अपने स्थान से निकलने से रोके हुए है इसका प्रदर्शन हुआ। हम लोगों की ओर से दोस्ताना आश्वासन पेश किया गया। एक बात हामिद मियाँ ने इस बार और की। नैना बाबू का परिचय एक अंग्रेज अफसर की लड़की के बतौर दिया और नवाब साहेब से कहा कि अगर अंग्रेज सरकार से आपके ताल्लुकात इनकी कोशिशों से दुरुस्त हो जायें तो इन्हें हरम में दाखिल करके बड़ी बेगम का दर्जा देना होगा। बूढ़े ने खुशी से इस बात को मंजूर कर लिया। उस समय उसके वृद्ध चेहरे की प्रसन्नता का कोई अन्त नहीं था। वह अपनी भावनाओं में इतना गर्क होगया था कि लड़के और लड़की के विभेद की कल्पना में अपनी बुद्धि को व्यय करना नहीं चाहता था। फिर उसी तरह उसने सिर पर हाथ रख कर नैना बाबू का शुक्रिया अदा किया, उनकी पीठ पर हाथ फेरा। ऐसा करते हुए वह वासना से इस कदर उद्दीप्त हो उठा कि उसका शरीर और पजामा दोनों काँपने लगे और मुँह से गंभीर घोष के साथ 'जलजला जलजला' शब्द निकलने लगा। तभी हम सब उठकर कहकहा लगाते हुए भाग आये।

उसी दिन से नैना बाबू का नाम मिस नैना रख दिया गया और अक्सर इसका जिक्र करके बड़ी मजाक रहती है।

× × × ×

भाभी का मेरे ऊपर विशेष स्नेह था। अपने बच्चे की तरह ही वे मुझे मानती थीं। उनमें ममता की मात्रा साधारण स्त्रियों से कुछ अधिक होने का क्या कारण रहा होगा यह बात मैं कभी समझ नहीं पाया। भैया के ऊपर उन्हीं के आग्रह का असर था जो मैं सोहागपुर के सीमित वातावरण से निकलकर जीवन के विशाल क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ। मेरा रोम रोम उनका आभारी था। भैया मुझे कठोर नियन्त्रण में रखने के हामी थे परन्तु भाभी उनकी चलने न देती थीं। वे कहतीं—अपना लड़का होगा तब देखूँगी कितनी कड़ाई करते हो। लड़कों को खेल कूद पढ़ना लिखना सभी कुछ चाहिए।

नहीं कलाकन्द हो।

मैंने हँसकर उत्तर दिया—कलाकन्द समझ कर अगर तुम मुझे खा जाओ तो कोई हर्ज नहीं पर सिगरेट समझ कर धुएँ के साथ उड़ा न देना।

अजी नहीं, बिलकुल नहीं—हामिद मियाँ ने फरमाया। इसके बाद पाकेट से एक सिगरेट निकालकर सुलगाई और दूसरी मेरी ओर बढ़ा दी।

मैंने सधन्यवाद उनके प्रसाद को स्वीकार कर लिया। जब दोनों खड़े धुएँ के बादल उड़ा रहे थे तो मास्टर डेविड एक घोड़े पर सवार बन्दूक लटकाये जाते दिखाई दिये। हम दोनों के होश गायब होगये। अगर वे हिरन समझकर हमारे ऊपर बन्दूक दाग देते तो हमें कोई भय न होता। उसे हम बड़ी खुशी से अपनी छाती पर ले लेते। लेकिन उन्होंने ऐसा न करके घोड़े की रास खींच दी और डाट कर पुकारा—कौन है वहाँ?

हामिद मियाँ के मुँह से निकला हुआ धुएँ का बादल मेरा सहायक बन गया। उन्होंने सिर्फ हामिद को देख पाया। वहीं से कहा—शाबाश नवाब साहेब।

घोड़े के ऐड़ लगाई और यह जाते हैं वह जाते हैं। हम दोनों कटे पेड़ की तरह जमीन पर पड़ गये। शरीर का समस्त खून थोड़ी देर के लिए जमकर बर्फ हो गया था।

बाहर से भी देखा था और भीतर आकर भी देखा। वह मकान किसी बड़े महल की बरसाती का भाग था। शायद पुराने महलों का चिन्ह स्वरूप केवल वही रह गया था। इतना तंग और अँधेरा था वह कि हम लोगों को टटोल टटोल कर आगे चलना पड़ा। थोड़ी दूर जाने पर हमें एक जीने पर चढ़ना पड़ा जो और भी तंग और अँधेरा था। ऊपर के खंड में कई छोटे छोटे दरवाजों की एक दोहरी पंक्ति थी। वहीं छोटी बड़ी, मँझली, मँझली गई बेगमें रहती थीं। हरएक दरवाजे पर एक एक पुरानी अधफटी चिक लटक रही थी। बुढ़िया जो हमारे आगे आगे चल रही थी रुक कर बोली—आप तो छोटी अर्थात् रुकिया बेगम के पास चलेंगे?

हाँ—हामिद ने जवाब दिया।

हम रुकिया बेगम के कमरे की ओर जा रहे थे तो रास्ते में देखा हर चिक से लगी एक एक बेगम बैठी है। गरीबी साये की तरह उनसे लिपटी है और बेबसी उनकी आँखों से झाँक रही है। पर्दे के पीछे बैठी हुई भी वे बेपर्द हैं और दर्शक के हृदय में दर्द की करुण टीस पैदा करती हैं।

हम रुकिया बेगम के खास कमरे में दाखिल हुए। तीन गज लम्बा और सवा दो गज चौड़ा वह कमरा हमारे आतिथ्य के लिए पहले से ही खुला था। उसमें घुसे तो हमें एक जर्जर कालीन के ऊपर बिठाया गया। खुद बेगम साहेब आबेरवा की धानी ओढ़नी कंधे पर डाल कर हमारे स्वागत को वहाँ बैठी थीं। वस्त्रों की उनके पास इस कदर कमी थी अपने शरीर को एक ओर से समेट कर छिपाने की चेष्टा करतीं तो दूसरी ओर खुलना हो जातीं मैंने आँखें नीची कर लीं उनमें से अनजाने ही पानी की दो चार बूँदें टपटप करके कालीन पर गिर पड़ीं। मनुष्यता की इतनी दुर्दशा मैंने पहले कभी देखी न थी।

हामिद मियाँ ने कहा—आपको बड़ी तकलीफ हो रही।

अजी, वह साहेब। इसे शर्माइये नहीं। हमारे लायक कार खिदमत फरमाइये।—यह तो आपही का घर है। इधर खिसक आइये। घर की तरह बैठिये।

को पहुँच गई हैं। इसका दोष अंग्रेजी हुकूमत को देने में कोई फायदा नहीं। यह तो दुनियाँ का कायदा है। जब एक हुकूमत समाप्त होकर दूसरी उसकी जगह लेती है तो अधिकार च्युत लोगों की ऐसी ही दुर्दशा होती है। मुसलमानी राज्य की स्थापना के समय हिन्दू राजागनों की राजकुमारियों ने इससे भी अधिक निर्दय दिन देखे हैं। आज जिन वेश्याओं को बड़े बड़े नगरों में हजारों की संख्या में देखते हैं उनमें से बहुत सी अभागिनी, ऐसे ही उथल पुथल के समय, अपने परिवारों से वंचित कर दी गई थीं। बेगम रुकिया और उसकी साथिन अन्य बेगमें उन वेश्याओं से भी अधिक बदतर हालत में हैं जिन्होंने समाज के शासन को परित्याग कर अपने को निरंकुश घोषित कर लिया है।

सोलह

भैया की छोटी साली विशाखा अपनी बहिन के पास आई है। मैंने भाभी से पूछा—क्या यह वही विशाखा है जिसके गुण गाते तुम नहीं थकती हो भाभी?

बना रक्खी थी। बिना लपेट के यह बात स्वीकार करनी होगी कि मेरी कल्पना के चौखटे में जो विशाखा की प्रतिकृति जड़ी थी उससे असली विशाखा का मेल बिठाने में कुछ समय और परीक्षण की जरूरत थी। मुझे तर्क-विरत करने में इसी अवसर को सुलभ करने की ओर भाभी का इशारा था, परन्तु यह सब किसी विशेष उद्देश्य से था यह मुझे बहुत पीछे पता चला।

अपनी अवस्था को देखते हुए विशाखा के साथ किसी ऐसे सम्बन्ध की बात सोचना भी मेरे लिए अशक्य था कि जिसके सम्बन्ध में भाभी के साथ खुलकर हँसी मजाक करने में मुझे लज्जा का अनुभव होता। मैं किशोरावस्था से कुछ ही ऊपर पहुँचा था और विशाखा उसी के कथनानुसार सोलह सत्रह की हो चुकी थी। यदि वह कम से कम चार पाँच वर्ष बड़ी भी होती तो उसकी चर्चा इतने खुले दिल से चलाने में मुझे झिझक होनी स्वाभाविक होती। खैर, भाभी का आदेश था इसलिए मैं चुप था। उनसे कोई विशेष बातचीत उसे लेकर न चल सकी, परन्तु विशाखा से हेलमेल बढ़ाने में तो कोई बाधा न थी। उसके ग्रामीण निस्संकोच व्यवहार और उन्मुक्त स्वभाव में कुछ कुछ सुघड़ता के लक्षणों की झलक मुझे दिखाई पड़ी। इसलिए मेरे लिए वह कोई बड़े या भय की चीज प्रतीत न हुई। जैसे मैं उसे खास किसी खतरे की वस्तु मानने को तैयार नहीं था उसी तरह वह भी मुझ [illegible] को निरापद समझ रही थी। हम दोनों बेखटके दिन दिन भर साथ में [illegible] जाते थे और बेतकल्लुफी से उसे कर डालते थे।

उस दिन जब मैं आधी देर पढ़कर ही लौट आया तो भाभी अपने कपड़ों की सिलाई में लग रही थीं। विमाता का जो उनका साथ देते देते थकना गया था और वह उठकर थोड़ी देर आराम करने लगी थी। मुझे स्कूल से लौट आया जान वह आकर मेरे कमरे में झाँकने लगी। मैंने पूछा—क्या देख रही हो ?

"मैं देख रही हूँ कि तुम इतनी जल्दी कैसे आ गये ? आज तो शनिवार नहीं है।"

"मैं जानता था कि तुम मेरी राह देख रही होगी। फिर न आता तो क्या करता ?"

"मैं कभी तुम्हारी राह देखना पसन्द नहीं करती, यह बात मैं न कहना चाहूँ तो भी तुम्हें समझ लेनी चाहिए।"

"इसके लिए धन्यवाद।"

निकाल सकता।

"तो मेरा सिर तुम इस तरह नहीं खा सकतीं।"

"मैंने साग कभी छुआ तक नहीं है, आदमी का सिर खाना तो बहुत बड़ी बात है।"

"मैं कहता हूँ तुममें लड़कियों का एक भी लक्षण नहीं है।"

"यह तो बड़ी हैरानी की बात है।"

"इसमें तनिक भी हैरानी नहीं है।"

"है, मैं कहती हूँ है। अगर तुम मुझे यह बताना मंजूर करो कि तुम स्कूल से प्राण बचाकर इस तरह क्यों भाग आये हो तो मैं तुम्हें बताऊँ कि इसमें कितनी और कैसी हैरानी है?"

"हम जैसे शूरवीरों को प्राण बचाकर भाग आने की जरूरत नहीं पड़ती। खुद मास्टर ही हमारे सामने से भाग जाते हैं। मिस्टर [illegible] के पैर में घोड़े से गिर जाने के कारण चोट आ गई है। हम लोग उन्हें देखने अस्पताल गये थे।"

लेकिन हैरानी की बात यह है कि जीजाजी और जीजी दोनों कुछ और ही माने बैठे हैं। उन्होंने मेरे लिए प्रमाणपत्र प्रस्तुत कर रक्खा है।—विशाखा कहती जा रही थी।

"मैं इस प्रमाणपत्र को मानने को बाध्य नहीं।"

वे कहते हैं अतः तुम्हें मानना पड़ेगा। तुम इस तरह नहीं मानोगे तो मैं ले आती हूँ।—कहती हुई वह भीतर भाग गई और एक लपेटा हुआ कागजों का बण्डल ले आई।

मैंने पूछा—यह क्या है?

यह देख लो न। अब भी क्या तुम नहीं मानोगे?—कहकर उसने दो जन्मपत्रियाँ निकालकर मेरे सामने फैला दीं। रोली अक्षत चर्चित उन पत्रिकाओं की भाषा मैं नहीं समझता। तो भी यह बात मुझे समझनी पड़ी कि भैया और भाभी विशाखा को इसी घर की वस्तु बना लेना चाहते हैं। उनका षड्यन्त्र धीरे धीरे चल रहा है। मातृहीना विशाखा को यहाँ बुलाकर इसीलिए रखने की जरूरत पड़ी है कि हम दोनों भावी जीवन की तयारी मिलजुल कर करलेने का अवसर पा जायँ।

हम लोगों का संवाद समाप्त हो गया। बिना किसी तरह के तनाव के हम दोनों के दिन हँसी-खुशी में जाने लगे।

इसी बीच मैं बीमार पड़ गया। साधारण ज्वर मियादी ज्वर बन गया और मैं शैयाग्रस्त हो गया। कुछ दिन ज्वर का ऐसा तीव्र वेग रहा कि मैं नहीं जानता मैं कहाँ और किस तरह था? भाभी के इन्हीं दिनों प्रसूतिगृह में बन्दिनी हो जाने से मैं उनकी सुश्रूषा से ही वंचित नहीं हो गया वरन् समस्या यह खड़ी हो गई कि घर का कामकाज कौन करे? दो दो बीमारों को कौन सँभाले?

इस समय विशाखा ने अपने सारे गुण प्रकट कर दिये। प्रातःकाल से लेकर संध्या तक वह चकरी की तरह सारे घर में नाचती रहती थी। जहाँ अब तक मैंने उसके व्यंग्य ही सुने थे और प्रहार ही सहे थे, वहाँ अब उसका दुलार भी पाया। एकान्त सेविका के भाव से ओतप्रोत वह सारे घर में अपनी ज्योत्स्ना का प्रकाश फैलाती थी। जब कुछ कुछ मैं स्वस्थ हुआ तो देखा कि रात दिन की सेवा और साधना की तपस्या से वह दुगुनी होकर अधिक सुहावनी हो उठी है। आमने सामने के कमरों में मैं और भाभी पड़े थे। मैंने अपना सिर ऊँचा करके भाभी से कहा—आखिर तुम्हारी बात सच निकली भाभी।

वह कौन सी?—वे पूछ बैठीं।

मैंने कहा—आज मेरा रोम रोम इस बात को स्वीकार करता है कि तुम्हारी विशाखा एक अद्भुत सुलक्षणा लड़की है।

"अब चार दिन में वह कौन देवांगना बन गई ?"

"भाभी मैं तुमसे सच कहता हूँ। मैंने उसे अभी देखा है। अनवरत तपस्या ने उसे देवांगना से बढ़कर सौम्य बना दिया है।"

मेरा इरादा था और तुम्हारे भैया को भी मैंने मना लिया था कि विशाखा इसी घर में रह जाय। लेकिन उस दिन तुम दोनों ने जो बातें कीं उनसे हमारा विचार बदल गया। तुम्हारे भैया की राय है कि विवाह लड़के लड़की की मर्जी के बहुत कुछ अनुसार होना चाहिए।

मैंने हँसकर उत्तर दिया—इन बातों को रहने दो भाभी। मैं भली तरह जानता हूँ कि ब्रह्मा ने मेरे लिए कोई लड़की गढ़ी ही नहीं है। यदि ऐसा न होता तो मैं तुम लोगों की जाति से सदा उपकृत होता हुआ भी तुम्हारी सखी की इतनी कटु आलोचना क्यों करता ? विशाखा ने इस बीमारी में मेरे ऊपर जो उपकार किये हैं उनका बोझ थोड़ा नहीं है, पर मेरी कृतघ्न वृत्ति उन्हें स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

ब्रह्मा किसके लिए किसे गढ़ता है यह वह किसी को बता नहीं देता। यदि इसकी पूर्वसूचना का कोई जरिया होता तो मैं तुम्हें कह देती कि तुम्हारा यह सब सोचना वृथा है।—वे सहज भाव से बोलीं।

मैंने कहा—मेरा मन कहता है कि मेरा जीवन किसी तरह के बंधन में पड़ने के लिए नहीं बना है।

दवाई प्याले में उँडेल दी। मेरा इनकार हवा में विलीन होगया। विशाखा को यह बात कतई पसन्द नहीं है कि उसका मरीज़ अपनी मर्ज़ी उसकी व्यवस्था पर थोपे। हाथ बढ़ाकर मुझे उसी क्षण दवाई लेनी और पीनी पड़ी। पीते ही शरीर में नई स्फूर्ति और ताज़गी का संचार हो गया।

मैंने सिर उठाने का प्रयत्न करके पूछा—तुम्हारे इस नर्सिंग होम, सुश्रूषागृह, से मुझे कब छुटकारा मिलेगा विशाखा?

विशाखा—बात नहीं करते।

इतनी सी बात में कोई हर्ज नहीं होता। मैं तो लेटा हूं।—मैंने कहा।

विशाखा—लेटे रहो। चुपचाप।

मैं—मुझे यहाँ पड़े रहने में कोई तकलीफ नहीं है। अगर औषधागार का अत्याचार हर दो घन्टे के बाद न होता तो मैं यहाँ से कभी जाने का नाम भी न लेता।

विशाखा—बस, बस। मैं मना करती हूँ तुम बोलते जा रहे हो। आज, बीमार होकर तुम बच्चों की तरह ज़िद्दी हो गये हो।

'पर मैंने एक अच्छी बात भी सीख ली है।"

"वह क्या? मैं भी सुन सकूँगी उसे?"

"ज़रूर, यह जब तुम्हीं से सम्बन्ध रखती है तो तुम उसे क्यों न सुन सकोगी।"

"वह क्या है?"

"मैंने उस दिन तुमसे पूछा था कि यदि तुम्हारे जैसा लड़का मुझे ब्याहने आवे तो जानते हो मैं क्या करूँगी।"

"मैं क्योंकर जान सकता हूँ किसी के मन की बात? लेकिन एक युवक के लिए एक युवती का व्यवहार ऐसे समय नितान्त अशोभन हो, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती।"

"अशोभन ही क्यों उसे तुम दुष्ट कह सकते हो, पर मैं तो यही करती अर्थात गले में फाँसी लगा कर मंडप में लटक जाती या सामने खड़े होकर कह देती देवाधिदेव, कृपा कर अपने घर लौट जाइये।"

"मैं इस बात से कुछ उत्तेजित हो उठकर बैठ गया। मैंने पूछा—तुम क्या इतना [illegible] सोचती हो? तुम झूठी हो विशाखा। तुम इस तरह बहकर अपने आपको छल रही हो।

सुखी रहो।

इतने सहज में मैं जाने के लिए स्वतन्त्र होगया। यह कुछ मुझे अच्छा नहीं लगा। मन जैसे भीतर से यह चाह रहा था कि मैं जाने की चर्चा चलाऊँ तो सब लोग चारों ओर से मुझे रोकने लगें। कोई कुछ अनुरोध करे कोई कुछ और मैं उनके अनुरोधों को कभी आश्वासनों से कभी तर्क के बल पर छिन्न भिन्न करके चला जाऊँ। उससे ही मन को संतोष हो सकता था।

अब मेरे पास कोई कारण अम्मा के समीप ठहरने का नहीं रह गया था। मैं उठकर चलने लगा। बिट्टो क्या कर रही है यह जानने के लिए मैंने इधर उधर देखा पर वह कहीं दिखाई न पड़ी। अम्मा के पास से निकलकर मैं ओसारे में आया, देखा बिट्टो पहले से ही वहाँ पहुची हुई है। मुझे देखकर बोली—जरूरी काम होगा?

मैंने सिर हिला दिया। मैं जानता था जब अम्मा और बुआ ने मुझे रोका नहीं तो बिट्टो कैसे रोकेगी? वह तो इन दिनों अनुरोध जैसी कोई बात मुझसे करने की शक्ति रखती नहीं। उसके इस विपरीत आचरण में कितनी शिकायतें और कितने अनुरोध छिपे थे यह मैं न जान सका होऊँ यह मैं नहीं कहता। इसीलिए उसका सहज उत्तर मुझसे नहीं बन पड़ा। मैंने केवल सिर हिला दिया।

कहाँ जाना होगा?—उसने पूछा।

"उदयपुर।"

बिट्टो को यह मालूम ही था कि उदयपुर से मेरा कोई संबंध नहीं है। एक ऐसी जगह अचानक मैं क्यों जा रहा हू जहाँ कभी जाने की संभावना नहीं थी और न कभी इस तरह की पहले चर्चा ही चलाई थी। इससे उसका संदेह कुछ बढ़ गया। बोली—रुष्ट होकर क्या उदयपुर ही जाया जाता है?

उसकी इस बात से मैं हिल गया। मैंने विकंपित कंठ से उत्तर दिया—रुष्ट होकर किस तरह?

"मुझसे रुष्ट होकर तुम नहीं जा रहे हो?"

"उसका कोई कारण भी तो हो ? असल गलती यहाँ पर है कि मैंने तुम्हें यह नहीं बताया कि मुझे क्यों जाना पड़ रहा है। एक मित्र पर कोई ऐसा सङ्कट आया है। उन्होंने ही मुझे बुला भेजा है। यह रहा उनका पत्र।"—मैंने चाँदकुवरि का पत्र जेब से निकालकर उसके आगे कर दिया।

वह बोली—मैं क्या करूँगी ?

"पढ़ लो और बताओ कि मेरा जाना उचित है या नहीं। मैं तो बड़े पशोपेश में हूँ।"

मेरे अनुरोध पर उसने पत्र ले लिया और खोलकर पढ़ा। मैंने स्पष्ट लक्ष्य किया, उसकी मुख-मुद्रा बदल गई। उसी तरह पत्र को बन्द करके बिना कुछ कहे उसने मुझे दे दिया। मैंने पूछा—मेरा जाना उचित है या नहीं ?

"मैं क्या कह सकती हूँ ?" कहकर वह जाने लगी।

मैंने कहा, "ठहरो, बताओगी नहीं ?"

"नहीं।" कहकर वह चली गई। मुँह से न कहने पर भी उसका उत्तर तो स्पष्ट होगया। लेकिन किस कारण से उसे आपत्ति थी यह मैं न समझ पाया। मेरे सोहनपुर रहने से उसका कोई स्वार्थ तो सधता नहीं था, न जाने से इसके अलावा कोई हानि न थी कि अम्मा के लिए मैं थोड़ी दौड़धूप कर देता था। उसकी भी अब आवश्यकता न रह गई थी। अम्मा स्वस्थ हो गई थीं।

इससे एक बात तो हुई कि मैं जो यह चाहता था कि कोई मुझे रोके, अनुरोध करे और उस आग्रह-अनुरोध को टेल कर मैं जाऊँ तो जाने का मजा है। यह बात तो हो गई परन्तु बिट्टो के मूक स्वाभिमान ने मेरे दृढ़ निश्चय को एक बार हिला दिया। मैंने सोचा—व्यर्थ है मेरा जाना। यहाँ घर में ही उसके ऊपर जो महान सङ्कट पड़ा है, उससे वह अभी स्थिर भी नहीं हो पाई है। उसे निरालम्ब छोड़कर मैं जहाँ तहाँ भागने की उससे अनुमति चाहने जाऊँ और यह सोचूँ कि वह तो केवल अपने ही स्वार्थ को देखती है, तो मैं उसके साथ बड़ा अन्याय करूँगा। घर में क्या

जलाकर ही मस्जिद में जलाना उचित है, यहाँ उसे वंचित करके सैकड़ों मील की दूरी पर किसी को कृतार्थ करने जाऊँ, यह न होगा।

ऐसा निश्चय करके मैं घर गया और बँधा हुआ बिस्तर खोल डाला। बुआ ने पूछा—क्यों रमेश, जाना नहीं है तुझे आज ?

मैंने कहा—नहीं, मुहूर्त टल गया है।

वे हँसने लगीं, बोलीं—तू भी भैया मुहूर्त को मानने लगा है ?

मैंने कहा—न मानने से कहीं चलता है।

"चलता तो यह दुनियाँ पागल तो नहीं है। कुछ न कुछ हुए बिना कौन विश्वास करता है ? उमर बड़ी होने से ही इन बातों का ज्ञान होता है। अनुभव आदमी को सिखाता है।"

मैंने बुआ के सामने किसी प्रकार का विरोध प्रकट न किया। जो कुछ उन्होंने कहा उसे शिरोधार्य कर लिया।

इसके बाद मैंने जो भी काम किया उसमें जी नहीं लगा। एक विरसता सी सब कामों में जान पड़ने लगी। मैंने सोचा, चलो थोड़ी देर घूमघाम आयें और मैं घर से निकल गया।

वायुमण्डल में कुछ उमस के कारण दिन में थोड़ी बूँदा-बाँदी हुई थी। इस समय हवा चलने से मौसम सुन्दर हो गया था। स्वच्छ आकाश में से बादल के टुकड़े बुहार कर पवन ने क्षितिज पर छोड़ दिये थे। अपरान्ह की किरणों से रँगकर वे खिल उठे थे। एक सुन्दर दृश्य पैदा होगया था। उसके दर्शन का सुख लूटता हुआ मैं दूर तक खेतों में चला गया। इच्छा हो रही थी कि और चलता जाऊँ, जब तक आँखें तृप्त न हों चलता ही जाऊँ। लेकिन तोता न जाने कहाँ से आ गया। मुझे पुकार कर बोला—कहाँ चले जा रहे हो ?

मैंने कहा—कहीं तो नहीं। थोड़ा घूमने निकला था। आज मौसम बड़ा सुहावना है, इसी को देखता हुआ यहाँ तक चला आया। तुम किधर गये थे ?

तोता—मैं गया था अपना खेत जोतने। अब इधर पहुँच गये हैं।

इसी से मैं चला आया हूँ।

मैंने फिर मौसम की सुन्दरता की बात चलाई तो वह बोला – जिन्हें करने को कोई काम नहीं है। निरी फुर्सत है। यह वही देख पाते हैं। हम सब कर्मरत किसानों को खुले आकाश के नीचे रहते हुए भी सिर उठाकर उसकी शोभा निहारने की फुर्सत नहीं है। हम कभी उसकी ओर देखते हैं तो यह जानने के लिए ही कि बादल उठ रहे हैं या नहीं। और वर्षा कब तक आयेगी ?

"किसानों में सौंदर्य-बोध नहीं होता ?"

"भूखे पेट और नगे शरीरों के लिए सौंदर्य बोध का सवाल ही नहीं उठता। इन्हीं दो आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह तपस्या में लगा रहता है, तो भी कभी उसे भर पेट खाना नहीं मिलता, न पहनने को कपड़ा नसीब होता है।"

"यह समाज की व्यवस्था का दोष है। जो पैदा करता है वह उसे पाता नहीं, जो बैठा रहता है मौज उड़ाता है। उसे कभी कभी यह चिन्ता करनी पड़ती है कि उसे किस तरह लुटाया जाय। तभी वह सौंदर्य बोध की नई नई पद्धतियाँ जारी करता है। कला और साहित्य को जन्म देता है। किसान वैज्ञानिक है और साहूकार साहित्यिक तथा कलाकार। दोनों को मिला देने वाली कोई रीति चले तो किसान को सौंदर्य की आँखें मिल जायँ और साहूकार को ज्ञान का बोध हो।"

"पता नहीं यह सब कब होगा ?"

"जब किसान भूख से त्रस्त हो उठेगा और साहूकार मौज से ऊब आयेगा।"

गाँव के निकट हम दोनों के पहुचते ही सगीत का एक कोलाहल सा सुन पड़ा। मैंने तोता से पूछा—क्या हो रहा है यह ?

उसने कहा—चलो देखते चलें क्या है ?

हम लोग उसी रास्ते चल पड़े।

वहाँ हमने अद्‌भुत दृश्य देखा। नीम के विशाल वृक्ष की मोटी डाल में

भूला डाला गया था। पुष्प हारों से आच्छादित और फूलों की सज्जा से सज्जित नवेली लक्ष्मी पान की पीक से ओंठ लाल किये और मेंहदी से हथेलियाँ रँगे यौवन के रंग में पैंग बढ़ा रही थी। बहुत दिन पहले जिसे एक छोटी बच्ची के रूप में देखा था, वह खिलकर फूल हो गई थी—ऐसा फूल जो यौवन की तरंग में झूम रहा था, मकरन्द और पराग जिसमें छलक रहे थे। कितने ही नौजवान प्रलुब्ध भौरों की तरह उस उत्सव में शामिल थे। अपनी समवयस्का युवतियों से छेड़खानी करती हुई वह उत्सव की रानी के रूप में अपनी शोखी प्रगट कर रही थी। अपने को प्रदर्शित करने की बलवती इच्छा से उन्नत उसका वक्ष युवकों के आकर्षण का केन्द्र हो रहा था। साधारण लज्जा और घरेलू शिष्टाचार का परित्याग करके वे सब आपस में धमाचौकड़ी मचा रहे थे। कौन आता और कौन जाता है इसका उन्हें ध्यान नहीं था। न वे इसकी चिन्ता करके अपने अबाध आनन्द में विघ्न डालना चाहते थे।

वहाँ ठहरकर देखने का मुझे साहस नहीं हुआ, परन्तु मेरा साथी ठिठक गया। उसने कहा—तुम जाओ। मैं थोड़ी देर भूला भूले बिना नहीं आऊँगा।

मैं कटी पतंग सा अकेला चला आया। तोता उन्हीं में शामिल होगया। बाद में हम जब मिले तो उसने बताया कि लक्ष्मी जो आजकल उन्मुक्त कुसुम बन रही है और अनिमन्त्रित भौंरों की भीड़ से घिरी रहती है यह बूढ़े बहनोई के साथ उसे ब्याह देने का कुफल है। माँ बाप ने अपनी सहूलियत तो देख ली, लड़की के जीवन के परिणाम की ओर ध्यान नहीं दिया। अपने वयस्क पति के काबू से बाहर होकर वह कई दिनों से इसी प्रकार रँगरलियाँ कर रही है। उसके यौवन की याद में घर का पैसा और कई युवकों का भविष्य बहे चले जा रहे हैं, किसी में सामर्थ्य नहीं है जो उसके ऊपर अङ्कुश लगाये। पति देव ने भी उसे अपनी असामर्थ्य से विवश होकर ढील दे रक्खी है।

मैं सुनकर चुप रह गया पर मन के भीतर एक हलचल पैदा हो गई।

सारी रात इसके कारण उन्निद्रा का शिकार रह कर सवेरे उठा तो सिर भारी था, देह टूट रही थी। सोचा, अम्मा की खबर ले आऊँ। घर गया तो देखा बिट्टो अकेली है। वर्षों बाद अम्मा ने आज घर से पैर बाहर निकाला है। उनकी दूर रिश्ते की कोई बहिन इलाज कराने सोहनपुर आकर ठहरी है। उन्हीं के आग्रह से वे उनके साथ गई हैं। बिट्टो ने मुझे देखकर आश्चर्य सहित पूछा—कल तो जाने की बात थी?

"कुछ निश्चय नहीं कर पाया। तुमसे भी तो पूछा था। तुमने क्या राय दी थी?"

"मैं राय क्या देती? जिसने विश्वास करके संकट के समय बुलाया है। उसका विचार ही करना था।"

"उसका विचार तो यही कहता है कि मुझे विलंब न करना चाहिए। चाँदकुँवरि को तुम जानती नहीं। वह जिस मिट्टी की बनी है, उससे भय होता है कि वह कोई असाधारण विपत्ति में पड़ गई है अन्यथा वह क्या यों किसी को कष्ट देती?"

"फिर भी नहीं गये। किसी ने कह दिया वही मान लिया।"

"तुम्हारी राय हो तो साँझ को रवाना हो जाऊँ?"

"हाँ, मेरी राय है। तुम्हें जाना चाहिए। साँझ का भी इन्तजार क्यों करते हो?"

"तो फिर दोपहर से पहले ही जाऊँ?"

"हाँ।"

"पर तुमने एकाएक विचार बदल कैसे दिया? कल मैंने पूछा था तब तो तुम्हारी इच्छा नहीं थी कि मैं इस मुसीबत में पड़ूँ।"

"हाँ, अब मैं सोच-विचार के बाद तुम्हें मुसीबत में डाल रही हूँ। जिसने इतना अपनापन रक्खा है कि संकट के समय अपने किसी स्वजन-बन्धु को याद न करके तुम्हें याद किया है, उसका मोह तुम्हारे प्रति कितना होगा। वर्षों हृदय में संचित किये रहकर आज उसे प्रकट करने का प्रसंग आया है और आज ही उसे पता लग जाय कि वह तुम्हारी उपेक्षा से अधिक

कुछ नहीं पा सकती तो क्या उसका हृदय टूक टूक न हो जायगा ?"

"उपेक्षा के स्थान पर मैंने कभी अनुराग तो प्रकट किया नहीं। साधारण सी जान पहचान रही है। उसे इतनी आशा मेरे से करनी नहीं चाहिए थी।"

"यह गलत है। राह चलती जान पहचान से इतना नहीं हो सकता।"

"तो क्या मैं तुमसे कुछ छिपा रहा हूं ?"

"यह तुम जानो।'

"बिल्कुल नहीं, बिट्टो। यह अपराध मुझसे कभी न होगा। ऐसी शका इस जीवन में मेरे प्रति कभी मन मे न लाना।"

इस सशोधन से वह चौंक पड़ी। उसे अपनी और मेरी स्थिति का ध्यान हो आया। बोली—अब बेकार देर क्यो करते हो ? जाते क्यों नहीं ? धूप चढ़ने से पहले निकल जाओगे तो आराम मिलेगा।

'मेरे आराम की इतनी चिन्ता तुम्हें है और इस तरह घर से निकाले भी दे रही हो ?'

मुझे किसी की चिन्ता नहीं है, वैसा अधिकार भी नहीं है।—कहते कहते उसका कंठ कांप गया।

वह पलट कर जाने लगी तो मैंने कहा—अम्मा से मेरा प्रणाम कह देना।

उसने सिर हिला दिया। मैं द्वार से निकलने को हुआ तो मुझे पुकारकर बोली—पहुंचने पर अम्मा को एक चिट्ठी तो लिख देना। नहीं तो वे चिन्ता करती रहेंगी।

मैंने भी बदले में सिर हिला दिया और घर से बाहर होगया। उसके अंतिम अनुरोध से न जाने क्यों मेरी छाती फूल गई, हृदय गद्गद् होगया और मैं एक गहरे नशे में झूमता हुआ आकर अपनी तैयारी में लग गया।

बुआ को इतनी जल्दी नये मुहूर्त की आशा नहीं थी। इसीसे उन्होंने खाना-पीना तैयार नहीं किया था। मुझे जाने को प्रस्तुत देखकर वे जल भुन गई और मेरी मनमौजी कार्रवाही पर दो चार बातें भी सुना डालीं। मैंने

उनका रत्ती भर बुरा नहीं माना। हँसते हँसते कहा—आखिर तो कई दिन बाजार में ही खाना है। आज भी खा लेने से पेट में दर्द नहीं हो जायेगा। व्यर्थ चिन्ता क्यों करती हो?

इस तरह मैं घर से चल पड़ा। किसी के संकट में सम्मिलित होने जाते हुए भी मेरा हृदय आज अपरिमीम आनन्द से उछल रहा था, मानों किसी उत्सव में जा रहा होऊँ। मन में कितनी बातें आ जा रही थीं—असंभव और अकल्पित।

कार्इस

रेल की मुसीबतों और रास्ते की दुर्घटनाओं का हाल बताने लगूं तो एक नया ग्रंथ ही बन जाय। मालूम पड़ता है जितनी बाधाएँ और जितने प्रकार की मुसीबतें हो सकती हैं वे सब इस यात्रा में मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। दो जगह तो लाइन की गड़बड़ी से अपना सामान सिरपर उठाये रात के समय आध आध मील चलकर दूसरी गाडी में स्थान खोजना पड़ा। भीड़ इतनी थी कि आदमी पर आदमी गिरता था। साँस लेना मुश्किल हो रहा था। इस आफत में भी एक महिला की सहायता से ही मेरी जान बची। वे बड़ौदा की तरफ कहीं जा रही थीं अकेली अपने बच्चे को लिए। इस बड़ी उम्र में भी उनके शरीर का सौंदर्य जादूभरा था। जिससे हँसकर बोल देतीं, वही कृतार्थ हो जाता। मुझे उनकी वह हँसी तो मिली नहीं। मुझे मिली उनकी दया और उसी का मैं पात्र था। बहुत प्रयत्न करने पर

भी जब किसी डिब्बे में स्थान नहीं मिला तो मैं निराश हो चुका था। तभी उन्होंने अपने सम्मोहन के बल पर मेरे लिए अपने पास ही एक अच्छा सा स्थान खाली करा लिया और मुझे हाथ पकड़कर ले जाकर बिठाया। मैंने धन्यवाद दिया और उन्होंने अपने सुन्दर सुकोमल बच्चे को मेरी गोद में लिटा दिया। बोलीं—यह अपने बाप के पास रहने में ही खुश रहता है। आपके पास रोयेगा नहीं।

वे तो इस तरह निश्चिन्त हो गईं और मैं बच्चे की पुतलियों में तैरती हुई अपनी परछाईं को देखने लगा। इस प्रकार रेल में एक नया परिचय और नया प्रसंग उपस्थित हो गया। फिर सारे रास्ते भर उन्हीं श्रीमतीजी ने मेरे खाने पीने और आराम करने की चिन्ता रक्खी। बार बार मना करने पर भी वे नहीं मानीं। जब मैं उदयपुर के लिए गाड़ी बदलने लगा तो बड़े प्यार से वे बोलीं—अगर तुम जरूरी काम से न जा रहे होते तो मैं तुम्हें छोड़ती नहीं। अपने साथ ही ले चलती। मैं तुम्हें इतनी देर में ही कितना चाहने लगी हूं।

मैंने इसके लिए उन्हें धन्यवाद दिया और गाड़ी बदल कर एक भील परिवार के साथ शेष यात्रा की।

उदयपुर में उस स्थान पर पहुंचने में मुझे कोई दिक्कत न पड़ी जो आदकुंवरि ने लिख भेजा था, परन्तु वहां जाकर यह मालूम हुआ कि एक दो दिन पहले ही उन्होंने मकान बदल लिया है। नये मकान में काफी परेशानी के बाद ही मैं पहुँच पाया। पुराना मकान गरीबों की बस्ती में था, और बहुत साधारण-सा था। जबकि नया एकदम विशाल और आलीशान था। मैं क्षणभर खड़ा होकर सोचने लगा कि किससे पूछा जाय। उसी समय मकान का द्वार खुला और एक नौकर ने मुझसे पूछा—सोहनपुर से आ रहे हैं ?

मेरे 'हां' कहने पर वह मुझे भीतर ले गया। देखा आदकुंवरि खुद दौड़ी आ रही है। आकर बोली—मैं तो कह रही थी कि पत्र मिल गया तो तुम जरूर आओगे। कोई बाधा नहीं जो तुम्हें रोक सके। लेकिन राह

क्षणभर बाद ही चाँदकुवरि कमरे से बाहर आगई और आगन्तुक मोटर में बैठकर रवाना होगया, यह मुझे वहीं बैठे बैठे पता लग गया। चाँदकुवरि लौटकर आई तो उसके चेहरे की सहज शोभा का एक अंश भी न रह गया था। सारे चेहरे पर अंधकार पुत गया था। बड़ी देर तक बिना एक शब्द मुँह से निकाले वह बीमार के लिए पथ्य तैयार करने में निमग्न रही। मेरी उपस्थिति का जैसे उसे कुछ भी ज्ञान न रहा हो।

देर तक मैं चुपचाप बैठा बैठा सोच रहा था कि उससे कुछ पूछूं। तभी उसने अपनी आँखों को ऊपर जरा भी उठाये बिना और हाथों को अपने रसोई के काम में पूरी तरह व्यस्त रखते हुए बड़बड़ाना शुरू किया—दो दिन पहले पहुँच सकते तो क्या यह सब सुनना पड़ता? अब सब सुनना पड़ेगा। उनकी बीमारी न जाने कब तक चलेगी?

भावों में डूबी हुई चाँदकुँवरि को जागृत करने के लिए मैंने बीच ही में कहा—नहाने की इच्छा होती है। बताओगी कहाँ नहाना होगा?

वह मेरे कंठ स्वर से चौंक पड़ी। एक बार अच्छी तरह सँभलकर बैठी और तब कहा—तुम्हारा नहाना खाना इस घर में नहीं हो सकता। अलग ही प्रबंध किया है।

"इस सबकी क्या जरूरत थी? मेरे लिये अलग प्रबंध करने को किसने कहा था तुमसे?"

"जरूरत समझी तभी ऐसा किया गया। तुमसे कुछ छिपाना नहीं है। धीरे धीरे सभी कुछ मालूम हो जायगा। चलो, पहले नहा खा लो। खाना तैयार हो चुका होगा।"

वह चूल्हे की आग को हटाकर मुझे साथ लेगई। पास के एक छोटे से कच्चे घर में जाकर बोली—यह है तुम्हारे लिए स्थान। इससे अधिक सुन्दर व्यवस्था मैं नहीं कर सकती थी। इसका बुरा मत मानना।

मैंने कुछ भी नहीं कहा। घर के भीतर जाकर एक बुढ़िया को वह समझाने लगी—अम्मा मेरे भाई आगये हैं। देखना, इन्हें किसी तरह की तकलीफ न हो।

मैं तो बड़े असमंजस में पड़ गया। जब से यहां आया हूं अब तक पद पद पर कोई न कोई रहस्य आ खड़ा होता है। मालूम नहीं इतनी पहेलियों और रहस्यों के बीच चांदकुंवरि क्यों रह रही है? उसका स्वभाव इस स्थिति के अनुकूल क्योंकर पड़ता है?

मुझे चुपचाप खड़ा देखकर बुढ़िया मा ने एक खाट डाल दी। चांदकुंवरि जमीन में पास ही बैठकर बोली—जाओ नहा धो लो। अम्मा ने खाना तैयार कर रक्खा है। देर न करो। उनकी नींद खुल जायगी तो किसी को न पाकर परेशान होंगे।

मैंने कहा—तुम चलो। उन्हें देखो चलकर। मैं भी खा पीकर आ जाऊंगा।

मेरे कहने से वह चली गई लेकिन भोजन करने बैठने से पहले ही आ पहुंची। पास बैठकर जबतक मैं खाता रहा वह मेरे ऊपर पंखे की हवा करती रही परन्तु मैंने लक्ष्य किया जैसे वह यहां की प्रत्येक वस्तु को छूने से बचती हो। बिल्कुल सादा और साधारण सा भोजन करके मैं उठ गया और हाथ मुंह धोकर उसके साथ हो लिया।

हमारे पहुंचने से पहले ही बीमार की नींद खुल चुकी थी। वह क्षीण स्वर से खांस रहा था। चांदकुंवरि मुझे सीधे बीमार के कमरे में ही ले गई। मुझे उसके पीछे देखकर एक क्षीण दुर्बल कंठ ने पूछा—कौन है चांद? रमेश?

"तुम्हें विश्वास नहीं होता था, लेकिन मैं कह रही थी न कि आयेंगे जरूर।"

अभिवादन के लिए उठे हुए मेरे हाथ जहाँ के तहाँ रह गये। कंठस्वर में कुछ परिचितपन मालूम पड़ा। मैंने गौर करके देखने का प्रयत्न किया। उत्तर में उसने कहा—रमेश भाई, मैं राधावल्लभ हूं। तुम मुझे पहचान नहीं पा रहे हो।

मेरे आश्चर्य कुंठित मुख से अनायास निकल गया—राधावल्लभ।

"हाँ राधावल्लभ, तुम्हें आशा भी न होगी कि मैं यहाँ हूं भाई, और

इस हालत में हूं ।"

चाँद चुपचाप खड़ी थी । वह हम दोनों के बीच में एक शब्द भी न बोली । मैंने कहा—मुझे तो क्या किसी को भी शायद ही यह मालूम हो कि तुम यहाँ हो ।

राधावल्लभ—ऐसी बात नहीं है भाई । मैंने बहुत पहले ही अपने पिता जी को एक पत्र लिखकर बता दिया था कि मैं कहा और कैसे हूँ । उनका उत्तर भी आया था । चाँद, वह पिता जी का पत्र रक्खा है न सँभाल कर तुमने ?

मैंने चाँद की ओर मुख करके देखा । उसकी कमलायत आखें अश्रुधा बहा रही थीं । राधावल्लभ ने फिर कहना आरम्भ किया—जानते हो भाई पिताजी ने क्या लिखा था ? उन्होंने लिखा था कि मैं कभी उनसे को संबध न रक्खूँ । यदि कभी मरने भी लगूँ तो अपनी मृत्यु का समाचा न भिजवाऊँ । मेरे मरने में अब बहुत देर भी नहीं है, और मैं उनकी आज्ञा का पालन करूँगा । इसीलिए मैंने अपनी बीमारी की, जो एक दम मौत का पैगाम है, किसी को खबर नहीं दी । तुम्हें बुलाया सो भी चाँद ने, मैंने नहीं ।

अधिक बोलने से राधावल्लभ को खाँसी उठ खड़ी हुई । वह ज़ोर ज़ोर से खाँसने लगा । अब चाँद खड़ी न रह सकी । वह झट घूमकर पलंग की पाटी पर जा बैठी और धीरे धीरे उसकी पीठ सहलाने लगी । उसके आँसू गालों पर ढुलक कर अपनी कहानी अलग कह रहे थे ।

चाँद ने हाथ के इशारे से मुझे कहा कि मैं कोने में पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ जाऊँ । मैंने कुर्सी लेकर आगे खींच ली । खाँसी के वेग से ऊपर का वस्त्र खिसक जाने के कारण मैंने राधावल्लभ का शरीर देखा । उसमें रक्त मांस का तो नाम भी नहीं रह गया था । मेरी आँखों के सामने उसका वह कैशोर शरीर था जो हम सब साथियों के लिए एक दिन दर्शनीय वस्तु था । वह सारी शरीर सपत्ति कैसे खोगई यही मैं सोच रहा था । सामने मौजूद होते हुए भी जी इस बात पर विश्वास नहीं करना चाहता था कि यह वही

राधावल्लभ है।

खाँसी शांत होने पर उसने इशारा किया कि वह उठकर बैठना चाहता है। एक ओर से मैंने और दूसरी ओर से चाँद ने उसे उठाया और मोटा तकिया रखकर उसके सहारे बिठा दिया। एक हड्डियों का ऐसा ढाँचा मात्र था वह कि जिस पर खाल भर लपेटी हुई हो। मानव शरीर और यौवन का ऐसा परिवर्तन मैंने अपने जीवन में अब तक न देखा था।

चाँद ने कहा—दलिया ठंडा हो गया है। कहो, तो गर्म करके ले आऊँ?

ले आओ—राधावल्लभ ने सिर हिलाकर जता दिया।

वह उठकर बाहर चली गई।

मुझे दुखी देखकर राधावल्लभ बोला—दुखी होने की बात नहीं है मेरे लिए भाई। मैंने जीवन के सब सुखों का भोग कर लिया है। समाज के नियमों को तोड़कर मैंने चाँद जैसी नारी को पाया, इसे मैं जीवन का सबसे बड़ा वरदान मानता हूँ। मेरे अपने कर्मों का बोझ इतना भारी था कि मैं कभी का उससे दबकर पिस गया होता। चाँद ने मेरे जीवन में प्रवेश करके इस पापों के हिमालय को स्वयं उठा लिया और मुझे ऐसी राहत दी कि मैंने एक बार नया जीवन पाया। हाय, परन्तु मैंने अपनी कुटेवों से इस प्राप्त स्वर्ग को फिर से खो दिया।

कहता कहता राधावल्लभ अपने भावों में खो गया। कुछ क्षण चुप रहकर बोला—रमेश भाई, तुम्हें याद होगा एक दिन मैं, तुम, रामचरन और सुचेता साथ साथ खेलते थे। सुचेता को लेकर मैं और रामचरन में झगड़ा होता था और तुम बीच में पड़कर हमारे झगड़े को निपटाते थे। कितने निकट अतीत की यह बात है। उसके बाद सुचेता हमारे जीवन से निकल गई परन्तु नारी के प्रति पुरुष की जो लालसा होती है उसे जो वह जगा गई वह फिर मेरे भीतर प्रज्वलित ही होती गई। वह कभी कम न हुई। मैं न जाने कहाँ कहाँ भटकता फिरा। तप्त मरुभूमि में तृषित हिरन की भाँति मुझे मृगमरीचिका के सिवा और कुछ न मिला। दवाई, कहकहा,

दिल्ली और लाहौर के संगीत विद्यालय, नाटक मण्डलियाँ मजलिसें और फिल्म स्टूडियो सभी की खाक मैंने छानी। कोई बाकी न रहा। सर्वत्र गायक गायिकाओं, अभिनेता व अभिनेत्रियों के सपर्क में आया। उनका कृपापात्र बना और उनके साथ रगरेलियाँ कीं परन्तु भीतर की आग शांत होने के बजाय दीप्त ही अधिक हुई। इस मरणशैया पर लेटा हुआ मैं आज उस सुचेता को, वह जहाँ कहीं भी हो, शाप देता हूँ कि जीवन-सुख से वह जन्मजन्मान्तर तक वंचित रहे।

अब तक तो मैं चुपचाप उसकी बातें सुन रहा था। अब मेरे से न रहा गया। मैंने उसे रोककर कहा—ऐसा मत कहो। सुचेता के लिए ऐसा मत कहो भाई। मैं उससे मिलकर आरहा हूं। उसे भगवान् ने जो सुख दिया है उसके लिए किसी अशुभ कल्पना को मैं सुनना नहीं चाहता।

इसके साथ ही मैंने सुचेता कैसी है, यह सारा हाल बताकर कहा—पुण्यवती उस नारी के लिए कुछ भी कहना आज ठीक नहीं है भाई। लड़कपन की बातों को याद करके उसे दोष देना अनुचित है।

"मैं तो अपने भीतर की वासना को भड़काने का उसे दोषी मानता हूँ। उसने किस तरह छेड़छेड़ कर उसे जगाया था यह तुम्हें मालूम नहीं। तुम तो उस समय निरे बच्चे थे।"

"हो सकता है। और यह भी हो सकता है कि अपने हृदय की भावनाओं को तुमने भूल से उसके आचरण में देखना शुरू कर दिया हो। यों वासनात्मक मोह मानव शरीर की प्रकृतिदत्त आवश्यकता है, परन्तु उसके आसपास मानसिक कल्पनाओं का जाल बुनकर यह उसमें इतनी उलझनें पैदा कर देता है कि कभी कभी स्वयं भी उसकी थाह पाने में भूल कर बैठता है। जिस हेतु तुम जो बात करते थे उसी कारण वह भी वैसा करती थी, यह मान बैठने से ही इस प्रकार की भूल हो जाती है।"

उसने मेरी किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर सुस्ता लेने के बाद बोला—हो सकता है। मातृगौरव के उच्च पद पर आसीन हो जाने से आज सुचेता देवी भी बन सकती है। तुम सब लोग धूर्त और ठेक

मेरे सुख के लिए क्या नहीं किया ?

चाद की इस प्रशस्ति के समय मुझे बराबर सोरे वाली घटना याद आ रही थी जब एक बाबू साहेब ने घर के भीतर आकर उससे मुलाकात की थी और जिन शब्दों में जो कुछ कहकर वे चले गये थे वे शब्द तबसे अब तक मेरे कानों में गूँज रहे थे। यद्यपि मैं उन शब्दो का सन्दर्भ नहीं जान पाया हूँ परन्तु वे स्वय इतने स्पष्ट और साफ हैं कि उनसे अधिक सार्थक शब्दावली और क्या होगी ? वे अपने आशय को आपही प्रकट कर रहे हैं। उनकी खबर तक न रखकर राधावल्लभ जो यह स्तोत्र पाठ कर रहा है उससे वह चाँद के मूल्य को बढ़ाने की बजाय घटाता ही अधिक है।

इस बीच चांद न जाने कब आकर खड़ी होगई थी। वह बोली—तुम्हें जरा कभी नींद आजाती है तो उसके बाद फिर चुपचाप नहीं बैठते। बोल बोलकर तबियत खराब कर ही लेते हो। यह भी कोई बात है।

राधावल्लभ—बात यह है चाद कि अब जब जीवन की कोई आशा नहीं है तो कराह कराहकर मरने की अपेक्षा बातें करते करते मरूँ यही मैं चाहता हूँ।

चाद—तुम तो सदा इसी तरह करते हो। लो यह दूध और दलिया थोड़ा सा ले लो। पीछे तुम्हारे मन में आये सो करना।

उसने एक छोटी टेबिल पर दूध दलिया और चम्मच रख दिया। राधावल्लभ बिना प्रत्युत्तर किये चम्मच उठाकर उसकी आज्ञा का पालन करने का यत्न करने लगा।

इतनी देर हम लोगों से अलग रहकर चांद प्रकृतिस्थ हो चुकी थी। बोली—भाई, तुम्हें यह बात शायद बुरी लगी होगी कि मैंने तुम्हारे रहने और खाने का प्रबंध यहाँ नहीं किया।

अवश्य ही इसका कोई कारण होगा—मैंने कहा।

इस घर का किराया चुकाने या इस प्रकार के रहन सहन को बरदाश्त करने लायक हमारी हालत नहीं है। साढ़े आठ महीने से इन्होंने एक पैसा भी पैदा नहीं किया है। दो महीने बम्बई में, डेढ़ महीने नासिक में और

बाकी पांच महीने यहां सिर्फ खर्च करते ही बीते हैं। हमारे पास जो कुछ था वह समाप्त हो चुका। अभी दो दिन पहले दूसरे दिन के लिए इनके पथ्य को भी हमारे पास कुछ नहीं था।

राधावल्लभ ने खाना बंद कर दिया और बोला—रमेश भाई, इसके आगे बहुत दर्दनाक अध्याय है। चांद उसे ठीक से न कह सकेगी।

सचमुच ही चांद में शक्ति का शेष हो चुका था। वह कमरे से बाहर चली गई थी। राधावल्लभ बोला—एक बाबू साहेब बंबई से चांद के गाहक हैं। अपने जीवन के अन्तिम क्षणों के आराम के लिए मैंने अपनी चांद को उन्हें दे डाला है। बदले में इस घर का निवास और रहन-सहन का सारा खर्च तथा नौकर चाकर पाये हैं।

कहते कहते चम्मच उसके हाथ से छूट पड़ा, और सांस ऊपर चढ़ गई। एक भयानक कष्ट से उसकी सारी काया मरोड़ खाने लगी।

मैंने दोनों हाथों से सहारा देकर उसे सँभाला। चांद कहीं गई न थी। द्वार से सटकर दीवाल के सहारे खड़ी थी। सामने रहकर यह सब सुनने की सामर्थ्य उसमें न थी। वह भी भीतर आ गई और जो-सो उपचार की व्यवस्था करने लगी।

"इनसे तो थोड़ी देर भी शान्त नहीं बैठा जाता।"

"कैसी हालत में कौन शान्त रह सकता है? इन्हें व्यर्थ दोष न दो चांद।"

उपचार जारी रहा। करीब बीस मिनट में जाकर राधावल्लभ का जी ठिकाने आया। चांद ने सख्त हिदायत कर दी कि अब व्यर्थ की बातें नहीं करनी होंगी।

राधावल्लभ ने क्षीण कण्ठ से कहा—परन्तु काम की बातें तो कर लेने दो। समय बीता जा रहा है। गिनी हुई सांसें रह गई हैं। फिर कौन बताने आवेगा?

राधावल्लभ के हाथों में सूप की प्याली लाकर चांद ने उसे झिड़कते हुए कहा—तुम नहीं मानोगे तो हम जाते हैं। तुम्हें तो बकवाद ही पड़ा रहने

देना चाहिए।

नौकर ने आकर सूचना दी—डाक्टर देखने आया है।

पीछे पीछे अपने हैंडबैग के साथ डाक्टर ने प्रवेश किया।

तुम कैसा है महाशय ?—डाक्टर का पहला प्रश्न था।

मैंने डाक्टर के लिए कुर्सी छोड़ दी। वह उस पर बैठ गया। राधावल्लभ ने हँसने का यत्न करते हुए कहा—इस समय मैं बिल्कुल स्वस्थ हू डाक्टर।

यह तो बहुत अच्छा सम्वाद है महाशय।—डाक्टर ने नाड़ी की परीक्षा करते हुए कहा।

राधावल्लभ—मैं इस कदर स्वस्थ हू डाक्टर, कि पैदल ही स्वर्ग तक चला जा सकता हूँ। तुम्हे कैसा लग रहा है ?

डाक्टर—स्वर्ग का रास्ता तुम्हारे लिए कभी का बन्द हो गया है।

राधावल्लभ—स्वर्ग का बंद होगया है पर नर्क का तो खुला है। मेरे जैसे आदमी को स्वर्ग में घुसने भी कौन देगा ?

डाक्टर—नर्क में कोई जाना नहीं चाहता। तुम जाना चाहता है ?

राधावल्लभ—लेकिन तुम्हे देने को अब हमारे पास फीस नहीं है।

उसकी फिक्र तुम्हें नहीं करनी है महाशय। फीस हमारे पास आपही पहुँच जाती है। मुझे तो बदस्तूर दिन मे तीन चार आकर तुम्हारी परीक्षा करनी है।—डाक्टर ने कहा।

चाँद अब तक चुपचाप खड़ी थी। वह बोली—डाक्टर साहेब, यह बोलते बहुत है आप इन्हे ऐसी सलाह दीजिए कि ये कुछ देर शान्त रहा करें।

"शांति और मौन ही तो इनका पथ्य है। देखो महाशय, डाक्टर और पत्नी दोनों की राय जिस बारे में मिल जाय उसे स्वीकार करना बीमार का फर्ज है। उसमे कुछ नहीं चल सकता।"

"महामौन की साधना में कभी कभी मौन भग की छूट तो होनी ही चाहिए डाक्टर। बोलिए क्या यह ठीक नहीं है ?"

"तब तुम्हारी इस खूबसूरत बीबी का क्या होगा, यह भी सोचा है ?"

कष्ट उठाकर अपनी प्रतिज्ञा को निबाहा था। उसे मेरमी की हालत में प्राण वह करने की स्वीकृति दे चुकी है।

यह सुनकर मुझे और अधिक दुःख हुआ कि मेरी प्रतीक्षा में दो दिन बिना खाये पिये बिताने के बाद निराश होकर उसने यह जौहर व्रत करने का निर्णय किया था। काश, मैं दो दिन पहले पहुंच गया होता। इसी मेवाड़ में इसी तरह की एक ऐतिहासिक घटना तब घटी थी जब राजपूत बालाओं की चिता की राख पर खड़े होकर हुमायूँ ने आँसू बहाये थे। वह भी समय पर नहीं पहुंच पाया था। मैं भी उसी तरह समय के बाद पहुँचा हूं। मैं भी पलकों में अश्रु लिए अपनी बुद्धि का तिरस्कार कर रहा हूँ।

चाँद का जितना स्तोत्रपाठ राधावल्लभ ने किया था मेरे निकट वह उससे कहीं अधिक पूजनीय और महनीय हो उठी। इतना बड़ा त्याग करके कोई पुरुष कभी धरती पर पैर भी न रखना चाहेगा। यह मातृजाति ही है जो हँसते हँसते अपना सर्वस्व प्रियतम पर निछावर कर सकती है और फिर भी मुंह नहीं खोलती, मूक बनी रहती है। राधावल्लभ के लिए, जिसे उसके मा बाप ने कपूत ठहराकर त्याग दिया, उसने क्या नहीं किया है? तपस्या का यदि कोई फल होता है, त्याग की यदि कुछ महिमा है, पुण्य का यदि कोई प्रताप है तो उसे कभी इस दुनिया में दुःख नहीं होना चाहिए। उसकी पाप की कमाई के एक कण से भी मेरा वास्ता न रहे इस वास्ते वह फुर्सत के एक एक क्षण को बुनाई और कशीदे के काम में लगाती है और जो कुछ तैयार होता है उसे बुढ़िया अम्मा की मारफत दूकानों पर पहुँचा देती है। उन्हीं श्रम से उपार्जित पैसों से मेरे रहन सहन की उसने व्यवस्था की है।

गई—अरे, यह क्या ? क्या करते हो भैया रमेश ।

मैंने कहा—इन चरणों की धूलि का तीर्थराज की रेणु से भी बड़ा महात्म्य है । तुम मुझसे उम्र में भले ही छोटी हो चाद, लेकिन मेरा जीवन तो आज तुम्हारे इन चरणों को छूकर ही सफल हुआ है ।

"इस तरह क्यों मेरा तिरस्कार करते हो—मैं अभागिनी पापिष्ठा क्या तुम्हारे समीप खड़ी होने योग्य हूँ ? मुझे इतना आदर देने से यह पृथ्वी भारों दब न जायगी ।"

"इस जीवन में जो कुछ महान है, इस दुनियाँ में जो कुछ धर्म-पुण्य है, वह सब तुम्हारे कामों से नीचे है चाँद । जो इसे नहीं मानते वे पाखंडी हैं ।"

"उन्हें तो मर्ज हो गया है । वे इसी तरह की बातें करके अपनी कल्पनाओं के अंबार उठाया करते हैं । तुमसे न जाने क्या क्या गढ़ गढ़कर कह डाला है । उनकी बातें क्या तुम सत्य समझते हो ? वे तो अपनी धारणा के मुताबिक जो मान लेते हैं उसे ही लिए बैठे रहते हैं । ये उनके स्वस्थ मन की बातें नहीं हैं । स्त्री अपने स्वामी की दुख-दर्द में सहायक न होगी तो और कौन होगा ? यदि वह इस सेवा सुश्रूषा के लिए यश और कीर्ति चाहने लगे तो क्या उसका लोक-परलोक एक भी सधेगा ?"

"संसार में लीक लीक चलने वाले ही अधिक हैं । उन्हीं से दुनियाँ भरी है । ऐसों के आगे कभी मेरा यह सिर झुका हो तो भूल से ऐसा हुआ होगा । अलीक और विपथगामियों का साहस ही श्रद्धा की चीज है चाँद । वह बाधाओं से रगड़ रगड़कर सत्य के सुनहले रूप को प्रकट करता है । उसके आगे जो न झुके वह अन्धा है ।"

"तो तुम लोग मुझे रहने नहीं दोगे ?"

"तुम रहोगी चाँद इस दुनियाँ में अपनी मृत्यु के बाद भी तुम पूर्णिमा के चाँद की तरह ही सदा चमकती रहोगी ।"

"राम राम, ऐसा मत कहो ।"

"मैं सच कहता हूँ बहिन, मुझे गर्व होता है तुम्हारा भाई कहलाने

का। मैं जीवन की बहुत बड़ी प्राप्ति को खो देता यदि तुम्हारा पत्र पाकर भी यहाँ न आता। नारी चरित्र की यह प्रोज्ज्वल दीपशिखा मेरे पथ में प्रकाश-स्तम्भ बनकर खड़ी रहेगी।"

"तुम्हें तो मैं सदा विचार से काम लेनेवाला ही समझती रही हूँ। इतनी जल्दी मत करो। मुझ जैसी एक दीन दुर्बल पतिता की स्तुति करके उसका भार और न बढ़ाओ। पुण्यक्षीण करने जैसी बात तो मेरे मुँह से निकल नहीं सकती, क्योंकि इस जीवन में पुण्य जैसा पवित्र कार्य करने की मुझे याद नहीं है।"

यह कहते कहते उसकी पलकें भीग गई। वह उन्हें पोंछ डालने के लिए वहाँ से मुँह छिपाकर भाग गई। मैंने उससे अधिक कहना ठीक न समझा। मैं पास के कमरे में जहां मेज कुर्सी और लिखने पढ़ने का सामान रक्खा था चला गया और अम्मा के नाम पत्र लिखने लगा। बिट्टो का अनुरोध कि अम्मा चिन्ता करेंगी पहुंचने पर एक पत्र तो लिख देना, मुझे याद था। मैं कागज-कलम लेकर बैठ गया। लेकिन क्या लिखूँगा यह एक उलझन पैदा होगई। यदि सचमुच अम्मा को ही लिखना उद्देश्य होता तो इतनी उलझन की बात न थी। सीधे सादे चार छ वाक्यों में कुशल-समाचार और कुछ अपनी यात्रा का हाल लिखा जा सकता था, लेकिन पढ़नेवाला एक दूसरा ही आदमी होगा और उसे सीधी-सादी चार लाइनों से कुछ अधिक, कुछ विशेष, लिखे बिना काम नहीं चलने का। पत्र लिखने के और जो भी उद्देश्य हों एक यह तो बहुत जरूरी है कि उससे सामनेवाले का परितोष हो जाय। वह जिज्ञासा की व्यथा से थोड़ी देर के लिए मुक्त हो जाय। स्याही से भरी हुई कलम मेरे हाथ में थी, और मैं सोच रहा था कि कहां से कैसे आरंभ करूँ। अम्मा के लिए तो बहुत थोड़ी सी और काम की बात ही काफी होती जबकि बिट्टो के लिए जितना लिख सकूँ और जो जो भी लिख सकूँ वही थोड़ा है। उसकी शिकायत बनी ही रह सकती है। आखिर मैंने जो जी में आया लिखा परन्तु चांदकुँवरि और राधावल्लभ के नामों का उल्लेख न किया, न उनका

"मैं तुम्हारा यह मकान कल ही खाली कर दूँगी। इसी का लाभ उठाकर तुम एक दुखिया को परेशान करते हो। मैं चाहे जीती हूँ चाहे मरती हू ग्यारह बजे से पहले तुम्हें यह जानने का अधिकार नहीं दिया गया है।"

"तुम तो खफा होगई। मैं किसी तरह उस नियम को तोड़ने की गरज से नहीं आया।"

"तो फिर क्या चाहते हो? तुम यह चाहते हो कि जब तुम्हारी इच्छा हो यहाँ चले आओ और मैं हर समय तुम्हारी सेवा में खड़ी रहूँ?"

"कभी नहीं यह तुम्हारे मन में कैसे उठा है? मैं तो चाहता हूँ कि तुम्हारे चेहरे पर उदासी के बजाय प्रसन्नता देखूँ, तुम्हारी आँखों में आँसू के बजाय प्रेम का सदेश पाऊँ। सारा घरबार छोड़ कर मैं तुम्हारे पीछे फिर रहा हूँ। अगर मैं तुम्हें अपने अनुकूल न कर सका तो मेरा प्रयत्न निष्फल है।"

"अनुकूल-प्रतिकूल को जाने दो आनन्द। आन्तरिक प्रेम की पीड़ा से विह्वल होकर मैंने तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया है, यह तो जानते ही हो। यह तो एक सौदा है। जब तक इसकी शर्तों पर हम दोनो कायम हैं यह चलेगा, नहीं तो टूट जायगा।"

"छिः, तुम बड़ी निठुर हो।"

"मैं सच कहती हूँ। उन शर्तों का प्रतिपालन करने की तुम जरूरत नहीं समझ रहे हो। यह तो स्पष्ट है। मेरी विवशता के कारण तुम्हारा यह अत्याचार चल रहा है।"

"चाँद, अगर तुम इसे अत्याचार कहोगी तो मैं फिर कभी तुम्हें अपनी शक्ल न दिखाऊँगा। मैंने तो सुना था, इसीलिए चला आया।"

"क्या सुना था?"

"सुना था तुम्हारे कोई मित्र यहाँ आकर ठहरे हैं।"

"हाँ, मेरे भाई आये हैं।"

"लेकिन उस दिन तो तुम कह रही थीं कि तुम अकेली हो। तुम्हारे

"हाँ, भाई तो अहिन की ही तरह होगा।"—कहकर और नोटों को जहाँ का तहाँ छोड़कर वह कमरे से बाहर निकल गया।

चाँद कहती रही—अपने नोट लिये जाओ आनन्द। इनका यहाँ क्या होगा ? जीने तक जाने के बाद मालूम पड़ता है वह एक मिनट के लिए फिर यह कहता हुआ लौट आया—मुझे शायद कुछ ज्यादा दिन लग जायें। फिक्र मत करना। कोई बात हो तो पत्र लिख देना। मेरा खानगी पता तुम जानती ही हो। मैं जरूरत होने पर दूसरे ही दिन पहुच जाऊँगा।

चांद ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह पता नहीं क्या कर रही थी ?

फिर सुन पड़ा—रोओ नहीं चाँद ! गाड़ी का समय हो गया है। मैं जा रहा हूँ।

इस बार आनन्द चला गया, फिर न लौटा। चाँद मालूम पड़ता है देरतक कमरे में पड़ी रही। बिखरे हुए नोटों को उसने इकट्ठा किया या नहीं इसका पता नहीं चला। सबेरे मैंने देखा राधावल्लभ के सिरहाने दस दस रुपये के लगभग सौ सवा सौ नोट रक्खे हुए थे।

अम्मा के लिए लिखा हुआ पत्र मैं जाकर डाक मे डाल आया। घर के द्वार पर पहुचा तो नौकर ने अभिवादन करके निवेदन किया—बाबू साहेब बोल गये हैं कि बीबीजी या आप कहीं आना जाना चाहें तो मोटर तैयार मिलेगी।

मैंने कहा—अच्छी बात है। यह बात बीबीजी को बोल देनी थी।

"बीबीजी ने तो इनकार कर दिया है।"

"तब मुझे तो आना जाना ही कहा होगा ?" कहकर मैं राधावल्लभ के कमरे में चला आया।

यहा आये मुझे तीन चार दिन हो चुके हैं। तब से अब तक कोई नई घटना नहीं घटी है। दिन मुश्किल से कटता है। जब राधावल्लभ या चांदकुंवरि के पास होता हूँ और कोई चर्चा छिड़ जाती है तो समय मजे में कट जाता है।

उस दिन सबेरे वे हो हवावांदो हो रही थी। रोज की भांति नौकर

आकर उपस्थित हुआ और पूछा—बाजार का कोई काम है बीबी जी। डाक्टर को क्या कहना होगा?

चांद उसे देने के लिए दराज में से पैसे निकालने लगी। राधावल्लभ ने कहा—रामधन, और सब जगह जाना पर डाक्टर के यहां नहीं। मैं उसकी सूरत नहीं देखना चाहता।

चांद ने इस वक्तव्य पर कोई ध्यान नहीं दिया। पैसे निकालकर रामधन के हाथ में दिये और एक बड़ी शीशी भी। इसके बाद कहा—डाक्टर से कहना, कल रात को फिर सांस का वेग रहा। खासी भी कुछ अधिक रही। और आना चाहें तो साथ ही ले आना।

राधावल्लभ—मैं कह रहा हूँ इस यमदूत को मत लाना यहां। यदि मैं अच्छा भी हो जाऊं तो वह नहीं होने देगा। दवाई पर दवाई पिलाकर मुझे मार लिया है।

चांद—तुम जाओ रामधन, मैंने जो कहा वैसा करना। रामधन चला गया। राधावल्लभ बड़बड़ाता रहा।

मैंने कहा—अगर इस डाक्टर पर आस्था न हो तो दूसरे को दिखाओ। दवा बन्द कर देना तो ठीक नहीं है।

राधावल्लभ—बीमारी जिस स्थिति को पहुँच गई है उसमें कोई दवा कारगर नहीं होगी। यह जानकर भी दवा पीते जाना शरीर के कष्ट को बढ़ाना है।

मैं—यह तो निराश होने जैसी बात है।

राधावल्लभ—अब भी तुम लोगों को आशा है?

मैं—कहावत है 'जब तक श्वासा तब तक आशा।'

इस पर राधावल्लभ हँस पड़ा। उसकी हँसी पर चांद बिगड़ उठी। बोली—इन्हें समझाना वृथा है भाई। जो इनके जी में आया वही करकर तो इन्होंने अपनी यह दशा कर ली है। कभी डाक्टर और वैद्य की बात को माना होता तो आज यह नौबत क्यों आती?

मैंने उसे शान्त करने की दृष्टि से कहा—नाराज न हो। बीमार को

किसी पर विश्वास नहीं रहता। यह तो उसकी देखरेख करनेवालों का कर्त्तव्य है कि वे उसे तसल्ली भी देते रहें और इलाज में भी कोई व्यतिक्रम न होने दें।

राधावल्लभ—यह सब कुछ नहीं है। मैं दो दिन का बीमार नहीं हूँ। मैं उसके साथ कदम कदम चलकर वहाँ पहुच गया हू जहा से मृत्यु को भली भाँति देख सकता हू।

मैं—यह लंबी बीमारी से उत्पन्न निराशा का परिणाम है। मृत्यु कभी किसी को दिखती नहीं है, जब दिखती है तो वह तुरन्त उसकी गोद में विश्राम ले लेता है।

राधावल्लभ—लेकिन मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं दवा का अब एक बूँद भी नहीं लूँगा।

अगर ऐसा ही है तो मत लेना—मैंने कहा।

उधर रामधन डाक्टर को लेकर आ पहुँचा। कमरे में प्रवेश करते ही डाक्टर ने सहज विनोद के भाव से कहा—कहिये महाशय, आज तो चंगे हो?

"चंगा तो था, लेकिन आपको देखकर बीमार हुआ जा रहा हू।"

"यह क्या, सभी तो डाक्टर को पास पाकर साहस का अनुभव करते हैं। आप बीमार हुए जा रहे हैं?"

"डाक्टर मुझे विश्वास हो गया है कि आपके पास कोई ऐसी दवा नहीं है जिससे डाक्टर और बीमारी दोनों से त्राण मिल जाय?"

"हर एक दवा ही तो यह गुण रखती है महाशय, लेकिन रोगों की किस्में भी तो लाखों हैं। कब कौन सी दवा यह काम करेगी यह निर्णय करना ही मुश्किल होता है।"

"मैं आपको एक दवा बता सकता हूँ जो हर दशा में यही काम करेगी।"

"जरूर बताइये महाशय। आप मेरे गुरु, मैं आपका चेला। कहिये।"

"डाक्टर, वह दवा है जहर—हलाहल।"

यह सुनकर डाक्टर इतनी जोर से हँसा कि सारा मकान गूँज गया।

फिर बोला—लेकिन डाक्टर लोग ऐसी चीज का प्रयोग करके अपने पेशे पर कुठाराघात करना नहीं माँगता।

"तो आप लोग अपने पेशे को कायम रखने के लिए बीमारियों को कायम रख रहे हैं?"

"आप सच कहते हैं महाशय। अब चाहिये आपकी नाड़ी-परीक्षा करें।"

"लीजिये, नाड़ी-परीक्षा कीजिये लेकिन राधावल्लभ अब आपकी दवाई का एक बूँद भी गले से नीचे नहीं उतारेगा।"

"क्यों महाशय?"

"यही निश्चय किया है। अगर दवा ही देनी है तो मुझे दो बूँद हलाहल दो डाक्टर। आपकी दूसरी दवा मैं नहीं लूँगा।"

डाक्टर ने नाड़ी देखी। हृदय की परीक्षा की। सतोष प्रकट करके कहा—आम हालत में सतोषजनक उन्नति हो रही है।

राधावल्लभ ने इस पर मुस्कराकर कहा—परन्तु खास हालत बिगड़ रही है यह सुधार उसके आगे कुछ भी नहीं है डाक्टर।

डाक्टर चला गया। उसकी भेजी हुई सभी दवायें टेबिल पर रक्खी रहीं। एक बूँद भी रोगी ने नहीं ली। चाँद पानी भरी हुई घटा की तरह फिर रही थी। मैं जानता था उसे जरा भी छेड़ दूँगा तो घर में आँसुओं की गंगा बह जायगी। सब लोग चुपचाप और मौन थे। मैं बुढ़िया अम्मा के यहाँ भोजन करने भी नहीं गया। आकाश के बादल छँट गये थे पर घर का वातावरण साफ न हुआ था।

दोपहर के बाद हवा चली और उसके साथ ही आँधी-पानी के आसार दिखाई दिये। राधावल्लभ एक हलकी चादर से अपना कपाल ढके चुपचाप पड़ा था। मैं पास ही कुर्सी पर अलसाया बैठा था। जी नहीं होता था कि किसी से कुछ बात करें। देखा चाँद भीतर आई और राधावल्लभ को लक्ष्य करके बोली—क्या आज सबको निराहार रखना है? पथ्य भी नहीं लोगे?

राधावल्लभ—चाँद, तुम्हारी दुखी मालुमी की परवाह किये बिना

मैंने बहुत बार बहुत से काम किये हैं। आज नहीं करूंगा। आज आने से पहले तुम्हें नाराज नहीं करूँगा। लाओ पहले दवा दो, पीछे पथ्य देना।

चांद इतनी देर बाहर रहकर जो साहस और कोप बटोर लाई थी, इस आशा से कि इस बार वह राधावल्लभ को दो चार कड़ी बातें सुनायेगी। दो चार ऐसी शिकायतें करेगी जिससे वह यह समझे कि वह न केवल अपने पर बल्कि घर के और सब लोगो पर कम अत्याचार नहीं कर रहा है। उसका वह सारा साहस और कोप आँखों में से आँसू बनकर ढुलकने लगा। उसने यह परवाह नहीं की कि मैं वहा बैठा हूं। वह आगे बढ़कर राधावल्लभ की चारपाई पर औंधी होगई और हिचकारी मारकर रोने लगी। मैं अपनी कुर्सी पर किंकर्तव्य विमूढ़-सा रह गया। मुझे सूझ नहीं पड़ा कि क्या करूँ, कमरे से बाहर निकल जाऊँ या वहीं बैठे बैठे उन्हें सान्त्वना दूँ।

राधावल्लभ ने अपनी छाती पर रक्खे हुए उसके सिर को दोनो बाहों में भर लिया और कहा—चाद, प्यारी। रोओ नहीं, दवाई पिलाओ। मेरा कठ सूख रहा है।।

उसके भर्राए कठ स्वर से मालूम पड़ा कि वह भी करुणार्द्र हो उठा है।

चाँद रोते रोते ही बोली—मैं क्या तुम्हें इसलिए दवाई पिलाना चाहती हूँ कि तुम्हें कष्ट हो? अगर तुम्हें दवाई नहीं भाती है तो मत लो उसे।

राधावल्लभ—दवाई पर से मेरी आस्था उठ गई है चाँद, इसीलिए मैंने ऐसा कहा था। उससे मुझे अरुचि नहीं है।

चाँद—आस्था उठ गई है तब भी तो उसे नहीं लेना चाहिए। ऐसी हालत में कोई लाभ नहीं होगा उससे।

राधावल्लभ—होगा क्यो नहीं होगा। तुम अपने हाथों से डालकर दो। जरूर लाभ होगा। मैं दवा के प्रभाव से नहीं तुम्हारे हाथों के अमृत के प्रभाव से ही तो आज तक जिन्दा हूँ। जरा अपने हाथ इधर दो मुझे।

चाँद ने निस्संकोच भाव से अपने दोनो हाथ बढ़ा दिये। राधावल्लभ ने

प्यारी प्यारी से दो तीन बार दोनों का चुम्बन किया और कहा—कितने मीठे हैं ये। ओह, अमृत भी क्या इतना मीठा होगा ?

इसके बाद राधावल्लभ के चेहरे पर से मुर्दनी दूर होती दिखाई दी। जैसे सचमुच ही हाथों के अमृत का प्रभाव उसके ऊपर हुआ हो। चाँद के भीतर का गुबार भी निकल गया और वह भी स्वस्थ और हल्की प्रतीत हुई। वह दवाई पिलाने का हठ किये बिना ही कमरे से बाहर चली गई और जब पथ्य लेकर लौटी, तभी मानों मेरी उपस्थिति का उसे भान हुआ और उसके कारण वह शर्म से दोहरी हुई जाने लगी।

पथ्य खिलाकर जब वह चली गई तो राधावल्लभ ने मुझसे पूछा—रमेश भाई, क्या ख्याल है, बुद्ध को बोधिज्ञान की प्राप्ति कराने में सुजाता की खीर कारण थी या उसके हाथों का अमृत ?

शायद हाथों का अमृत ही होगा, नहीं तो खीर तो सभी खाते हैं पर बुद्धदेव कोई नहीं हो पाता।—मैंने उत्तर दिया।

इस पर देर से बन्द कर रक्खी हुई अपनी आँखों को खोलकर उसने कहा—'शायद' फिर किसलिए, निश्चयपूर्वक कहो न।

मैं—शायद इसलिए कि मुझे इसका पूरा अनुभव नहीं है।

"यह सही है तुम्हें अभी इसका ज्ञान नहीं है। परन्तु होगा, निश्चय ही होगा। नारी के प्रेम का प्रसाद तुम्हें जल्दी ही मिलेगा और तब तुम जानोगे।—मैं तो अपने को किसी अक्षय पुण्य का पात्र मानता हूँ जिसे एक नारी के अकृत्रिम प्रेम का वरदान बिना माँगे मिला है। मैं जिन्दा रहूँ तो सुखी हूँ और मर जाऊँ तो भी दुःख नहीं है।"

मैंने कहा—तुम धन्य हो।

मालूम पड़ता है इतनी देर तक आवेशपूर्ण बातें करते करते उसका सिर घूमने लगा। हाथों को इधर उधर फैलाकर पलँग की पाटी का सहारा लेते हुए वह बोला—रमेश, जरा उसे बुलाओगे भाई ?

मैंने देखा उसकी आँखों की पुतलियाँ पलट रही हैं। मैं दौड़कर चाँद को बुला लाया। वह भागती आई। तब तक उसका सिर पाटी पर गिर

यह क्या तुम सच कहते हो रमेश भैया? यह जानकर भी कि मैं क्या हूँ तुम मुझे स्पर्शयोग्य समझते हो?—कहते कहते उसकी आँखें छलक उठीं।

मैंने कहा—यदि मैं इसमें जरा भी झूठ कहता होऊँ तो मेरे लोक परलोक दोनों नष्ट होजाएँ।

"उनकी ऐसी बातों पर मैं सदा अविश्वास करती रही और यही समझती रही कि वे मुझे प्रसन्न देखने के लिए इस तरह की बातें उठाते हैं। आज तुम्हारे मुँह से वही बातें सुनकर मैं अविश्वास नहीं करती। आज मैं यह मान कर प्रसन्न हूँ कि मेरा यह क्षुद्र अस्तित्व भी सर्वथा अकारथ नहीं रहा"

तुम्हें इससे अधिक मानने का अधिकार है—मैंने कहा।

चाँद ने वहीं झुककर मुझे प्रणाम किया और अपने हाथों से मेरे लिए रसोई तैयार करने चली गई।

सध्या समय मैं खा पीकर निश्चिन्त हुआ तो एक पत्र लिए चांद दौड़ी आई और एक बार फिर क्षमायाचना करते हुए बोली—भैया, तुम्हारा यह पत्र कई दिन पहले रामधन देगया था। मेरी हालत ठीक न थी। मैं इसे रख कर भूल गई थी। क्षमा करना।

मैंने पत्र ले लिया और खोलकर पढ़ने लगा। बिना हस्ताक्षर का यह पत्र बिट्टो ने लिखा था। अम्मा की ओर से लिखते हुए भी वह अपने आपको अलग न रख सकी थी और इसलिए वह एक बड़ी मजाक की चीज बन गया था। सबसे ऊपर लिखा था, 'श्रीचरणों में'। कितने प्रयास और कितनी मेहनत से लिखा गया था वह पत्र। पत्र लिखने के लिए जिसने कभी लेखनी न पकड़ी हो, और कहने के लिए जिसके पास बहुत सी बातें हों—शिकायतें भी और सवाद भी और उन्हें भी अवगुठन से बाहर न झाँकने देना हो तब उसके सामने मुश्किलें पैदा हो ही जाती थीं। मैं तो एक नजर डालते ही हँस पड़ा।

चाँद ने मुझे हँसते देखकर पूछा—किसका पत्र है भैया, अ… यो [illegible]

मुझे लेना ही होगा। दूसरा उपाय ही क्या है? तब उनके स्वास्थ्य की चिन्ता करना भी तो एक कर्तव्य है।

मैंने कहा—अवश्य।

इसके बाद उस समय और अधिक बातें न हुई। चाँद को रामजन आकर साथ लेगया, इससे मुझे मालूम हुआ कि मेरी आज्ञा माँगना तो उसका एक शिष्टाचार मात्र था। वहाँ जाना वह पहले ही तय कर आई थी।

उस दिन देर गये रात तक मैं विस्फारित नेत्रों से कमरे के अन्धकार में इधर से उधर देखता रहा। नारी-चरित्र के गहन पहलुओं की मीमांसा में घंटों निरत रहने के बाद बड़ी मुश्किल से मुझे नींद आई। सबेरे आँख खुली तो देखा चाद न जाने कब की लौट आई है। नहा धोकर केशों को सुखाने के लिए मेरे मुँह के सामने धूप में खड़ी है। उसकी कुन्दन सी काया और गुलाब सा मुखड़ा बालसूर्य की आभा में एक दम अनमोल हो पड़े हैं। मेरी आँखों में लोभ का नशा उमड आया। मैं चुपचाप उसकी रूप छटा का पान करके मुग्ध होने लगा।

चाद को इसकी कुछ भी खबर न थी। मेरी व्याकुलता अपने भीतर काबू में नहीं रही, तो अचानक मेरे मुँह से आवेग भरे स्वर में निकला—चाँद! चाँद!

सद्यस्नाता चाद इस अचानक संबोधन के धक्के से चौंक गई जिससे शरीर में लपेटा हुआ वस्त्र उसके हाथों से छूट गया और वह मेरी आखों में नग्न मर्मर प्रतिमा सी समा गई।

मैंने आँखें बन्द कर लीं। मेरा हृदय जोर जोर से धड़कने लगा। माथे पर और हाथ पैरों में पसीना ही पसीना होगया। इस बीच चाद अपने वस्त्र को फिर से लपेटकर कमरे में घुस आई और बोली—भैया, भैया, रमेश! कैसा जी है? सो रहे हो?

उसने मेरे मुँह पर से वस्त्र हटा दिया। मैंने आँखें खोलीं, देखा उसके नेत्रों में दया भरी है। उसके मुँह पर मातृत्व उमड़ रहा है।

मेरी आँखों में रम रही वासना उन्हीं में गल कर रह गई। मैंने ईश

चौबीस

यदि मन की कुभावना कोई पाप है, यदि पाप का कोई फल होता है, तो कहूँगा कि उसी के फलस्वरूप मुझे भयकर दड मिला। ऐसा दड जिससे मेरे मन की शाति कुछ दिन के लिए हरण होगई। मेरी जीवन धारा में इतनी उथलपुथल हुई कि जिसके लिए मैं कतई तैयार न था। मैं जिसके लिए सोहनपुर दौड़कर आया था वह बिट्टो कभी का उसे छोड़ चुकी थी। अम्मा और बिटिया भोला की मृत्यु के बाद सोहनपुर रहतीं भी किसके आसरे? मैंने पत्र मे लिख ही दिया था कि मुझे शायद देर तक ठहरना पड़ेगा। यदि मैं नहीं भी लिखता तो मेरा उन्हे क्या भरोसा था कि मैं सोहनपुर ही पड़ा रहूँगा। कहीं फिर न चल दूँगा। ऐसी सूरत में अपने निकट सबधी के प्रस्ताव को मानने के सिवा अम्मा के पास उपाय ही क्या था। अपने भैया-भतीजो के आश्वासन और अनुरोध को मानना ही पड़ा उन्हें। एक दिन दो तीन बैलगाड़ियों मे गृहस्थी का सारा सामान भरवाकर वे पचास-साठ कोस से भी लम्बी यात्रा को निकल पड़ीं। सदा के लिए अपनों के बीच में जाकर रहने में ही उनकी सुरक्षा है, उनकी जवान विधवा लड़की का हित है, यह बात वे भली भाति जानती थीं।

मैं उदयपुर से लौटकर आया तो सोहनपुर एकदम सूना मिला। बुआ बीमार पड़ी थीं। घर बाहर चारो ओर भाय भाय हो रहा था। घर से निकलते ही बिक्रम पीता और खासता हुआ या कमर में बाहर का कुआ

मन की खोई हुई शान्ति को फिर से पाने के लिए, उनमें जुट गया था। इसका अच्छा ही परिणाम हुआ। बुआ शीघ्र स्वस्थ हो गई।

इसी दरम्यान चाँद का एक लिफाफा आया। मैं तो सारे सम्बन्ध तोड़कर उदयपुर से आया था इसलिए उधर के समाचारों के लिए कोई व्यग्रता न थी, न कोई आशा ही थी। लिफाफे को लेकर मैंने खोला तो उसमें चाँद के पत्र के साथ एक पत्र बिट्टो का भी निकला जो सोहनपुर से जाते-जाते उसने लिखा था। पहले मैंने चाँद का पत्र पढ़ा। उसने लिखा था रमेश भैया, तुम्हारा पत्र मैंने पढ़ लिया है। इसके लिए क्षमा करोगे। तुमने इससे पहलेवाला पत्र पढ़ने का मुझे अधिकार न दिया होता तो यह धृष्टता मैं कभी न करती। भगवान् करे इसमें जो कुछ लिखा है वह सच न हो। तुम्हारी सुख-शान्ति निर्विघ्न रहे। आनन्दबाबू रोगमुक्त हो गये हैं। हम लोग शीघ्र बबई जाने को हैं।

इसके बाद मैंने बिट्टो का पत्र पढ़ा। उसमें इतना ही लिखा था—हम सब जा रहे हैं सोहनपुर से सदा के लिए। अब शायद कभी मिलना न होगा। अपराधों को क्षमा करना। अम्मा का आशीर्वाद। श्रीचरणों में बिट्टो का प्रणाम।

मेरे अन्दर एक तूफान उठ खड़ा हुआ। उसके प्रचंड वेग से रोम रोम हिल गया। मैं ही जान सकता हूँ कितना भेदन प्रभाव था इन साधारण सी दो पंक्तियों में? मैंने पत्र को छाती से लगा लिया और खोया हुआ-सा स्थिर होकर बैठा रह गया।

सध्या समय बुआ ने मेरे उतरे हुए चेहरे को देखकर कहा—तू तो बीमार हुआ जा रहा है रमेश। अब तू आराम कर भैया। मैं अब हट्टी-कट्टी हो गई हूँ।

मैंने उनके इस कथन का कोई विरोध नहीं किया।

भैया चार महीने की छुट्टी लेकर घर आये थे। बुआ को देखने वे सपरिवार अचानक सोहनपुर आ पहुँचे। उन्होंने सुन रक्खा था, बुआ बीमार हैं, मैं कहीं प्रवास पर हूँ। मुझे दरवाजे पर खड़ा देखकर भाभी हँसकर

अपने सुख दुख की चर्चा की। 'सत्यवचन' बोलकर बड़ी गंभीरता से उन्होंने सुना। मेरे विवाह के विषय में कहा—यह भक्त तो बड़ा भाग्यशाली है। इसके व्याह की चिन्ता स्वय शकर और पार्वती को है। बहुत मुहूर्त टल गये हैं। इस साल नहीं टलेगा। यही मर्जी परमेश्वर की है।

भाभी ने कहा—महात्माजी, व्याह तो इन्होंने खुद ही टाल दिये हैं।

'सत्य वचन' कहकर महात्मा जी ने उत्तर दिया—यह भी किसी अच्छे के लिये ही किया था इन्होने। ये भक्त बड़ा ज्ञानी है।

इसके बाद उन्होने अपनी धूनी में से थोडी सी राख लेकर और ओठों में कुछ बुदबुदा कर मेरे आगे करदी जिसे मैंने बड़ी श्रद्धा भक्ति का अभिनय करते हुए दोनों हाथ आगे करके ले ली।

अब भाभी ने महात्मा जी से कहा—भगवन्, मेरी बहिन सकट में है। उसका कैसे उद्धार होगा?

सत्य वचन माता—कहकर महात्मा जी क्षणभर अन्तर्लीन रहकर बोले—उसके उद्धार का काल निकट ही जानो। शकर पार्वती दोनों उसकी खबर ले रहे हैं।

भाभी ने श्रद्धा सहित उनके चरणों के पास की धूलि माथे पर लगा कर कहा—भगवन् उसका कष्ट जल्दी निवारण करिये।

सिर हिलाकर महात्मा जी ने कहा—यही होरहा है। कैलाश पर्वत पर इसीके लिए तैयारी हो रही है। आंखें बन्द करके भी मैं सब कुछ देख सकता हू। सारी दक्षिण दिशा में हलचल मची है।

मैंने अपनी हँसी को भीतर ही दबाकर पूछा—भगवन्, कैलाश तो उत्तर दिशा में है दक्षिण में हलचल मचने का कोई विशेष कारण होगा?

"सत्यवचन भक्त, इसका कोई विशेष ही कारण है। शंकर के दरबार में विशेष कारण बिना कुछ नहीं होता। वही इस सृष्टि का कर्ता, धर्ता और हर्ता है।"

महात्मा जी का भक्त समुदाय वहाँ उपस्थित था। उसने गुरुदेव की इस बात पर 'हर हर महादेव' के गगनभेदी नारे लगाये।

इसके बाद हम लोग चले आये परन्तु समस्त सोहनपुर में यह चर्चा घर घर फैल गई कि साधु-महाराज इतने करामाती हैं कि दूरदूर शहरों से उनके चरणों की धूल लेने आते हैं।

दूसरे दिन से धूनी में चौगुनी लकड़ी और कई गुनी प्रसादी की सामग्री इकट्ठी होने लगी। भक्त-मडली की खूब बन आई। सब लोग खूब छक छक कर प्रसाद पाने और मौज उड़ाने लगे।

घर आकर मैंने भाभी से पूछा—तुम्हारी कौनसी बहिन कष्ट में है?

"मेरी दो चार बहिने तो हैं नहीं। ले-देकर एक ही तो है। जिसे तुम जानते ही हो।"

"विशाखा?" मैंने पूछा।

"हाँ, वही तो"

"उसके ऊपर क्या सकट पड़ा है भला?"

"पूरा ही सकट है भैया।"

"क्या घड़ियाल उसे चैन नहीं लेने देता है?"

"सब सुख होने पर भी उसकी सी दुखी दुनियाँ में शायद ही कोई दूसरी हो। अगर मैं ऐसा जानती तो तुम्हारे ही हाथ पैर छूकर खुशामद कर लेती। रोज रोज का रोना तो नहीं।"

"आखिर ऐसी क्या बात है? उसे सीधा करना हो तो मुझे कह देना।"

"वह तो बेचारा अब खुद ही मौत की घड़ियाँ गिन रहा है।"

"सच, बीमार है?"

"सख्त बीमार है। छ महीने से क्षय तय कर रहा है।"

"तब तो सचमुच ही विशाखा के दुख का अन्त नहीं होगा,—लेकिन भाभी ... "

मैं बहुत कुछ पूछना चाहता था पर पूछ न सका। भाभी ने मेरे आशय को भाँप लिया। ये दोनों तुम्हारा सदेह सही है लल्लाजी। एक दिन भी मेरी बहिन ने सुहाग सुख को सुख नहीं समझ पाया। जब वह डेढ़ महीने रह कर पहली बार लौटी तो मैं उसे पहचान नहीं पाई थी। उसने जीना

की छाती से लग कर वह कितना रोई थी, और कहा था, जीजाजी ब्याह की वेदी पर आप मुझे अपने हाथों बलिदान कर देते तो मैं सुखी होती। कितने कष्ट पाये हैं इन चालिस दिनों में मैंने, मेरा शरीर कहीं से उघार कर देख लो तो मालूम हो जायगा।—उस राक्षस ने मेरी फूल सी बहिन पर दिन में छ छ सात सात बार अत्याचार किया था। उसके हाथी जैसे बल को कैसे सहा होगा उसने ? उसकी जगह कोई सुकुमार लड़की होती तो उसकी लाश ही निकलती। तुमने न जाने किस महूर्त में उसे घड़ियाल नाम दिया था। वह सचमुच ही घड़ियाल निकला। मेरी बहिन के स्वास्थ्य और यौवन को चालिस ही दिन में हड़प गया।"

"तब तुम्हें उसे फिर नहीं भेजना था वहाँ।

"कहाँ भेजा हमने। हम भेजते भी कैसे ? विशाखा तो उसके नाम से काँपती थी। वह किसी तरह लौटकर वहाँ जाने को तैयार न थी।"

"फिर ?"

"फिर, वह जबरदस्ती उसे ले गया। तुम्हारे भैया पर इलजाम लगाया कि मेरी स्त्री को अपने कब्जे में रखना चाहते हैं। कचहरी दरबार सब जगह रुपये लुटा दिये। मेरी बहिन की एक भी नहीं सुनी गई। वह उसके हवाले करदी गई। अन्धे न्यायाधीश ने भी कानून को देखा, सचाई को नहीं। पुरुष को स्त्री पर कानून ने जो अधिकार दे रक्खा है उसीके बल पर वह रोती चीखती मेरी बहिन को गाड़ी में डाल कर ले गया। मुझे तो आशा नहीं रही थी कि फिर कभी मैं उसे जीवित देख पाऊँगी। शायद उसे भी ऐसा ही विश्वास था।"

"फिर।"

"चिट्ठी-पत्री से भी अपने दुख दर्द की कहानी उसे अपनी बहिन तक पहुँचाने की मनाई थी। क्या करती बेचारी। किसी तरह हाथ पैर जोड़कर अपनी दूर की किसी ननद से इतना समाचार कभी कभी मेरे तक पहुँचा देती कि जीजी को मालूम हो जाय उनकी विशाखा जैसे तैसे जिन्दा है।— बस इतने ही आधार को लेकर मैं सतोष करती थी। कभी कभी विचार

"और, आत्मा नहीं? मन नहीं? प्रेम नहीं?"

"नहीं।"

"वे किसके लिए रख लिये हैं?"

"जो उनका प्रेमी है, वे उसीके लिए हैं।"

"अर्थात्?"

"जो हाड़ मास का इच्छुक है उसके लिए हाड़मास है जो प्रेम का भिखारी है उसके लिए प्रेम है।"

इतना कहकर उसने आँखें बंद करलीं। मुझे ऐसा लगा कि उसने मुझे पराजित कर दिया है। उसे किसी का इतना बड़ा बल प्राप्त होगया है कि मेरी गोद में विवश पड़ी हुई भी वह मुझसे जरा भी भयभीत नहीं है। कहां तो मेरी आँखों के इशारे पर इमली के पत्ते की तरह थरथर काँपती थी, कहा अपलक स्थिर भाव से चुपचाप लेटी है।

मैंने कुछ कठोर होकर पूछा—ब्याह से पहले ही प्रेम का सौदा किस प्यार से कर चुकी हो?

"जो उसकी कीमत जानता है।"

"वह कौन है?"

इसका उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मैंने घबराकर पूछा—"वह कहाँ रहता है?"

उसने उँगली से अपने हृदय की ओर इशारा करके बताया—"यहा।"

मैं क्रोध के आवेश से लाल होउठा। मैंने उसे गोद से नीचे शय्या पर पटक दिया और कहा—जानती है, मैं तेरे हृदय को चीरकर अभी उसे वहा से निकाल लूँगा।

"केवल शरीर को चाहनेवाले से यह सम्भव नहीं। छोटी-छोटी काट डालने पर भी तो तुम उसे नहीं हटा सकोगे। उठो, बैठे क्या हो? देखो न फाड़कर इस शरीर को।"

मैंने देखा, स्थिर और दृढ़ उसकी वाणी में पूर्ण विश्वास भरा हुआ है और मैं जिस आधार पर खड़ा हूँ वह भीतर से खोखला है। वह एक एकहा

भी नहीं सह सकता। उसकी जड़ें कांप रही हैं।

मेरा सिर चक्कर खाने लगा। मैं उसे वहीं पड़ी छोड़कर दूसरे कमरे में चला गया। सारी रात मैं व्याकुल की भांति तड़फड़ाता रहा। दूसरे दिन भी मेरी दशा वैसी ही अस्तव्यस्त रही। मैं नहीं जानता था कि मेरे इतने सतर्क रहने पर भी कौन मेरे अन्तःपुर में प्रविष्ट होगया? किसने पीछे से सेंध लगाकर मेरे प्राप्य पर अनायास अधिकार कर लिया?

मैं हैरान था, मेरा क्रोध और मेरा बल कहां चले गये? वज्रदंश की भांति मेरी स्त्री के शब्द अब भी मेरे कानों में गूँज रहे थे। वह मुझे प्रेम नहीं करती। प्रेम उसने दूसरे को बेच दिया है। मैं, शरीर का भूखा, चाहूँ तो उसके शरीर को खा सकता हूं।

मैंने बहुत छानबीन की पर कोई समाधान न मिला। मेरा संशय बढ़ता और उलझता गया किन्तु उसका कोई आधार हाथ न लगा।

मैंने उसे खुला छोड़ रक्खा। जहां तहां जाने के लिए उसे स्वतंत्र कर दिया। मैं केवल उसके ऊपर नजर भर रखता था परन्तु उसमें कोई ऐसी बात मैंने नहीं देखी जिससे उसके कथन की सत्यता प्रमाणित हो। कभी कभी अचानक उसके कमरे में प्रवेश करके मैंने यह जानने की चेष्टा की कि वह क्या करती है? परन्तु वह जैसे बिल्कुल ही बेखबर हो। मेरी ओर देखे बिना ही वह अपने घरेलू कामों में उलझी रहती। इन फुर्सत के दिनों में वह एक प्रकार से सन्तोष की सांस सी ले रही थी।

धीरे धीरे मेरे ऊपर फिर वासना का प्रकोप होने लगा। क्षोभ और दुश्चिन्ता को दबाकर वह फिर उमड़ती आरही थी और लगता था कि संशय की बाधा को ठेलकर मैं फिर उस रूप राशि के रसास्वादन में डूब जाऊंगा, पर कर न पाता। एक अडिग चट्टान हमारे मार्ग में गड़ गई थी। जब कभी मैं उसे पार करके उस ओर जाने को बढ़ता वह मुझे रोक देती। वारुणी के साथ मेरे संसर्ग का यही कारण हुआ। मैंने उससे स्नेह लगाया। विशाखा को भुलाने के लिए वारुणी का मैं दास होगया। मेरे घर में उसी दिन से लाल अंगूरी पेय की खाली और भरी बोतलें जहां-तहां

घड़ियाल का जो स्वार्थमय रूप मैंने देख सुन रक्खा था और जिसके कारण घृणा का एक आवरण उसके आगे सदा बना रहता था वह एक नई भावना में बदल गया। जिस आदमी में सदा राक्षस ने निवास किया है वह भी क्षण में किसी कारणवश बदल कर पुण्यात्मा बन सकता है।

भाभी की कहानी अभी चुकी नहीं थी। वे अपने गोद के बालक को दूध पिलाते हुए बोलीं—तुम्हारे भैया ने विशाखा से बात की। वह किसी तरह अपने स्वामी की सपत्ति को स्वीकार करने को तैयार नहीं। वह कहती है, यह धन मेरे किस काम का है? मैं इसे लेकर क्या करूँगी? अपने हाथों से वे उसे गरीबों मे बाट जायें, इसीमें मैं प्रसन्न होऊँगी। इतने अनर्थों की जड यह माया है यह जानते हुए भी मेरे गले मे आप जीजाजी उसे क्यों डलवाते हैं?

तुम्हारे भैया की छुट्टी खत्म होरही थी। वे लौटने लगे तो विशाखा के पति ने उनसे हाथ जोड़कर कहा—आप अवस्था मे छोटे होकर भी सबध मे बड़े हैं। एक भिक्षा मैं आपसे चलते समय माँगूँगा। दे सको तो दे देना। वह यह कि विशाखा की उम्र अभी कुछ भी नहीं है। यदि वह मान सके तो किसी समवयस्क के साथ उसे ब्याह देना और मेरी जायदाद उसे दहेज में दे देना। ऐसा सभव न हो, वह न माने तो कोई बच्चा गोद ले ले। यदि ऐसा भी न करे तो अपने हाथों से वह जैसे चाहे इसे गरीबों को दे दे। इसी आशय का उत्तराधिकार पत्र मैंने लिख दिया है। मेरे बाद आप उसके अभिभावक रहेंगे और मेरी अतिम इच्छा को पूरा करने में कुछ उठा न रखेंगे।

कुछ दिन बाद विशाखा ने अपने जीजा को पत्र भेजा—जीजा जी, मेरे पति ने सारी जायदाद और सपत्ति मेरे नाम कर दी है। आज से मैं उसकी एक मात्र स्वामिनी हूँ। मेरे कधो पर दायित्व और कर्त्तव्य का नया बोझ आ पड़ा है। देखूँ, मैं उसे उठा सकूँगी या नहीं? उनकी इच्छा के आगे मेरे लिए झुकने के सिवाय और कोई उपाय नहीं था।

महात्माजी की वाणी भला मिथ्या कैसे हो सकती थी? उन्होंने कहा

था—विशाखा का संकट शीघ्र टलेगा। शंकर और पार्वती दोनों उसकी फिक्र ले रहे हैं।

प्रातःकाल एक शोक समाचार युक्त दस्ती पत्र लेकर एक सवार उपस्थित हो गया है। विशाखा पति रूपी संकट से मुक्ति पा गई है। भाभी कुछ शिष्टाचार का पालन करके रो रही हैं। भैया को सवार के साथ ही जाना है। उन्होंने मुझसे कहा—रमेश, तुम भी चलो न।

मेरा जी मोहनपुर में इन दिनों लग भी नहीं रहा था। मैं तैयार हो गया। जिस विशाखा को सुहाग की साड़ी में लिपटे देखा था उसे आज वैराग्य के तट पर खड़ी देखने जा रहा हूं। इतनी जल्दी इतना परिवर्तन हो जायगा। इसकी किसने कल्पना की होगी ?

दूर दूर से सुनकर उस विपुल सम्पत्ति का अन्दाज नहीं हो सकता था जिसकी विशाखा आज एक मात्र अधीश्वरी है। उसका वैभव देखकर मैं तो हैरान रह गया। अंतःपुर में प्रविष्ट होकर हम दोनों भाई जब विशाखा के कक्ष में पहुँचे तो वह एक साधारण से आसन पर मूर्तिमती करुणा की भांति बैठी थी। हम दोनों भाइयों को एक साथ उपस्थित देखकर वह कुछ देर के लिए चंचल हो उठी। आवेग निकल जाने पर शान्त और सुस्थिर हुई तो बोली—पिछले चार पांच दिन उनके इतनी शांति से बीते कि मैं एक तरह से बेफिक्र होगई थी। अचानक हालत ऐसी पलटी की फिर कोई उपचार काम नहीं आ सका।

परिचर्या और चिकित्सा में किसी तरह की कसर नहीं रही थी। संतोषप्रद उपचार कर लेने के बाद भी जो होना था वही हुआ। इस कारण विशाखा की आंखों से जहां आंसू थे वहां एक प्रकार का आत्मसंतोष भी था। यदि उसकी सेवा सुश्रूषा रोगी की रक्षा नहीं कर सकी तो फिर कोई और कर भी नहीं सकता था।

भैया ने व्यथित कंठ से कहा—मरना जीना तो शरीर के साथ लगा ही है। तुमने उनकी सेवा चाकरी में त्रुटि नहीं की। इस विषय में इस समय उनकी आत्मा सुख और संतोष का अनुभव कर रही होगी। वही

बात है।

"अपने हाथ-पैर से जो हो सकता था वही थोड़ा-सा मैंने किया। विशेष कुछ उन्होंने करने भी नहीं दिया। बहुत सी बातें मन की मन में ही रह गईं।"

वह इस प्रकार आकुलता व्यक्त कर रही थी कि जैसे अपने स्वर्गीय पति को ही इस संसार में उसने सर्वस्व समझा हो। कभी उसके प्रति विरक्ति या विद्रोह का भाव ही उसके जी में न आया हो। मैं चुपचाप बैठा सुन रहा था। अभी तक मेरे साथ उसकी एक भी बात न हुई थी। मेरे जी में न जाने क्यों ऐसा आ रहा था कि मैं पूछूं कि तुम्हें अपने स्वामी के प्रति सचमुच ऐसा अनन्य अनुराग था जैसा तुम प्रदर्शित करती हो? परन्तु यह प्रश्न इतना भोंडा होता कि मैं उसे अपने मुँह से निकालने की हिम्मत न कर सका।

विशाखा बोली—जीजाजी, आपको इस समय बुला भेजने का एक विशेष कारण था। आपने अच्छा किया जो रमेश बाबू को साथ ले आये। मैंने इन्हें ही मनोनीत कर रक्खा था। यदि आप इन्हें साथ न लाते तो शायद मुझे दुबारा किसी को भेजना पड़ता।

इतनी बात कहकर उसने दासी को इशारा किया। वह उसके आशय को समझ गई और भीतर से एक दस्तावेज ले आई। विशाखा ने कहा—यह उनका विल है। इसमें उनका अंतिम आदेश अंकित है। तीस चालीस लाख की सम्पत्ति वे मेरे नाम कर गये हैं। मैंने बहुत कहा था कि यह मत करो। मेरी जैसी नारी को इतने धन की क्या आवश्यकता है? लेकिन उन्होंने नहीं माना। मैंने भी सोचा, इनकी इच्छा पूरी हो लेने दो।

भैया ने कहा—जब कुटुम्ब में उनका कोई वारिस नहीं था तब सिवा तुम्हारे नाम कर जाने के और कोई रास्ता भी तो नहीं था। वे न भी लिख जाते तो तुम्हारे सिवा कौन मालिक होता?

विशाखा—जो भी हो। अब मेरे सामने सवाल यह है कि मैं इसका क्या करूँ? कैसे करूँ?

भैया—क्या करोगी, यह तो पीछे देखा जायगा। अभी तुम्हारा मन सुस्थिर नहीं है। अस्थिर और दुखी मन से कोई बात सोची नहीं जा सकती। मेरे साथ भी इस सम्बन्ध में उनसे कुछ बातें हुई थीं। वे समय आने पर मैं बताऊँगा। अच्छी तरह हर एक पहलू पर विचार करने के बाद तुम्हारा जो निर्णय होगा, उसी के अनुसार किया जायगा।

विशाखा—वे सब बातें थोडी बहुत मुझे भी मालूम हैं। कुछेक उनमें से ऐसी हैं जो अव्यवहार्य हैं। उनकी आखिरी बात ही ठीक है कि मैं जैसे चाहूँ इस संपत्ति का उपयोग करने के लिए स्वतंत्र हूँ। मैंने इसीके अनुसार सोच विचारकर निश्चय कर लिया है कि सार्वजनिक हित के कामों में, विशेषत महिला जाति के कल्याण हेतु, इसका एक ट्रस्ट कायम कर दूँ। इसके प्रमुख ट्रस्टी के लिए मैंने रमेश बाबू को मनोनीत किया है।

यह कहकर उसने मेरी ओर देखा। फिर कुछ ठहर कर बोली—जीजाजी आपको इस झंझट मे मैंने जान बूझकर नहीं डाला। आपके ऊपर अनेक घरेलू जिम्मेवारियाँ हैं जबकि रमेश बाबू स्वतन्त्र हैं। ये इस कार्य को करने की रुचि और बुद्धि दोनों रखते हैं।

अभी तक मैं मौन था। अब मेरी बोलने की बारी आई। मैंने कहा—इतनी जिन्दगी में कभी कोई छोटा सा काम भी मुझसे पार पड़ते तुमने देखा है? सदा मटरगश्ती में दिन काटनेवाले का इतने बड़े दायित्व के काम के लिए चुनाव करके तुमने अपनी बुद्धि का परिचय दे दिया है।

वह बोली—मुझे अपनी बुद्धि पर भरोसा है।

मैंने कहा—ये तो बच्चों की सी जिद है। बहते पानी को झीने कपड़े में बाँधने की चेष्टा न बुद्धिमानी का चिह्न है न उससे कोई फल प्राप्त होने की आशा है।

भैया ने बीच मे पड़कर कहा—तुम्हारा विचार हमने जान लिया है। विस्तार की बातों पर अभी झगड़ने का अवसर नहीं है। अच्छी तरह सोच विचार लेने से कोई हानि नहीं होती। जल्दी में कोई निर्णय कर डालना कभी कभी पछताने का कारण बन जाता है। इसलिए इस बात को अभी

यहीं रहने दो।

विशाखा—जीजाजी, आपकी आज्ञा मेरे लिए सदा मान्य है। मैं हठ नहीं करूँगी। ख्याल मेरा यही था कि शुभ कार्य जितनी जल्दी आरभ हो जाता अच्छा होता। उनका श्राद्ध ब्राह्मणों को जिमाकर करने की अपेक्षा मैं उनकी स्मृति में ट्रस्ट कायम करके करना ज्यादा ठीक समझती हू।

भैया—उसके लिए अभी कई दिन का समय है। रास्ते के श्रम से मैं इस समय इतना श्रान्त हू कि थोड़ी देर विश्राम किये बिना किसी काम में जी नहीं लगता।

अत. विशाखा ने हमें छुट्टी दे दी। उसकी नौकरानी हम दोनों भाइयों को उन कमरों में ले गई जहाँ हमारे ठहरने के लिए प्रबध किया जा चुका था।

सद्य वैधव्य को प्राप्त हुई विशाखा इन दिनों अपने कक्ष से बाहर कहीं आती जाती नहीं तो भी सारे मकान मे पूर्ण अनुशासन है। नौकर चाकर जिनकी सख्या दर्जनों है अनुशासन की डोर से इस प्रकार बधे हैं कि किसी काम में कहीं अव्यवस्था का नाम नहीं। रानीजी के नाम से सब उसे सबोधन करते हैं और श्रद्धा व आदर के साथ उसकी आज्ञाओं का पालन होता है।

हम दोनो भाई विशाखा के निकट सबधी हैं और वह हम लोगों को मानती है नौकरों को मालूम है और रुकिया जो विशाखा की मुख्य दासी है यह भी जानती है कि मैं उसकी स्वामिनी का गुरु भी रहा हूँ। अपनी मालकिन की विद्याबुद्धि पर उसे अनत श्रद्धा है। उसका गुरु समझकर वह मुझे तो विद्या का स्रोत ही मान बैठी है। फिर मैं उसे रुकिया न कहकर रुक्मिणी बोल कर पुकारता हूँ जिससे मेरे प्रति उसके स्नेह का अन्त नहीं है। उसने बिना पूछे ही मेरे कमरे के फर्श पर बैठकर मुझे बताया कि उसका पति जो उसे जी से प्यार करता था, उसे रुक्मिणी कहकर ही पुकारता था। आज उसको मरे सात वर्ष बीत गये हैं तबसे किसी ने उस प्यार के सबोधन से उसे नहीं बुलाया। उसकी रानीजी ने भी जान या अनजान में रुक्मिणी

कहकर पुकारने का स्नेह नहीं दरशाया। मेरी विद्या-बुद्धि को वह यदि उनकी बुद्धि से बड़ी माने तो कोई अनुचित नहीं।

इन दिनों भैया विशाखा के स्वर्गस्थ स्वामी के लिए किये जानेवाले श्राद्ध आदि की व्यवस्था में लगे रहते हैं। दिन में अनेकबार जाकर उन्हें अपनी विधवा साली से परामर्श करना होता है तब मैं अकेला पड़ा पड़ा घबरा उठता हूं। यद्यपि यहाँ परिचारकों की कमी नहीं है परन्तु उनमें से मैं किसी की सेवा की आवश्यकता नहीं समझता। केवल रुक्मिणी के स्नेह के आगे मैंने भी हार मान ली है। वह घूम फिर कर मेरे कमरे में आ पहुँचती है और कोई न कोई ऐसा अनुरोध कर बैठती है जो अनिच्छा रहते भी मुझे मानना पड़ता है। मैं नहीं समझता विशाखा को मेरे खाने पीने की इतनी ही चिन्ता है जितनी वह बार बार आकर प्रदर्शित करती है। विशाखा को इस समय यही एक काम तो नहीं है जो वह घड़ी-घड़ी पर मेरी खबर लेने के लिए दासी भेजती रहे। अवश्य ही इसमें बहुत कुछ रुक्मिणी के अपने मन की उपज है।

दो दिन बाद ब्रह्मभोज होगा। भैया को सवेरे से शाम तक फुर्सत नहीं है। रुक्मिणी की कृपा से मुझे अकेलेपन का अनुभव नहीं होने पाता। वह आकर बैठ जाती और अपनी मालकिन की उदारता की कहानियाँ सुनाने लगती। कोई विशेष सरदी का मौसम न होने पर भी वह एक रंगीन शाल ओढ़कर आई है यह बताने के लिए कि काश्मीर यात्रा के समय मालिक यह शाल लाये थे। एक बार भी अपने शरीर पर न रख विशाखा ने वह उसे दे दिया है। मँगतों और भिखारियों की भीड़ सुबह शाम ड्योढ़ी पर इकट्ठी होती है। उसे नियम से अन्न वस्त्र दिये जाने की रानीजी ने ही व्यवस्था की है। जमींदारी की प्रजा को कर-मुक्त कर देना, असमर्थ किरायेदारों को किराये में छूट दे देना, कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के परिवारों के दुख सुख की खबर रखना और उन्हें गुप्त सहायताएँ पहुंचाना यही उनके घरेलू धंधे हैं। पहले जैसा भी रहा हो इधर कितने ही दिनों से मालिक में भी ऐसा परिवर्तन होगया था कि वे

इन कामो के लिए मालकिन को रोकते नहीं थे, बल्कि उन्हें उत्साहित करते थे। वे इसके लिए अपनी जेब-खर्च का बहुत सा रुपया इन्हीं कामो के लिए रानीजी को दे देते थे।

अब तक मैं सिर्फ रुक्मिणी की बातो का मौन श्रोता था। बहुत घनिष्टता हो जाने पर मैं बीच बीच में उससे प्रश्न भी करने लगा। मैंने देखा कि उसे विशाखा के वैवाहिक जीवन के आरम्भ से अबतक की सब बातो का ज्ञान है। उसने बताया कि पहले स्वामी की जिद से रानीजी ने बड़े दुख उठाये हैं। उस समय वे निरी बच्ची थीं। हम लोग उन्हें समझाते समझाते हार जाती थीं कि नारी का तन मन पुरुष के अत्याचार सहने के लिए ही होता है। इसी में उसकी सार्थकता है। तब उन्हें हमारी बातें पसन्द न आती थीं। जब वे उन्हें समझने लायक हुईं तब मालिक का शरीर ही बिगड़ गया। रानीजी ने जैसा घर, जैसा रूप और जैसा स्वभाव पाया है वैसा भाग्य परमात्मा ने उन्हें न दिया। कभी अपने रूप गुण के अनुरूप सुख और आनन्द मनाने का उन्हें अवसर नहीं मिल पाया। मालिक अंत समय अकसर रानीजी से कहा करते थे कि मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है। अपने घोरतर अपराधी से बदला न लेकर तुम उस पर प्यार के फूल बरसाती हो, यह तुम्हारा कैसा उल्टा स्वभाव है? यह शिक्षा तुम्हें किसने दी है?

इसका उत्तर पता है रानीजी क्या देती थीं? वे कहती थीं—यह शिक्षा मेरे गुरुदेव ने दी है।

इस पर मालिक कहते, तुम्हारे गुरुदेव बड़े ज्ञानी हैं। यही शिक्षा अगर दुनियाँ में ज्यादातर लोगों को मिल जाय तो जानती हो क्या हो?

रानीजी हँसकर उत्तर देतीं, मैं उसे जानना नहीं चाहती। मैं उसे जानकर अपने गुरु की आज्ञा के प्रति अपने जी मे अश्रद्धा के अंकुर नहीं जमने देना चाहती।

मालिक कहते, तुम अपने गुरुदेव को, जिन पर तुम्हें इतनी आस्था है, कभी यहाँ बुलाओगी भी?

रह जाता। फिर आप पर तो बहुत बड़ी जिम्मेवरी है।

मैं—अच्छी बात है, फिर भी मुझे कुछ समय तो चाहिए ही। मुझे स्थिर हो लेने दो। मैं अपने आपको कर्त्तव्य के अनुरूप ढाल सकूँगा यह तो देखना ही होगा।

विशाखा—अभी दो दिन और बाकी हैं। किस तरह क्या करना होगा यह पूरी तरह विचारना है ही। एक बात तो निश्चित है आज से तीसरे दिन विशाखा इस घर में न होगी, न उसका कोई अधिकार इस सपत्ति पर होगा। इसका सुप्रबंध और सदुपयोग कैसे होगा, यह सब आपके सोचने की बात होगी।

मैं—इतनी जल्दी इतना बड़ा निश्चय नहीं हो सकता। तुम्हारे घर छोड़ देने की बात तो और भी मेरी समझ में नहीं आती।

घर छोड़ देने से मेरा यह मतलब नहीं है कि मैं विधवा बंगालिन की तरह वृन्दावन या काशी वास करने चली जाऊँगी। यह तब करती जब जन्मान्तर में किसी सुख की आकांक्षा अपने हृदय में लिए होती। अपने गुरुदेव के उपदेश को मैंने जन्मजन्मान्तर के लिए स्वीकार किया है। मैं जब जिस रूप में रहूँगी वहीं उस उपदेश की छाया मेरे साथ रहेगी। अपने सुख की कामना से कोई काम नहीं करूँगी। इसलिए मैं यहीं रहूँगी। यहाँ से थोड़ी ही दूर पर अपने रहने के लिए मैंने छोटा सा मकान ठीक कर लिया है। वहाँ रहते हुए मेरे से जो होगा यहाँ के काम में सहायता ही दूँगी। —बस मैं इतना ही कहने के लिये यहाँ आई थी। अब जा रही हूँ। जब यहाँ जी न लगे तब वहीं चले आना। इतना कहकर वह जाने लगी परन्तु थोड़ी दूर जाकर लौट आई और पूछा—तुम्हारे पान और सिगरेट का ठीक प्रबन्ध है या नहीं यह पूछना तो मैं भूल ही गई थी।

बैठने के उपयुक्त पात्र नहीं हो। वहाँ जाते समय मैं कौन से वस्त्र पहनती हूँ यह मैं तुम्हें न बता सकूँगी। आज इतने वर्ष बाद तुम्हें अपने घर लाकर भी मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मैं गर्व और उल्लास के साथ तुम्हें दिखा सकूँ। यही मुझे दुख है।"—कहते कहते उसकी कमलायत आँखें भीगी-भीगी सी हो गईं।

मैंने कहा—तो खड़ी क्यों हो भाभी? बैठ जाओ न।

मैं स्वयं चटाई पर एक ओर खिसक कर बैठ गया। कल्याणी भी मेरे कहने से मेरे पास ही चटाई के दूसरे छोर पर निस्संकोच बैठ गई। बोली—मैं क्यों इस दुनियाँ मे आ पडी, इसका कुछ कुछ अनुमान तो तुम कर ही सकते होगे। मैं रात दिन के अत्याचारों से तंग थी ही। यह तो तुम देख आये थे। एक साहसी आदमी ने, जिसे तुम नहीं जानते, मुझे वहाँ से निकालकर इस पथ पर लाकर खड़ा कर दिया। यहाँ जैसी सफलता मैंने पाई है वह तुम्हारी आँखों के सामने है लेकिन जो चीज़ इस प्राप्ति में खो गई है उसके लिए जब जब क्षोभ हो आता है तब तब मेरा व्याकुल हो उठना स्वाभाविक है। इसे तुम्हारे सामने कहने की आवश्यकता मैं नहीं समझती।—बोलो, ऐसी दशा में उस समय टैक्सी में तुम्हारे पास बैठे बैठे मेरा तुम्हें कायर कहकर पुकारना क्षम्य था या नहीं? यदि उस दिन हाँ कह देते और थोड़ा साहस दिखा सकते।

"तब भी वही बात होती भाभी। मैं भी तो आदमी हूँ। मैं भी तुम्हें ले जाकर किसी ऐसे ही चौराहे पर छोड़ देता।"

"नहीं छोड़ देते। तुम नहीं छोड़ सकते थे, तुम में वह साहस नहीं है। तब शायद मैं गलती भी कर जाती। अब इतने दिन के अनुभव के बाद मैं एक बार देखकर ही आदमी परख कर लेती हूं। अपने आज के अनुभव से मैं कह रही हूँ कि तुम्हारे साथ होने से मुझे कुछ खोना नहीं पड़ता।"

"यह मिथ्या विचार है तुम्हारा भाभी। मेरा तो अनुभव है कि पुरुष सभी भेड़िये हैं। नारी इनका स्वादिष्ट भोजन है। अपने भोजन के प्रति

कोई भी पुरुष दयालु नहीं होता। अवसर पाते ही वह उसे खा जाता है।"

"यह तुम्हारी बात बहुत कुछ सत्य है उसी तरह जैसे तुमने उस दिन कहा था कि घर से बाहर निकले पीछे हिन्दू नारी के लिए दुनियाँ में कहीं भी स्थान नहीं है। तुम्हारी वह बात अक्सर मेरे कानों में गूँजती है और मैं विचार करती हूँ। मैंने इतना कमाया है—इतने सुख-साधन इकट्ठे किये हैं। रात दिन आनन्द विलास की सामग्रियों में डूबी रहती हूँ। शायद जन्मजन्मान्तर में भी अपने घर में मुझे इन सुखों का कभी दर्शन न होता तो भी हृदय तुम्हारी उस बात के फलितार्थ को मानने लिए मचला पड़ता है। मैं इस दुनियाँ में कहीं भी अपने लिए स्थान नहीं पाती। कोई भी धर्म, कोई भी मत, इतना उदार नहीं दिखता जो मेरा खोया स्वर्ग मुझे वापस दिला सके। वे अपने अन्दर लेने को लालायित हो सकते हैं परन्तु वे वह सब कहाँ से लायँगे जो हिन्दू नारी का एक मात्र काम्य है, जिसके गौरव से उसका मस्तक उठा रहता है। उस काँटों की सेज में कोई ऐसा अपूर्व सुख था जो इस फूल-शैय्या मे लेटे लेटे भी मुझे लुभा लेता है।"

"धर्म और सम्प्रदाय तो मगरमच्छों की दाढ़ है। वे देखने में ही सुन्दर और चमकीले लगते हैं। अन्तत वे भी उनका उदर भरने के औजार हैं।"

"इन सब पर से मेरी आस्था पहले ही उठ चुकी है। कितने तिलक और छापाधारियों को लुकछिप कर यहाँ आते नित्य देखती हूँ। वह सारा पाखंड उनका दुनियाँ को धोखे में डालने के लिए होता है। भीतर से वे भेड़ियों की तरह खूँखार हैं। तिलक और छापा, धर्म और ध्यान ने उनके हृदय को थोड़ा भी नहीं बदला है।"

"इतना सब जानते हुए भी तुमने यह आडंबर क्यों रच रखा है?" मैंने उस कमरे की सामग्री पर नजर डालते हुए पूछा।

"यह मैं खुद नहीं जानती। यह सब अपने आप ही होगया यह भी नहीं कह सकती। मैंने ही इसका निर्माण किया है। नाचरंग के वातावरण

से बाहर होकर कभी कभी कहीं अकेले में सांस लेने की इच्छा ने लंका में इस देवस्थान की सृष्टि की है। यहां आकर अपने को बन्द कर लेने पर मैं उस दुनिया से बहुत दूर चली आती हूँ। यहीं मुझे अपने जीवन की व्यर्थता पर विचार करने का अवसर मिलता है। लेकिन इससे कोई सुफल हुआ हो उसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव नहीं।" इतना कहकर वह चुप हो गई। मेरे पास भी कुछ खास कहने को नहीं था। मैं भी चुपचाप बैठा किसी नये विषय को बातचीत का आधार बनाने की सोच रहा था।

इतने में वह बोली—तुम्हें यहां ले आई हूं तो सारा घर ही क्यों न दिखा दूँ। चलो, आओ। फिर तुम यहां क्यों आने लगे? एकबार देख तो जाओ कि तुम्हारी भाभी तुमसे कितनी भिन्न अवस्था में जी रही है।

मैंने कहा—अभी तो मैं कई दिनों तक यहां हूँ।

"उससे क्या होता है? इस घर में फिर भी क्या तुम कदम रखने को तैयार होगे?"

"जरूर, जब तक यहां रहना पड़ेगा तब तक क्या मैं यहां आये बिना रह सकूंगा?"

"यह सब देख सुनकर भी तुम यहां आना पसन्द करोगे रमेशबाबू?"

"मुझे तो कोई डर नहीं। फिर मैं आऊँगा अपनी भाभी के पास। हां यदि तुम्हें कोई आपत्ति हो तो न आऊँ?"

"मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? परन्तु तुम्हारी भाभी अब है कहां, क्या अब भी तुम उसे पाते हो? सच कहो रमेशबाबू, क्या अब भी तुम्हें वह यहां दिखाई देती है?" दबे हुए अंगारे के ऊपर से राख जैसे हटा दी जाय इस प्रकार उसका चेहरा एकबार दमक उठा।

मैंने कहा—तुम्हें अचानक पाकर आज मैंने अपनी कितनी बड़ी चीज को खो दिया है, यही पूछती हो न? बरसों से प्रेम और पूजा की एक तस्वीर मेरी स्मृति में जड़ी थी आज उसमें निश्चय ही बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। उसके लिए मेरे जी में कैसा ज्वार उठ रहा होगा, इसकी कल्पना तुम कर ही रही हो। तो भी, उसमें मैंने अपनी भाभी को

खोज लिया है, उसीके पास मुझे आना होगा। जब तक यहां रहूँगा आऊंगा, जब बुलाओगी तब आऊंगा।

कल्याणी जहां बैठी थी वहीं उसने जमीन पर माथा टेक दिया। अपने अंचल से अपनी आंखें पोंछती हुई बोली—रमेशबाबू, क्या तुम अपने इन चरणों की थोड़ी भी धूल नहीं दे सकते? जिन पुरुषों को मैंने देखा है उनसे तुम कितने भिन्न हो? दुनियाँ ने जिन्हें वर्जित प्रदेश मान रखा है वहीं तुम अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाते हो!

'धूल से कुछ नहीं होता है भाभी। मैं तो समूचा ही तुम्हारा हूँ। मौका आये तो मुझे याद कर लेना।—अब कल मुलाकात होगी।" कहकर मैं उठ खड़ा हुआ।

कल्याणी भी खड़ी होगई, बोली—देखो, आना जरूर। मैं प्रतीक्षा करूँगी।

अवश्य आऊँगा। विश्वास रक्खो—कहता मैं घर से बाहर निकल आया।

घर पर रुक्मिणी पहले से ही मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। कई देर तक मेरे न पहुचने से दीवार के सहारे झुककर वह झपक गई थी। मेरी पैंहल से उसकी आंखें खुल गईं तो बोली—रानीजी ने आपको याद किया है। मैं कितनी देर से राह देख रही हूँ।

मैंने कहा—चलो, मैं चल रहा हूँ।

मुझे देखते ही विशाखा ने पूछा—आज कहीं चले गये थे?

मैं—हाँ, आज स्वर्ग और नरक एक ही जगह देख कर आया हूँ। वह प्रश्न सूचक मुद्रा से मेरी ओर निहारने लगी।

"आदमी की जीवन नौका कब कहाँ से कहाँ जा लगे इसका कुछ ठीक नहीं।" इन शब्दों से आरम्भ करके मैंने कल्याणी के संबंध की सारी कथा उसे सुना दी।

सब कुछ सुनकर वह कुछ देर के लिए मौन होगई, फिर बोली—बड़े दुख की बात है, लेकिन तुम्हारे फिर वहाँ जाने की आवश्यकता है क्या?

उसके इस सरल प्रश्न में विस्मय भरा था, पर उसके प्रश्न की स्पष्टता

से ही प्रकट होगया।

मैंने कहा—मेरे लिए कोई भय की बात नहीं है वहाँ।

"भय है यह मैं नहीं कहती, लेकिन यहाँ इन दिनों बहुत से काम जो हैं। उन सभी को निबटाना है। जीजाजी अकेले क्या क्या कर लेंगे?"

मुझे लगा कि किसी आशंका ने उसके मनमें इन नये कामों की सृष्टि कर दी है। इससे पहले तो मुझे एक भी काम नहीं सौंपा था। आज ही उन सबको मेरे द्वारा निबटाये जाने की जरूरत पड़ गई। मैंने कहा—ठीक है।

इस बीच भैया भी आ पहुँचे और कामकाज की अनेक बातें हुईं। विशाखा का गृहत्याग भैया को जँच नहीं रहा था परन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ थी। ट्रस्ट की बात पक्की-सी हो चुकी है। उसके ट्रस्टी मैं, भैया और विशाखा तीनों ही रहेंगे। कार्यवाहक ट्रस्टी मेरे रक्खे जाने के लिए विशाखा जोर दे रही है। मैं नहीं जानता कहाँ तक मैं इसका निर्वाह कर सकूँगा। अवश्य ही मेरे लिए यह एक भारी बोझा है।

रात को ग्यारह बजे आकर मैं अपने बिस्तर पर लेट पाया हूं। अगले दो दिन के लिए विशाखा ने मुझे इतने काम सौंप दिये हैं कि नौकर चाकरों की मदद से भी शायद ही वे पूरे पड़ें। कल्याणी के यहाँ मैं न जा सकूं इसी की पेशबन्दी मानो की गई है, ऐसा मुझे लग रहा है। परन्तु क्यों, मेरे प्रति उसे क्या लोभ है? मेरे साथ ब्याह करने की अपेक्षा जो गले में फाँसी लगाकर मर जाने को अच्छा समझती थी, उसे मेरे प्रति किसी तरह का लोभ तो हो ही कैसे सकता है? तब फिर यह ईर्षा का प्रश्न [illegible] है? मेरे पास इसका कोई सधान नहीं है। त्याग और तपस्या से उज्ज्वल उसके देदीप्यमान चरित्र को लेकर मैं ऐसी मीमांसा में प्रवृत्त हो सकता हूँ, यह मेरे जैसे उद्‌भ्रान्त मनुष्य के द्वारा ही सम्भव है। अपने स्वभाव से आदमी लाचार होता है। मैं भी अपने स्वभाव से लाचार हूँ। नींद आँखों में छू नहीं गई है। कमरे की छत जो अंदर के आकाश को ढँके है उस पर मेरी विचारमाला अंकित होरही और मिट रही है उसी तरह जैसे [illegible] में बदलाएँ घटीं और फिर अतीत के गर्भ में विलीन हो गई हैं। मैं [illegible]

इस आधीरात में ? इस समय किसी और के घर तो जाया नहीं जा सकता है। कल्याणी के घर जा सकता हूँ, उसका घर तो हर किसी के लिए हर समय खुला है। तो क्या मैं वहीं जा रहा हूँ ? जाऊँ तो कोई हर्ज भी नहीं है। भाभी कल्याणी के यहाँ जाने से मेरे लिए सकोच की कौन सी बात है ? रानीजी के प्रासाद को छोड़कर, उनके आदेश की अवहेलना करके, मैं भाभी के घर जा रहा हूँ।

मुझे रास्ते में कोई मिला या नहीं मैं नहीं कह सकता। मेरा चित रास्ते भर ठिकाने नहीं था। मैं विचारलीन कल्याणी के द्वार पर जा खड़ा हुआ। एक दो खटके में ही ऊपर का दरवाजा खुला। कौन है ?—कल्याणी ने आवाज दी।

"मैं हूँ भाभी।"

"रमेश बाबू, तुम इस समय। अच्छा, आई।"

क्षण भर में आकर उसने मुझे घर के भीतर ले लिया। उस समय सारी दुनियाँ सोई पड़ी थी। कल्याणी ने कहा—बत्ती जल्दी में नहीं जला सकी। तुम चले तो आओगे या सहारा दूँ ?

"सहारा दो भाभी।"

"आओ"—कहकर उसने हाथ बढ़ा दिया। उसे अच्छी तरह मजबूती से थाम कर मैं ऊपर चढ़ गया।

मुझे ऊपर लेजाकर बोली—जानते हो, इस समय दो बजे हैं। सब कोई सोये पड़े हैं। तुम्हें मेरे कमरे में ही चलना होगा।

"वहीं चलूँगा। यहाँ से भाग जाने के लिये थोड़े ही आया हूँ।"

"मैं भी तुम्हें निकाल नहीं रही हूँ।"

कल्याणी मुझे अपने शयनागार में ले गई। कहा—यहाँ, यह एक ही पलँग है। इसकी चादर और ओढ़ना मैं बदल देती हूँ।

मैंने पूछा—और तुम ?

मेरी चिन्ता मत करो।"

"पर तुम जाओगी कहाँ ?

'यह तुम जानो।"

"मर जाऊँ तो भी कभी न कर सकूँ। मेरे पैर क्या तुम्हारे सामने उठें? मेरा गला फट न जाय?"

"यह क्यो? अपनो को ही वंचित रखने से लाभ?"

"मैं नहीं जानती। इसकी कल्पना से ही लज्जा की सिहरन प्रतीत होने लगती है।"

'सच, और यहा अकेले में भी मेरी इच्छा को तुम पूरा नहीं कर सकतीं?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"यह मैं नहीं जानती।"

"तब मेरा यहा आना बेकार है। मैं जाता हूँ।"

"तो क्या तुम इसलिए आये हो?"

"क्यो, मैं आदमी नहीं हू?"

"मैं तो नहीं मानती। मेरे लिए तो तुम रमेशबाबू हो।"

"तो चलो मुझे नीचे पहुँचा आओ।"—मैं उठने की चेष्टा करने लगा।

"तो सचमुच तुम नाच-गाने का आनन्द लेने आये हो?"

'इसमें भी कोई सदेह हो सकता है?"

'परन्तु अभी तो तुम्हीं ने कहा था कि तुम नृत्य गीत के प्रेमी होकर नहीं आये हो।"

"वह झूठ था।"

"तो तुम नाच देखोगे? गाना सुनोगे?"

"जरूर।"

"अभी?"

"हा।"

"अच्छी बात है।"—वह उठकर कमरे से बाहर जाने लगी तो मैं

"लाओ, देखूँ" कहकर उसने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया तो भयभीत होगई। बोली—तुम्हें तो जोर का बुखार है। शरीर एकदम जल रहा है।

मैंने भी कुछ चिन्तित होकर कहा—तभी उठने की इच्छा नहीं होती है। रानीजी ने इतने काम दे रक्खे थे वे कैसे पूरे होंगे?

वह बोली—क्या कह रहे हो?

मैं—कह रहा हूं, तब तो कई दिन तक तुम्हारा मेहमान रहना पड़ गया।

कल्याणी—और क्या करोगे? मुझे ही कलंक लगवाओगे। रात में जागकर सर्दी खा गये हो। नाम होगा कल्याणी का। कौन से रिश्तेदार यहां हैं, वे चिन्ता करेंगे।

कर लेंगे चिन्ता। तुम फिक्र मत करो।—मैंने कहा।

"तो आराम से लेटो, तुम्हारे खाने पीने की व्यवस्था कैसे होगी?"

"आज शाम तक तो पानी के सिवा कुछ लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। कल देखा जायगा। जैसी तबियत रही कह दूँगा सो बना लेना।"

"मेरे हाथ की बनी हुई खा लोगे?"

"क्या तुम सबको अपने को अछूत समझने की आदत पड़ गई है"

"हम सब कौन?"

"तुम्हीं सब, और कौन?"

"एक तो मैं हूँ, दूसरी कौन है?"

"दूसरी है चादर। चादर के बारे में तुम क्या जानो? अभी कुछ ही दिन पहले मैं उससे मार खाकर आया हूँ। स्त्रियाँ जिनका नाम [illegible] हो सके वहीं जब अपने को यों अछूत मान बैठें तो फिर हम जैसे [illegible] पुरुषों को या तो [illegible] की पूरी शिक्षा लेनी पड़ेगी या [illegible] करते करते शरीर को सुखा देना होगा।'

"सच कह रहे हो?"

"तुम्हारे विचार से हमने कुछ लिया हो तो [illegible]"

लटक जाने से भी कहीं बुरा समझती थी। उसीके वरद हाथों ने तब मुझे जीवन दान दिया था। आज तो मैं निश्चिन्त हूं। आज न तो वह कठिन बीमारी है न वह कष्ट और ऊपर से तुम्हारे मधुर स्नेहोपचार की छाया।"

"तुम्हारे ऊपर हृदय का मधुर रस छिड़कने वाली पुण्यशीला देवियों से मुझे तनिक भी ईर्षा नहीं है। लेकिन वह दुःशीला कौन हो सकती है जो इस तरह बाहर से तुम्हें ठेल कर भी हृदय से तुम्हारी पूजा करती है?"

"यह क्या कहती हो तुम? उसका बाहर भीतर उस समय दो नहीं थे। वह जो अनुभव करती थी वही कहती थी। इसका मैं गवाह हूं।"

"परन्तु वह है कौन?"

"वह कोई है। शायद कभी तुम्हारी उससे भेंट हो तब तुम स्वयं ही उसे पहचान लोगी।"

इस इतनी बातचीत के बाद मुझे कुछ थकावट मालूम पड़ने लगी। सिर में कुछ दर्द का भार बढ़ गया। मैं माथे को हथेली से दबाकर चुपचाप लेट रहा। कल्याणी ने मेरी पीड़ा को समझ लिया।

बोली—सिर में दर्द हो रहा है?

मैंने कहा—"थोड़ा थोड़ा।"

लाओ तेल लगा दूँ—कहकर वह उठ गई और एक तेल की शीशी ले आई। मेरी चारपाई पर ही मेरे सिरहाने बैठ कर देर तक वह तेल मसलती रही। यहाँ तक कि मुझे नींद आ गई। आंख खुली तो दिन काफी चढ़ आया था। कल्याणी अपनी नौकरानी को, क्या क्या करना होगा, समझा रही थी। मैंने उसे पुकारा नहीं। चुपचाप लेटा रहा।

चार दिन बाद कहीं जाकर मेरा ज्वर उतरा। इस बीच दिन और रातों का बहुत बड़ा भाग कल्याणी ने मेरे पास बैठ कर बिताया। ज्वर के वेग में भी मुझसे छिपा न रहा कि उसने अपने तमाम कारबार को इन दिनों बन्द रक्खा। जो भी घर के दरवाजे पर आया उसे वहीं से लौटा दिया गया। क्या कह कर लौटाया गया यह अवश्य मैं नहीं कह सकता।

ज्वर में दूध और नींबू के सिवा मैंने कुछ भी नहीं लिया। अब अब

ज्वर उतर गया तब मैंने कल्याणी से कहा—भाभी, अब तो मुझे भूखा न मारो।

"क्या खाओगे?" उसने पूछा।

"जो तुम जल्दी से बना सको।"

"मैं सभी कुछ बना सकती हूं। तुम अपने मन की बात कहो।"

"खिचड़ी का पथ्य बुरा नहीं होता, यह डाक्टरों ने कहा है।"

"तो खिचड़ी बना दूँ?"

"बना दो।"

मुझे गर्म पानी हाथ मुँह धोने और कुल्ला करने के लिए देकर वह मेरे लिए खिचड़ी बनाने चली गई। खिचड़ी सीजने के लिए चूल्हे पर रखकर वह मुझसे पूछने आई कि साथ में पत्ती का साग भी बनाया जा सकता है या नहीं? भूख से मेरा उदर जल रहा था। मैंने खीझकर कहा—इस समय जबान के स्वाद की चिन्ता से अधिक पेट की पूर्ति की आवश्यकता है। जो कुछ होगया हो वही लाकर दे दो।

"इतने अधीर हो उठे हो?"

"अधीर नहीं होऊँगा? भूख से मर रहा हूं"

"पुरुषों की अधीरता विलक्षण होती है।" कहती हुई वह चली गई।

उस समय सचमुच ही मैं पेट में कुछ पहुंचाने के लिए व्यग्र हो उठा था। कई दिन से लगभग निराहार रहते रहते शरीर में शक्ति नहीं थी जो भूख के वेग को सहन करती। जब तक जाकर कल्याणी ने खिचड़ी तैयार की तबतक मेरी अधीरता व्याकुलता को पहुंच गयी। आखिर वह खिचड़ी बनाकर ले आयी और मैं खाने बैठा। उसने एक चौड़ी तश्तरी में खिचड़ी का पतला पतला परत सब जगह फैला दिया और एक चम्मच मेरे हाथ में दे दिया। भाभी में से मेरे लिए औटाकर ठंडा किया हुआ जल गिलास में उँडेल कर बोली—तुम्हारी उतावली की वजह से मैं जल्दी से ले आयी। न मालूम ठीक से सीज भी पाई है या नहीं?

मैं भूख से व्याकुल था। खिचड़ी को स्वाद आदि पर ध्यान दिये बिना

विशाखा—क्यों चली आई यह पूछने से अच्छा होता यह पूछते कि इतने दिन तक क्यो खबर नहीं ली ? काम की भीड से आज ही सांस ले पाई हू और तभी मैंने सोचा कि

मैं—सब लोग परेशान हो रहे होंगे ? क्या करू मैं, यहा आकर जो पड़ा तो उठा ही नहीं गया।

विशाखा—तुम तो अभी चलने लायक नहीं हो ?

"नहीं, अब मैं चल सकता हू। खिचड़ी ले चुका हू। शरीर में थोड़ा बल आगया है।"

"नीचे तक चल सको तो दरवाजे पर कार खड़ी है।"

"चल सकूँगा" कहकर मैंने कमरे के दरवाजे की तरफ देखा। मैं देख रहा था कल्याणी क्या कर रही है पर वह कहीं भी मुझे दिखाई न दी। वृद्धा नौकरानी खड़ी थी। उसे लक्ष्यकरके विशाखा ने कहा—बहिनजी कहां हैं ? उन्हें जरा बुलाओगी।

नौकरानी को जवाब लाने में इतनी देर लगी कि मैं व्यस्त हो उठा। मुझे लगा कि कल्याणी विशाखा के सामने नहीं आना चाहती है। अपने अपराध की गुरुता से लज्जित वह कहीं छिपी बैठी है। नौकरानी ने आकर कहा—अभी एक मिनट मे आ रही हैं।

मैं बिस्तर से उतरकर अपने कपड़े पहन रहा था। देखा कल्याणी आकर चुपचाप नतशिर होकर खड़ी है। इतनी देर में उसके चेहरे की असली शोभा कहीं की कहीं विलीन होगई थी। धुले हुए वस्त्र की भांति उसका मुख किसी करुण चित्र की आकृति बन गया था। विशाखा ने इस परिस्थिति को सुधारने का प्रयत्न करते हुए कहा—ये इतने दिन नहीं गये तब भी मैं निश्चिन्त थी। मैं जानती थी इसलिए चिंता की कोई बात नहीं थी। हां परन्तु यह ख्याल होता कि इस तरह बीमार पड गये हैं तो काम की भीड़ में से भी समय निकालकर दौड़ी आती और देख जाती।

कल्याणी प्रतिमा-सी खड़ी थी। उसके मुँह में शिष्टाचारमूलक कोई उत्तर तक नहीं रह गया था। विशाखा कहती गई—अब आओ तो इन्हें ले

की जगी और श्रमित, भूखी प्यासी कल्याणी मन और भावों को विक्षुब्ध कर देनेवाली इस घटना को सह न सकी। धम से चक्कर खाकर गिर पड़ी।—यह देखकर विशाखा वहीं रुक गई और उसका सिर गोद में लेकर अंचल की हवा की। जल के छींटे दिये।

मैं सड़क पर खड़ी मोटर में जा बैठा था और सोच रहा था विशाखा को अब किस बात ने रोक लिया है? ऐसी कौन सी बात है जो मेरे पीछे कल्याणी से कहने के लिए वह रुक गई है?

काफी देर बाद विशाखा निकलकर आई। जब वह कार में आकर बैठ गई तो मैंने पूछा—कहा रुक गई थी?

विशाखा—तमाड़ा आगया था उन्हें। मुश्किल से होश मे आई है। बिस्तर पर लिटाकर आई हू।

मोटर हार्न देकर स्टार्ट हो गई और हम रानीजी के निवास स्थान पर जा पहुँचे। मेरे रुग्ण शरीर को देखकर रुक्मिणी को जितना दुख हुआ उतना शायद ही और किसी को हुआ हो।

आज विशाखा के ट्रस्टडीड की रजिस्ट्री करा दी गई। कार्यवाहक ट्रस्टी मैं नियुक्त किया गया। एक दिन मैंने विशाखा से कहा था मुझ जैसे निकम्मों को काम पर लगाने के लिए तुम्हें अपने स्वार्थ की चिन्ता किये बगैर वृद्धावस्था के निकट पहुँचे हुए आदमी से भी विवाहकर लेने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। आज उसीकी पूर्णाहुति का दिन था। विशाखा ने उसे आज अपनी ओर से पूरा कर दिया। पता नहीं जो कार्य मेरे कधो पर इस प्रकार आ पड़ा है उसे मैं कहा तक और किस प्रकार पूरा कर सकूँगा? यही सोचते हुए मैंने उस सन्ध्या को निद्रा देवी की गोद में विश्राम ग्रहण किया।

पच्चीस

विपुल संपत्ति की सुरक्षा, प्रबन्ध और ट्रस्टडीड में वर्णित उद्देश्यों के अनुसार उसकी आय को खर्च करने आदि के झंझट ने मेरे जीवन की आठों पहर की शांति को छीन लिया। रानीजी के नये निवास स्थान पर रोज संध्या समय जाकर परामर्श करने को ही मेरा सैर-सपाटा, मनोरंजन व दिलबहलाव कहा जा सकता है। बाकी प्रात से सायंकाल तक के समय का एक एक क्षण दफ्तर में बीतता है। कारखानों का प्रबंध देखना, जमीन-जायदाद के झगड़े सुनना और उन्हें निपटाना, मजदूरों और कार्यकर्ताओं की मांगों और शिकायतों पर विचार करना, नव स्थापित संस्थाओं में योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति को देखना आदि नाना प्रकार के जरूरी काम निपटाने में ही सारा समय बीत जाता। एक मिनट को दम मारने की भी फुरसत नहीं मिलती।

दस मिनट के रास्ते पर स्थित कल्याणी का घर मेरे लिए काले कोसों हो गया। उस दिन उसके घर से विशाखा के साथ आकर फिर नहीं पहुँच पाया सो नहीं ही पहुँच पाया।

विशाखा में अद्भुत क्षमता है। वह किसी भी काम को सहज ही निपटा लेती है। कोई ऐसा मामला नहीं जिसका उचित समाधान उसके पास न हो। मेरे कार्य में यदि वह सहायता न करे तो सारा काम चौपट हो जाय। सध्या समय नियम से उसकी सलाह लेने मैं जाता हू और जब लौटता हू तो यह महसूस करता हुआ कि भार बहुत कुछ हलका होगया है। यह भी आश्चर्यजनक है कि घर के भीतर बैठी रहकर भी वह हरएक बात की पूरी जानकारी रखती है। नूरजहा एक ऐसी स्त्री हुई है जिसके सबध में इतिहास उल्लेख करता है कि उसकी कार्यदक्षता अलौकिक थी। जहागीर के विशाल साम्राज्य को वह महलों के भीतर बैठी बैठी चलाती थी। विशाखा इसी कोटि की नारी है। यदि उसे जहागीर के राज्य से भी कोई बड़ा राज्य प्रबंध के लिए मिलता तो वह सफलता से उसे निबाह ले जाती। इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है।

एक दिन सध्या समय मैं जब उसके पास गया तो बोली—तुम्हारा स्वास्थ्य तो इतना चिन्ताजनक हो रहा है कि आबहवा बदलने के लिए कहीं कुछ दिन घूम आये बिना काम नहीं चलेगा।

मैं—मुझे भी लगता है, लेकिन अवकाश तो मिले।

विशाखा—अवकाश निकालने से होगा। हर एक को उसका काम और पूरी जिम्मेदारी दे देने से अवकाश ही अवकाश है। अपने यहां योग्य आदमियों की कमी नहीं है।—मैं देखती हूँ ट्रस्ट का भार तुम्हारे ऊपर डालकर मैं उससे निश्चिन्त हो गई हू पर दूसरी ओर तुम्हारे स्वास्थ्य की चिंता का भार मेरे ऊपर दिन दिन बढ़ता जा रहा है।

मैं—मेरी चिंता की आवश्यकता नहीं है। मैं ऐसा छुईमुई नहीं हूँ।

विशाखा—छुईमुई मैं नहीं कहती लेकिन आदमी तो हो और ऐसे आदमी जो निर्बंध घूमने में ही आनद लेते रहे हो।

मैं—इसमें तो कोई संदेह नहीं। इसी कारण एक बड़ा भार, एक बड़ा बंधन सा लगता है। कभी कभी जी होता है कि कर्म का पिंजड़ा खुल जाय और कुछ दिन के लिए मुक्त विस्तार में विचरण कर आऊं।

विशाखा—यही तो डर है। बाहर की खुली हवा एक बार लगी कि फिर तुम्हें यहां लाना भी कठिन हो जायगा।

मैं—फिर चिन्ता छोड़ो। मुझे अपने ढंग से काम में लगा रहने दो।

विशाखा—पर तुम्हारे शरीर को अनदेखा कैसे कर दूं जो इतने ही दिन में आधा रह गया है। और मेरा ध्यान भी कहां जाता है? वह तो रुकिया है जो यह सब देख जाती है। वह न बताये तो क्या मैं इतना भी ध्यान दे पाऊं?

मैं—तो आखिर क्या करना है?

विशाखा—करना यह है कि हम हरिद्वार चल रहे हैं। सोचती हूं तुम्हें भी लेती चलूं। दो चार दिन आराम मिल जायगा।

मैं—लेकिन बाहर की खुली हवा जो लग जायगी। मैं नहीं जानता, कर्म मुक्त जीवन का स्वाद एक बार आजाने पर वह मुझे कहां ले जायगा?

विशाखा—मैं साथ रहूंगी। साधु-संत-महंत का चेला तो नहीं होने दूंगी।

मैं—अच्छी बात है।

विशाखा—तो चलोगे?

मैं—कब चलना होगा?

विशाखा—जिज्जी आ जाय। उनसे एक बार मिल लूं। क्या जाने मेरा जी वहीं लग जाय तो मैं कुछ दिन वहीं ठहर जाऊंगी। या हुआ तो आगे बद्रीधाम या और कहीं तीर्थाटन को चली जाऊं। तब तुम यहां लौट आना।

मैं—तो मुझे छोड़कर सूनी अयोध्या में रहना पड़ेगा? यह तो बड़ा भयंकर होगा।

विशाखा—जिज्जी तो तब तक रहेंगी ही। उनसे मैंने पूछ लिया है।

मैं—तो ठीक है।

इसके चार छ दिन बाद भाभी राधारानी आगईं। उनके आजाने पर ही हमारी यात्रा की अंतिम रूपरेखा बनी। तबतक मैंने महिलाश्रम, मातृमंदिर, शिशुगृह और कन्याशाला आदि नवस्थापित संस्थाओं का समुचित प्रबंध कर दिया।

मैं, विशाखा, रुक्मिणी और विशाखा के स्वर्गीय स्वामी के दूर के रिश्ते का एक सोलह वर्षीय भतीजा सरोज ये चार आदमी जायगे, ऐसा तय हुआ। अत जो कुछ प्रबंध आवश्यक समझा गया करके हम नियत दिन चल पड़े। रास्ते में तथा हरिद्वार में साथ रहकर मैंने विशाखा का अद्भुत संयम और उत्कट तपस्या देखी कलियुग के आने से पहले ऋषि महर्षि तपस्या को जीवन का एक अंग मानते थे। और अब पुरुषों ने उसे स्त्रियों के लिए ही सुरक्षित कर दिया है। वे बेचारी ही उसका अधिकांश बोझ ढोती हैं।

विशाखा कठोर नंगी पृथ्वी पर सोती है। एक वस्त्र से रहती है। शृंगार और प्रसाधन के समस्त उपकरणों से रहित आभरणहीन उसका शरीर अपनी न्यारी शोभा रखता है। जब वह मेरे सामने होती है तो उसे देखकर पौराणिक सती का दिव्यरूप आंखों के आगे आ जाता है। इतने पर भी उसका हृदय हम सबके लिए ममता से भरा है। हम सबकी सुख-सुविधा के लिए वह सब कुछ भूलकर संलग्न रहती है। सबके खाने पीने की सारी तैयारी अपने हाथों से करती है। कैशोर अल्हड़ता के दिनों में जिस संलग्नता से एक बार उसने मेरी परिचर्या की थी उसकी स्मृति आज फिर से ताजी हो उठी है। हरिद्वार में दो चार दिन रहकर हम लोग हृषीकेश आगये हैं। बस्ती से बाहर एक कुटिया में निवास करके तो बिल्कुल प्रकृति की गोद में पहुँच गये हैं। मैंने कहा—अगर यहां दो चार महीने रह पाऊँ तो जानती हो क्या हो ?

विशाखा आगे सुनने के लिए उत्कंठा से मेरे मुख की ओर ताकने लगी। मैंने कहा—फिर मैं तपस्वी होकर यहीं हिमालय की कन्दराओं में रम जाऊं!

क्या सचमुच यही इच्छा होती है तुम्हारी ?—उसने व्यग्रता से पूछा।

मैंने कहा—निश्चय जानो।

विशाखा—तुम अकेले यहा बने रह सकते हो ?

"अकेले ?"

"हाँ, तपस्या तो अकेले ही होती है।"

"परन्तु अकेले रहने की बात तो मैंने सोची नहीं। हाँ, किसी के साथ रहकर जीवन गुजार सकता हूं।"

"किसी के साथ रहने से तुम तपस्वी नहीं बन सकते। स्त्री और पुरुष गृहस्थी के महल के लिए ईंट और गारा रूप तो हैं उनसे तपस्या की वेदी का निर्माण नहीं हो सकता।"

"यह कठिन है मेरे लिए।"

"लेकिन तुम तो एकाकी ही हो।"

मैंने सिर हिला दिया।

उसने फिर पूछा—और क्या तुमने एकाकी ही रहना विचारा है ?

मैं—विचारा हुआ कभी किसी का होता नहीं है इस पर विश्वास करने के सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं।

"परन्तु फिर भी आदमी विचार करता है।"

"विचार किये बिना वह नहीं रह सकता इसीसे करता है।"

"तो तुमने क्या विचार किया है ?"

"विचार यही किया है कि अपने साथ किसी दूसरे का जीवन बरबाद करने का अधिकार मुझे नहीं रह गया है।"

"बरबाद करने का ?"

"बरबाद ही समझो उसे। जो अपने को नहीं सँभाल सकता वह दूसरे को क्या सँभालेगा ?"

"पहले यह अधिकार तुम्हें था ?"

"हाँ, कभी था और तब मैंने उस अधिकार को गर्वपूर्वक काम में भी लिया। उसी पाप का प्रायश्चित्त अब करना होगा।"

"एकाकी रहकर ?"

"हां। लेकिन एकाकी रहने के अपने संकल्प को मैं पूरा कब कर पा रहा हूं ?"

"वह संकल्प किस तरह पूरा करना चाहते हो ? तुम तो अब भी एकाकी ही हो। क्या किसी दूसरे की छाया न पड़े इसीको एकाकी कहोगे ?"

"मैं अंधकार में भटक रहा हूं। मेरा अन्तर कभी कभी बोलता है कि मुझसे यह सब नहीं हो सकता। मैं नितान्त दुर्बल चित्त का व्यक्ति हूं। किसी संकल्प पर दृढ़ता से डटे रहने की क्षमता मुझमें नहीं है। इतना बड़ा व्रत लेकर मैं उसका निर्वाह कैसे कर सकूंगा ? इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि मैं अपनी ओर से कभी उन अवसरों से बचने का यत्न नहीं करता जिससे मेरे व्रत की रक्षा के लिए उपयुक्त वातावरण की प्राप्ति सुलभ होती हो।"

"उधर तुम किसी के साथ रहकर जीवन गुजार देने की आकांक्षा रखते हो और इधर एकाकी रहने के व्रत को पूरा करने के निमित्त स्त्री की छाया को छूना नहीं चाहते।"

"तभी तो मैं कहता हूं कि मैं अंधकार में भटक रहा हूं।"

"संसार को त्यागकर संन्यासी बनने की अपेक्षा संसार में संचरण करके संन्यास का निर्वाह करना महान है। ऐसा क्यों नहीं सोचते ?"

"अपने अन्दर के चोर को महानता के आवरण से मण्डित करके और धोखा खाऊं ?"

"यही तो है। धोखा इसमें नहीं। धोखा तो बुनियाद में है। तुम यह समझते हो कि तुम्हारे कहने भर से उस दिन मैंने वह सब स्वीकार कर अपने जीवन को विपथ पर डाल दिया था ? संभव है यही हो, वह विपथ ही रहा हो, पर जो विष मेरे लिए अमृत बन गया है। वही तुम्हारे लिए प्रायश्चित का आधार बने यह कोई बुद्धिमानी भरा निर्णय नहीं। बोलो, मैं ठीक समझ रही हूं या नहीं।"

"तुम ठीक समझ रही हो विशाखा। मुझे कोई अधिकार नहीं था कि मैं तुम्हें एक ऐसे पकी अवस्था के आदमी के साथ अपने भाग्य को बांध लेने का उपदेश देता। ऐसा करके मैंने तुम्हें जीवन की एक बहुमूल्य प्राप्ति से वञ्चित करने का घोरतर पाप किया है। यह तुम्हारी विशेषता है जो तुमने विष में अमृत खोज निकाला। परन्तु यह तुम कभी न जान सकोगी कि इस तपस्या की वेदी पर चढ़कर तुमने क्या कुछ खो दिया है? ऐसी सूरत में मेरे लिए प्रायश्चित के मार्ग पर चलने के सिवा और कोई रास्ता नहीं रह जाता जिस पर चलने में आत्मसन्तोष की प्राप्ति होती हो।"

"यह बात है? तब भी तो यह तुम्हारे ही हक में है। अच्छा तो तब होता जब तुम अपने अपराध की गुरुता को समझते हुए भी सुख की सेज पर सोते। हर समय तुम्हारी सेज के फूल तुम्हारे लिए कांटे बन बनकर चुभते रहते और तुम्हें तुम्हारे रस में विष का स्वाद आता। दूसरे को विष घोलकर पिला देने के बाद अपने लिए आत्मसन्तोष तलाशनेवाले को क्या यह सजा नहीं मिलनी चाहिए?"

"मैं पामर प्राणी इतनी विषम स्थिति की कामना नहीं कर सकता।"

"तब यह सब ढोंग व्यर्थ है। अपने को अलिप्त मानते हुए चलते जाओ। जो आजाय उसे भोगो। दुनियां से भागने का प्रयत्न मत करो। हिमालय की कन्दराओं में रम जाने की मत सोचो।"

"अच्छा अच्छा। यही सही। मैं तो अन्धकार में भटक रहा हूँ। मेरा कोई निश्चय व्यवस्थित ढंग से कार्यरूप में परिणत नहीं हो रहा है। भटकते भटकते न जाने क्या हाथ लग जाय? प्रयोगों की परंपरा में चल रहा हूं। चलने दो न मुझे, अबाध अबध।"

"मैं कब रोकती हूँ? रोकने का मुझे अधिकार भी कहाँ है?"

सरोज कहीं घूमने गया था वह आ पहुंचा। उसे किसी तरह का संकोच न हो इसकी विशाखा सदा चिन्ता रखती है। उसके भीतर पैर रखते ही उसने हमारे वार्तालाप को वहीं छोड़ कर पूछा—सरोज भैया, कुछ मुझसे कहना चाहते हो!

हाँ, मेरे साथ एक महात्माजी आ गये हैं—उसने रुकते रुकते कहा।

"महात्माजी आगये हैं तो उन्हें ले आकर बिठाओ न भाई। उधर आसन बिछा दो। रसोई तैयार है, महात्मा जी से कहो यहीं प्रसाद पायेंगे। मैं अभी आई।"

इतनी सारी व्यवस्था करके विशाखा उठ गई।

कुटिया से बाहर फुलवारी है। फुलवारी में एक ओर छप्पर है। यहीं रसोईघर है। पास ही दूसरे छप्पर के नीचे आसन पर अर्धनिमीलित नेत्र एक साधु विराजमान हैं। कोई काम न होने से मैं भी दर्शनार्थ वहीं चला गया। देखा, वे बड़े मजे से अंग्रेजी बोलते हैं और शायद इसी कारण सतीश उन्हें आमंत्रित कर लाया है। आंग्ल भाषा भाषी साधुओं को सभी तक वे सब सुविधाएँ सुलभ हो जाती हैं जिनके ये हकदार नहीं, क्योंकि लोग दासता के भाव से मुक्त नहीं हो पाये हैं। उनके निकट अंग्रेजी का ज्ञान विशेष सम्मान की चीज है। यह और बात है कि वे देशी और देश के गुण गाना भी सीख गये हैं।

मुझे अपने सामने अभिवादन की मुद्रा में पाकर महात्माजी गद्‌गद् हो गये। हाथ उठाकर हिन्दी में आशीर्वाद दिया।

मैंने पूछा—कौन सा देश है, भगवन्?

उत्तर मिला—साधुओं का कौन-सा देश? यह सारी धरती ही तो उनकी है। वे जहाँ चाहें विचरते हैं।

मैं निरुत्तर होगया। आगे जाति, सम्प्रदाय आदि की बात उठाना व्यर्थ जान मैं वहीं धरती पर बैठ गया। मेरे ऊपर गंभीर दृष्टि डालकर महात्मा जी कह उठे—सेवा सबसे बड़ा धर्म है—अखिल चराचर की सेवा।

मैं—लेकिन हम गृहस्थ तो स्वार्थ की ही आराधना करना जानते हैं। हम तो इसी को धर्म मान बैठे हैं।

महात्माजी—परार्थ को स्वार्थ की सीमा में सम्मिलित कर लेने की दृष्टि बना लो। सब ठीक हो जायगा। सेवा का राजमार्ग खुल जायगा।

"परन्तु कितना कठिन है यह?"

"कठिन को सरल करो।"

"इतनी घोर साधना की शक्ति कहां से लायें ?"

"शक्ति का भंडार तुम्हारे भीतर है—अक्षय भंडार। उसे खोज निकालो। काम में लाओ।"

मैं स्थिर दृष्टि होकर कुछ सोचने लगा। महात्माजी फिर कहने लगे-- तुम्हारे लिए तो यह रास्ता अपरिचित नहीं। तुम तो इसी में लगे हो।

"ऐसा कुछ नहीं है महाराज।"

"अर्थात् ?"

"स्वार्थ पथ के सिवा दूसरा पथ हमने नहीं देखा है।"

"यह विपरीत भावना तुमने क्यों बना ली है ? तुम्हारे कामों से तो इसका कोई मेल नहीं।"

"मेरे कामों का लेखा आपने देखा है ?"

"क्यों नहीं। मेरी आँखों से क्या दूर है ?"

"आपका विचार है कि मैं विपथगामी नहीं हूँ ?"

"हाँ, मुझे निश्चय है और मेरा निश्चय गलत नहीं होता।"

"और इस निश्चय का आधार है आपका परोक्षज्ञान ?"

"प्रत्यक्ष ज्ञान कहो।"

"मेरे जीवन का प्रत्यक्षज्ञान आपको कैसे सम्भव है ?"

"असम्भव भी नहीं हो सकता।"

"हाँ असम्भव भी नहीं हो सकता। लेकिन सम्भव किस प्रकार हो ?"

"मोहनपुर में साथ साथ रहकर हो सकता है। दौलतपुर में साथ साथ रहकर हो सकता है।"

"आप सन्यासी हैं? संन्यास ले लिया है कब से?"

"जब अपने धर्मकर्म को पहचान पाया उसी दिन से।"

"आपने अपने धर्म-कर्म को पहचान लिया, इसीसे आप समझते हैं कि सब कोई अपने धर्मकर्म को जान लेगा। हर किसी में यह क्षमता तो नहीं हो सकती।" मैं हतबुद्धि उनके मुँह की ओर ताकता बैठा रहा।

"हर किसी में तुम्हारी गिन्ती मैं नहीं करता रमेश।"

महात्माजी और मेरा परिचय पहले से है यह बात सरोज ने आकर अपनी चाची से कह दी। उनके सामने भोजन का थाल लाकर रखते समय विशाखा के मन में कौतूहल की मात्रा बढ़ी हुई थी।

मैंने सन्यासी रामचरनदास से पूछा—कब और कैसे आप इस मार्ग पर पहुँच गये?

उन्होंने थाली में से गौ-ग्रास निकाल कर अलग रख दिया। फिर भगवन् का स्मरण किया, फिर प्रसाद पाने में जुट गये। दो एक ग्रास खाने के बाद बोले—तुम पूछते हो कब और कैसे मैंने सन्यास ग्रहण किया? यह भी पूछोगे कि इसमें मुझे सुख है या दुख? कभी इससे विरति तो नहीं होती? कभी पिछले दिनों की याद तो नहीं आती? उसके लिए लालक तो नहीं है? तुम्हारे इन सब प्रश्नों के करने से पहले ही मैं उन्हें मान लेता हू। क्यों यह ठीक है न?

मैंने स्वीकारात्मक सिर हिला दिया। विशाखा भी सन्यासीजी के जीवनवृत्तान्त को सुनने के लिए वहीं एक ओर बैठ गई।

सन्यासी जी बोले—अब से दस साल पहले मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरा ब्याह हुआ। गाँव की अनपढ़ लड़की। शिक्षा-दीक्षा से हीन। मेरी रुचि को पदाक्रान्त करके आनेवाली उस लड़की से मुझे जो सुख और जो संतोष आगे दो साल तक मिला वह इस संसार में दुर्लभ वस्तु है। मेरे ज्ञान और अनुभव का सारा अहंकार उसके आगे गल कर पानी होगया। ऐसी अनमोल और दिव्य थी वह।

ब्याह आकर छ महीने तक तो मैंने उससे बात नहीं की। न उसे

उसे अवसर दिया कि वह अपने दिल की मुझसे कह पाती। उन दिनों मेरे दिन घर से बाहर बीतते। रात को उसे भीतर छोड़कर मैं बाहर चौगान में लेटता। मेरा विचार था कि हम दोनों में महान अन्तर है। कभी हम एक स्तर पर पहुँचने लायक न हो सकेंगे। छः महीने इस तरह अनदेखे अनबोले गुजार कर मैं एक दिन ऐसा बीमार पड़ा कि होशहवाश खोगये। मेरी बीमारी के उन सप्ताहों में उसने मेरी अनथक सेवा की। रात दिन एक करके उसने मुझे मौत के मुँह से बचाया। होश में आने पर पहली बार मैंने घूँघट से बाहर उसका मुख देख पाया—ममतापूर्ण मनोहर मुख। मैंने पूछा—तुम कौन हो?

"रामसखी।"

"इस घर में तुम कहाँ से आईं?"

"यह घर मेरा ही है।"

"तुम्हारा, गलत। किसने कहा तुम्हारा घर है यह?"

"कहेगा कौन? जो मेरा है वह मेरा ही है।"

"तुम भूल से आगई हो। यह तुम्हारा घर नहीं है। देखती नहीं हो मैं यहाँ पहले से हूँ। घर मेरा है।"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"गँवार जो ठहरी।"

मुझे लगा कि मैं उससे हार गया। वह वैसी ही काम में लगी रही।

मैंने कहा—रामसखी।

"कहो।"

मैंने फिर दोहराया—रामसखी।

"बोलो।"

"मैं तुम्हें अनपढ़ गँवार समझे था।"

"और क्या हूँ मैं ?"

"मेरी भूल थी वह। मुझे क्षमा करो, रामसखी।"

तुम ऐसी बातें करोगे तो मैं यहां से चली जाऊँगी—आँखें तरेरकर उसने कहा।

"कहाँ चली जाओगी ?"

"अपने घर।"

"यह घर तुम्हारा नहीं है ?"

"यह घर तुम्हारा है।"

"और अभी तुम क्या कह रही थीं ? तुम झूठ बोलना भी जानती हो रामसखी ?"

"मैं कह रही थी—मैं सच कह रही थी। और देखो, तुम मेरा नाम न लिया करो।"

"क्यों ?"

"पुरुष कहीं स्त्री का नाम लेकर पुकारता है।"

"तो कैसे पुकारा करूँ तुम्हें मैं ?"

"यह मैं क्या जानूँ ?"

"तुम्हीं जानोगी। जब तुम मुझे नाम लेकर पुकारने से मना करती हो तो और कौन जानेगा ?"

"वाह जी, मैं तुम्हें बताऊँगी क्या?"

"बताना पड़ेगा।"

"कैसे?"

"ऐसे"—कहकर मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।—"जब तक न बताओगी तब तक के लिए तुम गिरफ्तार हो।"

"अच्छा छोड़ो, बताऊँ।"

मैंने उसका हाथ छोड़ दिया। वह बोली – जैसे दादा (जेठजी) जीजी (जिठानी) को पुकारते हैं। वे क्या नाम लेते हैं?

'वे तो कहते हैं, विभा की माँ, प्रभा की माँ।"

इस पर वह हँस पड़ी। मैंने पूछा—हँसती क्यों हो?

"तुम्हारी बातों पर।"

"क्यों?"

'विभा प्रभा तो अब हैं। जब वे नहीं थीं तब कैसे बुलाते थे?"

"तुम्हीं बताओ।"

'मैं बताऊँ? मैं कैसे बताऊँ? मैं क्या वहाँ बैठी थी तब?"

"तुम सब जानती हो रामसखी। और नहीं जानती हो तो जाकर भाभी से पूछ आओ।"

इस बात से वह ऐसी शर्माई कि क्या बताऊँ? उसने एक लम्बा-सा घूँघट खींच लिया। मैंने कहा—यह क्या आफत है?

वह चुप। मैंने कहा—यह खूब रही। अजी वाह, कुछ बोलो भी। एकदम ऐसा क्या हो गया?

"पर घूँघट तो खोलो। मुँह तो तुम्हारा मैं देख ही चुका हूँ अब ढकने से क्या होता है ?"

उसने पहले जैसा तो नहीं खोला। हाँ, घूँघट थोड़ा ऊँचा कर लिया। मैंने बात बदलने की गरज से कहा—सिर में थोड़ा दर्द होने लगा है रामसखी।

"कहाँ"—कहकर वह मेरे पास आ गई—"कमजोरी से हो गया होगा। लाओ सिर दाब दूँ।"

निस्संकोच भाव से वह मेरे बिस्तर पर बैठ गई। मुँह न जाने कब उघर गया। मेरे माथे पर धीरे धीरे उसका हाथ फिरने लगा।

इस तरह पहली मुलाकात में ही मैं जान गया कि रामसखी कितनी दुर्लभ चीज है। इसके बाद तो उसका आकर्षण दिन दिन बढ़ता ही गया। उसकी बात ही ऐसी होती थी, जिसे याद करके आदमी को रोना आये। अपने लिए कभी कोई चीज उसने नहीं मांगी। न खाने पीने की, न शृंगार-सजाव की। मेरे बहुत झगड़ने पर कहती तो यही—जो तुम्हें भाये ले आओ। मेरा खाना-पहनना है तो सब तुम्हारे ही लिए। किसी बाहरवाले को तो दिखाना नहीं है। फिर बारबार पूछते क्या हो ?

मैं कहता—तुम कैसी भोली-हो रामसखी। तुम्हारी सखियाँ क्या कहती होंगी ? मेरी रुचि के मोटे-भद्दे कपड़े तुम लपेटे रहती हो।

"सखियों सहेलियों की पसन्दगी से मेरा कुछ आता जाता नहीं। मैं तो तुम्हारी पसन्द से बँधी हूँ।"

माँ-बाप के घर बुलाने से जाती पर एक रात भी वहाँ न ठहरती। जाते जाते मुझे हिदायत दे जाती—देखो शाम होते होते पहुँच जाना। साथ चले आयेंगे।

मैं कहता—यह ठीक नहीं है। तुम्हारे माँ बाप बुरा मानेंगे।

वह उत्तर देती—रहने दो। उनकी नाराजगी [illegible] तुम्हारी असुविधा। चलो अपने घर चलें। यहाँ क्या तुम घर की सी स्वतन्त्रता से रह सकोगे ?

मैं परास्त हो जाता। उसे साथ ले आता।

इसी तरह मेला ठेला, खेल-तमाशा, ब्याह-शादी कहीं भी वह रात को न रुकती। तीर्थ व्रत, पूजा मान्ता जो भी उसके होते सब मेरे कल्याण के लिए, मेरे स्वास्थ्य के लिए, मेरी श्रीवृद्धि के लिए। अपने लिए उसका कुछ भी नहीं था।

मैं कभी कभी हँसी से उससे कहता—रामसखी, तुम्हारा नामकरण करनेवाला ज्योतिषी त्रिकालज्ञ था। उसने तुम्हें मेरी सच्ची सखी बनाकर भेजा है—नाम से भी, काम से भी। भगवान उस ज्योतिषी की विद्या-बुद्धि को निरंतर बढ़ायें।

दो बरस बाद जब वह मृत्यु-शैया पर पड़ी थी तब मुझे उसकी इस अनन्यता का रहस्य समझ में आया। यदि रामसखी इतनी जल्दी मरने को न होती तो इतनी छोटी उम्र में इतनी सेवापरायण और अनन्य न होती। वह जब तक जीवित रही मेरी सेवा में समर्पित रही, मरते समय भी शरीर के अपार कष्ट से ज़रा भी विचलित न हुई। उस समय भी उसे एक यही कष्ट था कि उसके बाद मेरा क्या होगा? कौन मेरी देखरेख करेगा? यदि सेवा का उत्तराधिकार किसी को दिया जा सकता तो वह अवश्य ही मुझे किसी अपनी विश्वस्त को सौंप गई होती।

लिया है उससे मुझे यह विचार करने की फुरसत नहीं है कि मुझे दुःख है या सुख। इससे उसके प्रति विरति का प्रश्न नहीं उठता। अब रही यह बात कि पुरानी बातें मुझे याद आती हैं या नहीं और उनसे मैं विकल होता हूं या नहीं? अपनी कहानी कहकर मैंने तुम्हें बता ही दिया है कि मैं आखिर मनुष्य ही हूं, साधना के पथ पर फूंक फूंककर चल रहा हूं। सिद्धि अभी दूर है—बहुत दूर, बहुत दूर।

देर तक मौन रहकर वे बोले—राममणी ही मुझे सेवा का महामन्त्र सिखा गई। उसी को जिस तरह होता है मैं जपता हूं। अखिल चराचर की सेवा का व्रत लिए मैं घूमता हूं। मैं सन्यासी हूं, साधनहीन हूं परन्तु सेवा में इतना बल है कि वह मेरे प्रयत्नों को स्वतः ही बल देती चलती है। आज तक मुझे कभी अभाव की प्रतीति नहीं हुई। साधनों की प्रचुरता चारों ओर से नदी की भांति उमड़ती चली आ रही है। ठीक तरह से उसका उपयोग करने के लिए सेवाव्रती लोगों को लेकर जगह जगह सेवाश्रम स्थापित कर दिये हैं। अबतक एक हजार एक सौ से कुछ अधिक स्थानों पर सब काम कर रहे हैं। भगवान की इच्छा होगी तो उसकी एक लाख शाखाएं विश्व-कल्याण की योजना को कार्यान्वित करने के लिए शीघ्र क्रियाशील दिखाई देंगी।

मेरे कुछ कहने से पहले ही वे बोले—तुम्हारी इस गृहस्थी का निश्चय ही यह स्थायी निवासस्थान नहीं मालूम पड़ता है, और तुम्हारी धर्मपत्नीजी मुझे साधारण कोटि की नारी नहीं लगतीं। ये मेरे काम में सहायिका बन सकती हैं।

मैंने कहा—मैं तो अभी तक गृहस्थ और गृहस्थी के झंझट से [illegible] मुक्त हूं भगवन, और ये रानीजी हैं। इन्होंने अपनी पचास लाख की सम्पत्ति सेवार्थ प्रदान कर दी है।

संन्यासी—मैं अपनी अयथार्थ धारणा के लिए तुम दोनों से क्षमा-प्रार्थी हूं।

फिर विशाखा की ओर मुँह करके बोले—कल्याणी, [illegible]?

विशाखा—महात्माजी आप यह क्या कहते हैं ? मैं आपको क्षमा करूँगी ? अनजान में कही गई बात के लिए आप इतने दुखी क्यों होते हैं ?

"पूर्वधारणा बना लेने से कभी कभी ऐसी भूल होजाती है। आप तो सेवा के मार्ग पर पहले से ही चल रही हैं। यही जीवन का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।"

विशाखा—भगवन् इसका श्रेय मेरे स्वर्गीय स्वामी को है। उन्होंने ही इतनी बड़ी धन-राशि पीछे छोड़ी है। मैंने तो उसे जिसकी समझा उसके हवाले कर दिया। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती। मैं जड़ बुद्धि धर्म-कर्म की ऊँची ऊँची बातों से सर्वथा अनजान हूँ।

संन्यासी—धन की माया ममता छोड़ देना ही तो बड़ी बात है। यही ममता-त्याग धर्म कर्म का मूल है। यह बड़े बड़े तत्वज्ञानियों से भी मुश्किल से बन पड़ता है।

विशाखा ने महात्मा जी के सामने आकर धरती पर अपना माथा टेक दिया। महात्माजी ने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

संन्यासीजी को पहुँचाने के लिए मैं दूर तक उनके साथ साथ गया। रास्ते में उन्होंने मुझसे पूछा—गृहस्थों के बीच रहकर गृहस्थी के झंझट से मुक्ति का क्या कारण होसकता है ?

"मेरे सामने आरंभ से कुछ ऐसी ही समस्या रही है।"

"जानते हो, हमारी भाषा में इन कठिन समस्याओं का क्या नाम है ?"

"नहीं।"

"बालबन्धु के रास्ते पर शायद चल पड़ो इसीसे।"

"मुझे साथ ले जाकर उन्होंने क्या उपदेश दिया था, जानती हो?"

"क्या जाने?"

"तुम्हारा क्या अनुमान है?"

"यही कहा होगा कि अकेले तो हो ही। क्यों न सेना सभा में आ जाओ।"

"नहीं।"

"तब?"

"उन्होंने कहा था ब्याह करलो। सुख से रहो।"

"यह तो नहीं कह सकते हैं।"

"सच, यही कहा था।"

"और तुमने क्या उत्तर दिया?"

"मैं क्या इनकार करता? बड़ों के आदेश को शिरोधार्य किये ही बनता है। मैंने स्वीकार कर लिया।"

"तो ब्याह करोगे?"

"अवसर आयेगा तो कर लूँगा।"

"परन्तु अवसर कब आयेगा?"

"इसका क्या पता? आज आये, कल आये, कभी न आये।"

"तो मुझे घर भेजकर कहां कहां घूमोगे?"

"इसका कोई निश्चय नहीं है।"

"कब निश्चय करोगे? मेरे चले जाने के बाद?"

"इस कुटिया को छोड़कर रास्ते पर खड़े हो जाने के उपरान्त सोचूँगा किधर चलने में सुभीता होता है।"

"तो क्या पैदल यात्रा होगी?"

"ऐसा ही विचार है।"

"परन्तु पैदल यात्रा में कितना समय लगेगा और कितने कष्ट होंगे, यह नहीं सोचा होगा?"

"तो कितनी दूर तक मुझे पहुँचा आने का आदेश हुआ है तुम्हें ?"

"जहां तक आप ले चलना चाहें ।"

"और इस रास्ते पर ही मुझे जाना है क्या यह भी तुम्हें बता दिया गया है ?"

"यह रास्ता सीधी पक्की सड़क से जाकर मिलता है । आपको जाना किस गांव है बाबू जी ?"

"गांव का नाम तो मुझे मालूम नहीं है, पर हां जाना है इसी ओर ।"

रामरिख अपनी धुन में गाड़ी हांक रहा था । धीरे धीरे धूप तेज हो गई, और मुझे विशाखा का वह कथन याद आने लगा कि खुली गाड़ी में धूप का बचाव कर लेना । सामान तो मैं कुछ साथ लाया नहीं । धूप का बचाव किया जाय तो कैसे ? रामरिख धूप मेंह को धारता नहीं । मजे से गुनगुनाता हुआ चल रहा है । मैंने कहा—भाई, मन ही मन क्या गा रहे हो जरा जोर से गाओ न ।

रामरिख—बाबूजी, हम गँवार लोग रेंक लेते हैं । गाना तो क्या जाने ?

"नहीं नहीं गाओ रामरिख, बहुत अच्छा तो गा रहे हो तुम ।"

बीती जाती अगना, मियाँ परदेस
पाती न सदेस, पाती न सदेस ।

खूब जोर से आलाप लेकर रामरिख ने ठेठ देहाती गले से गाया । आलाप के परिश्रम से उसका मुख लाल हो गया और पसीने की बूंदें चेहरे पर आगईं ।

सामने एक छोटा सा गांव दिखाई दिया । मैंने कहा—यहां थोड़ी देर ठहर लें जलपान कर लें, तब आगे चलेंगे ।

रामरिख—यहां नहीं बाबूजी, यह चोरों का गांव है । अभी [illegible] और बैल एक रात भी पता नहीं लगने देंगे । बड़े बदमाश हैं ।

"ऐसी बात है ?"

"हां जी, आगे उस बड़े गांव में चलकर रुकेंगे ।"

रहनेवाले कहीं बाहर से आकर कभी वहाँ बस गये होंगे, अभी तक स्थायी निवास जैसे घर चार छः को छोड़कर वे ज्यादा बना नहीं पाये हैं।

सबसे पहले मेरी भेंट एक युवती से हुई। वह कौतूहल से मेरी ओर देखने लगी। मैंने कहा—मुसाफिर हूँ। रास्ता भूल गया हूँ।

"कहाँ जाना है ?"

"आगे।"

"तो चले जाओ। वह रास्ता पड़ा है।" उसने उँगली के संकेत से रास्ता बता दिया।

मैंने कहा—मैं थक गया हूँ। थोड़ी देर विश्राम किये बिना आगे जाना कठिन है।

वह—आओ फिर। आदमी तो सब थाने गये हैं। थानेदार रोज मरता रहता है जो।

मैं—क्या कहती हो ?

वह—कहती हूँ हम लोगों की जात कुत्तों से भी गई गुजरी है। चाहे कुछ करें चाहे न करें। बदनाम हम होंगे। मारे हम जायँगे।

मैं—ऐसी क्या बात है ?

"बाबू, तुम किसी और गाँव में जाकर ठहरो"—कहकर वह एकाएक रुककर खड़ी हो गई।

"तुम्हें मुझसे क्या डर है ?"

"डर बहुत बड़ा है। कोई कुछ कह देगा। हम गरीब नाहक मारे जायँगे।"

थोड़ी दूर चलकर मैंने पूछा—तुम्हारा नाम ?

"बतासी",—उसने सशंकित दृष्टि मेरे चेहरे पर डालते हुए कहा।

"अच्छा बतासी, तुम्हारे मर्द थाने किसलिए गये हैं ?"

"रोज ही जाना पड़ता है। कहीं कुछ हुआ कि हम पकड़े गये। मार-धाड़ रोज ही होती रहती है।"

"परन्तु क्यों ?"

"थानेदार और सिपाहियों की पूजा नहीं कर पाते।"

"कोई कारण तो होगा पूजा मांगने का उनका ?"

"हम जरायम पेशा लोग हैं। बस इसीलिए हमारी हर एक चीज पर पुलिस की आंख रहती है। हमारे घर में पहले वे खाते हैं पीछे हमारे मरद। हमारी लड़कियों को पहले वे भोगते हैं पीछे हमारे मरद। जरा इधर उधर किया और हमारा चालान हुआ।"

"यह तो बहुत बुरी बात है। तुम इसे क्यों सहते हो ? तुम यह पेशा छोड़ दो। खेती करने लगो। मेहनत मजूरी करने लगो।"

"पर कैसे करें ? हमारा नाम तो हमारे पुरखों के समय से पुलिस में लिखा चला आरहा है। आज हमारे कहने से हमें किसान और मजूर कौन मानेगा ?"

उस बेचारी को मार मारकर अधमरी कर दिया और भूखी प्यासी एक कोठरी में डाल दिया। मेरे साथ बाबू, मेरे साथ तीन तीन आदमियों ने जोर जबरदस्ती की। मेरा सारा शरीर घायल कर डाला। तीन दिन तक इसी तरह किया। परसों मुझे छोड़ा और आज सब मर्दों को थाने बुला लिया। कहकर-बतासी रो पड़ी। उसकी बड़ी बड़ी कजरारी आँखों में बरसात की झड़ी लग गई। उन्हें अपने अंचल से पोंछकर मुझसे कहा—यह रहा मेरा डेरा। यहां आप आराम करिये। चटाई बिछा देती हूं।

बतासी चटाई लेने चली गई। मैंने देखा, मैं गांव के बीच में था। मेरे चारों ओर युवतियां और बुढ़ियां, बच्चे और बच्चियां घिर आये थे। बतासी ने लाकर चटाई बिछादी और सबको मेरा परिचय दिया—परदेसी मुसाफिर हैं। राह भूल गये हैं। थके हारे झोंपड़ी में आ गये। मैंने कहा यहां आराम कर लो। पीछे चले जाना।

इसके बाद वह अपनी माँ को जाकर ले आई। कहा—देखो बाबूजी। यह हाल हो गया है इसका।

मैंने देखा बुढ़िया की देह में हड्डी बोटी टूटी थी। हड्डों की मारें सारे शरीर से उभर रही थीं। कराहते हुए उसने मेरे सामने अपनी सारी दुख कहानी निवेदन की।

मानव के द्वारा मानवता की दुर्दशा पर मैं मन मारकर रह गया। इसके सिवा मैं क्या कर सकता था!

इस सुन्दरी को। बताशी ने इसका एक हाथ अपने हाथ में लिए हुये कहा—बता दे पारू बाबूजी को आपबीती।

पारू के मुँह से लेकिन एक शब्द भी नहीं कहा। मैंने कहा—क्यों इसे संकट में डालती हो बताशी। वह न कह पायेगी।

बताशी—यह मेरे मामा की बेटी है। मेरे भाई से इसकी मंगनी हुई थी। मेरा भाई कुछ और तरह का है। जरायमपेशा वह नहीं रहना चाहता, जैसा आप कह रहे थे। यह और वह डेढ़ साल हुआ चुपचाप निकल भागे थे। सोचा था। इतना बड़ा देश है। कहीं जाकर रह लेंगे। अपने लोगों से दूर। मेहनत मजूरी करके गुजर करेंगे, भले लोगों की तरह। लेकिन हुआ क्या? पुलिस के थाने में इनके भागने की खबर होगई। जहां जहां गये वहां वहां मेरे भाई पर मार पड़ी, इसकी जने-जने ने दुर्दशा की। पीछे फिर यहीं आना पड़ा। क्योंकि थानेदार को इसकी जरूरत थी। मेरा भाई तो तीन महीने हुए, जमादारों की मार के कारण लुंज होकर पड़ा है। हाथ पांव इसका कुछ भी साबित नहीं है। रात को, दिन को थानेदार जब चाहते हैं बुलाते हैं इसको। खुद रखते हैं, और रात की रात के लिए दोस्तों या अफसरों को भेंट करते हैं।—यह है हमारा जीवन।

इनाम और तरक्की के लिए !—मैंने आश्चर्य में पड़कर पूछा ।

हाँ जी । इधर चोरी कराई । उधर माल लेजाकर किसी के घर बरामद करा दिया । उससे दुश्मनी निकाल ली । पैसा भी ले लिया और चोरी का पता लगा लेने की खैरख्वाही भी मिल गई । ये तो रोज की बातें हैं बाबूजी । यहाँ तो यही सलाह होती रहती है कि कैसे किसे सीधा किया जाय ।

घतासी ने पारू की बात की प्रामाणिकता पर मुझे विश्वास कराने की गरज से कहा इसे तो हमसे भी ज्यादा मालूम है । यह थाने में जाती जो है ।

घतासी की बात से पारू सकुचा गई, बोली—तुम्हें भी तो मालूम है । तुम्हें क्या थोड़ा मालूम है ? राधाकिसन सुनार के घर कैसे हुई थी चोरी ?

घतासी—हाँ बाबूजी, गरीब सुनार ने लड़की के ब्याह की तैयारी कर रक्खी थी । उसके घर चोरी करने का हुक्म हुआ । हमारे लोगों में से कोई तैयार नहीं हुआ । राधाकिसन सबका भला । सबका सहायक । उसकी लड़की का ब्याह । उसकी चोरी करके कौन रंग में भंग करे । लेकिन जमादारों की मार के डर से करनी पड़ी और फल यह हुआ कि राधाकिसन को थाने में लाकर धमकाया गया । उसकी औरत को बेइज्जत किया गया । लड़की और उसकी मा दोनों कुएँ में डूब मरीं । राधाकिसन गाँव छोड़कर भाग गया । घर का घर बरबाद होगया ।

को लूटमार और अत्याचार का काल कहता है। आज यदि वही मध्यकालीन इतिहासकार मेरे साथ होता तो इसे भी वह अपने समय के जनूनी सम्राट की करतूतों की सूची में ही दर्ज करता। क्योंकि अब और तब की घटनाओं में कोई विशेष फर्क नहीं है। जिसकी लाठी उसकी भैंस उस समय भी थी और इस समय भी है। तब भी आदमी को आदमी चूसता था अब भी चूसता है। बल्कि और नये नये तरीके चूसने के बरते जाने लगे हैं। कहीं धर्म के नाम पर कहीं कानून के नाम पर, कहीं जनता की सुख शांति के नाम पर कमजोरों और असहायों के रक्त-मांस ही का क्यों उनकी सांसों का भी व्यापार होता है।

आदमी ने कपड़े पहनकर अपने नंगेपन को छिपा लिया है। इसी तरह सुन्दर सुन्दर नारों और वाक्छल के द्वारा ऐसे आदर्शों की सृष्टि करली है जिसमें सीधे सादे गरीबों को भुलाये रखना सहज हो गया है। 'यतो धर्मस्ततो जय' जैसे उद्घोष वाक्छल के अतिरिक्त और क्या है? गरीबों को धर्म के पाठ पढ़ाना उनको सन्मार्गी भेड़ बनाये रखने के महामन्त्रों के सिवा कुछ नहीं है। इन सब आदर्शवादियों को नंगा करने की जरूरत है। जब तक ये सूक्तियां रेशमी वस्त्रों में लिपटी हैं तब तक ये सीधे सादे प्राणियों को ठगती रहेंगी। हर एक परम्परा का हमें नये सिरे से मूल्यांकन करना है। तभी रूढ़ धारणाओं पर से मोह छूटे बिना यह सम्भव नहीं कि हम उन संस्कारों से मुक्त हो सकें जो हमें सर्वांगीण विचार करने से बाधते हैं।

हैं। नदी के उस पार आ गये हैं। चलो, देख लो।

मैंने बतासी से पूछा—क्या बात है?

उसने उत्तर दिया—मरद सब थाने गये थे। वे लौट आये होंगे।

बतासी जल्दी से निकल गई। लौटकर घबड़ाई हुई सी आकर बोली—पारु, देख तो तेरा ननदोई नहीं आया है क्या?

पारु—काहे नहीं आया? आया होगा। तू तो ऐसे ही वहम करती है।

बतासी—अरी, देख तो निकलकर।

पारु कुछ जवाब दिये बिना ही चली गई। बतासी मुझे लक्ष्य करके कहने लगी—बाबूजी, वह नहीं आया है। मेरा जी धड़क रहा है। न जाने वह दिवान उसके पीछे क्या इन्तजाम लगायेगा। वह मेरे पीछे पड़ा है। वह मुझे खाये बिना चैन नहीं लेगा।

पारु लौट आई। सूना मुँह लिए। बतासी ने पूछा—नहीं आया?

"नहीं। खून के मामले में रोका है।'

"मैं जानती हूं। खून वह मेरा पियेगा।"

पीछे मालूम पड़ा बतासी के मरद ने जो अपनी स्त्री की दुर्दशा पर पागल हो रहा था हेड कांस्टेबल से भरे थाने में कहा था—दीवान के बच्चे, मेरा नाम रनकुआ नहीं जो तू इस थाने से जिन्दा लौट जाय। इस फाटक के सामने ही तेरी कब्र न बनवाई तो मैं मरद का बच्चा नहीं।

इसी पर मामला बढ़ गया था और दीवान ने [illegible] अनर्थ न हो जाय तब तक के लिए उसे रोक दिया।

बतासी ने सुनकर निराशा भरे स्वर में कहा—अब [illegible] उसे मार डालेगा।

लिये आये हो ?

"आदमी हूँ। थानेदार साहेब से मिलने आया हूँ।"

"तुम हमारे काम में दस्तन्दाजी करते हो ?"

"नहीं।"

"फिर यह सब पूछने का क्या मतलब है ?"

इसी समय फाटक पर कुछ गड़बड़ी सुन पड़ी। सबका ध्यान उधर चला गया। एक आदमी भीतर आना चाहता था और चौकीदार उसे रोक रहा था। दीवान जी ने आदेश दिया—आने दो। क्या बात है ?

आगन्तुक कहीं दूर से चलकर आया था। धूल उसके चेहरे पर छा गई थी। सांस जोर जोर से चल रही थी। दीवान जी ने पूछा—क्या चाहते हो ?

"दरोगाजी कहाँ हैं ?"

"दरोगा जी हरवक्त मौजूद नहीं रहते। तुम्हें जो कहना हो कहो। मैं दीवान हूँ।"

"दीवानजी, मैं सोनेलाल हूँ। एक हफ्ता पहले मानपुर में जो कत्ल हुआ था वह मैंने ही किया था। आप बयान दर्ज करें। मैंने अपने भाई का सिर काट दिया था। वह मेरी औरत से नाजायज ताल्लुक रखता था। मेरे मना करने पर भी जब नहीं माना तो मैंने उसे कत्ल कर दिया। आज अपनी औरत को भी कत्ल करके मैं सीधा यहीं आ रहा हूँ। मेरी धोती पर ये खून के छींटे पड़े हैं।"

दीवानजी ने हुक्म दिया—इसे हवालात में बन्द कर लो। मैं अभी बयान दर्ज करता हूँ।

किया। हामिद मियाँ ने पूछा—रमेश, तुम्हें कभी शादी न करने का खब्त था?

मैंने कहा—था तो सही।

"खुदा का शुक्र है तुमने उसे खब्त मगर तो किया।"

"खब्त ही था जो अब तक सिर पर सवार है।"

"तुम्हें मेरी कसम, सच कहो। अब तक तुम कुँवारे हो? शादी नहीं की तुमने?"

"तभी तो बरबादी से बचा हूँ। शादी करता तो कभी का जहन्नुम रसीद हो गया होता। फिर एक साकिन तो तुम लोगों ने सर पीछे लगा ही दी है उसी की मिजाज पुरसी से फुरसत नहीं मिलती। एक और शादी करके क्या अपना गला फँसा लेता?"

"किसे लगा दिया है हमने?"

"इसे"—चाय के प्याले की तरफ मैंने इशारा करके बतलाया।

इस पर दरोगाजी और हामिद मियाँ दोनों ही जोर से हँस पड़े।

हामिद ने मुस्कराते हुए कहा—तब तो यार तुम्हारी शादी हुई नहीं। लेकिन मंजिल तो कर ही चुके हो।

मैंने कहा—जरूर ।

मैं बाहर निकल आया और एक ओर चल दिया । देखा सामने एक पेड़ की छाया में बतासी एक आदमी के साथ बैठी है । मुझे दूर ही से देखकर पुकार उठी—बाबूजी !

इसके बाद वह मेरे पास आगई और पैर पकड़ लिए । कहा—भगवान आपका भला करें । आप न होते तो हमारी न जाने क्या दुर्गति हुई होती ।

बतासी के मर्द ने भी कृतज्ञता की दृष्टि से मुझे देखा ।

मैंने कहा—तुम जाओ । मैं डिप्टी साहब से कहूँगा कि तुम लोगों का नाम जरायमपेशा की लिस्ट से हटा दिया जाए । आगे से तुम्हें अपने चालचलन को ठीक रखना होगा ।

बतासी और उसके मर्द दोनों ने इस पर प्रसन्नता प्रकट की ।

आपको चलकर हम लोग पहुँचा आवें—उन्होंने पूछा ।

मैंने कहा—नहीं, मैं चला जाऊँगा ।

मैं अपने रास्ते पर चल दिया ।

मैंने कहा—ये नोट मेरे नहीं हैं।

धनियां की मां बोली—नहीं, बाबा, इसी पोटलिया में से तो गिरे हैं। हमारे घर नोट कहां से आये? हम गरीब आदमी। एक कौड़ी पास नहीं।

मेरे चलते समय विशाखा ने ही यह सारा प्रबन्ध कर दिया होगा, यह सोचकर मैंने कहा—तो भी रख लो माताजी। यह अतिथि सत्कार का प्रसाद है।

घर के मालिक की आंखें खुल गईं। बोला—परीक्षा मत लो स्वामी!

मैंने कहा—मेरी इतनी बात मानो। रात भर के लिए रख लो। सबेरे जब जाने लगूंगा तो ले लूंगा।

उसने धोती के खूंट में बड़ी सावधानी से नोटों को बांध लिया और बकरे को बाहर लाने चला।

एक साल भर की उम्र के होने से दुबले पतले काले बकरे को वह खींचकर ले आया। रात में इस प्रकार आग के समीप लाये जाने से बकरा भयभीत हो उठा। वह में में करता हुआ पीछे भागने का यत्न करने लगा। मैंने पूछा इसे क्यों लाये हो?

रहकर कब सोया पता नहीं । अँधेरे चार बजे के लगभग आँख खुल गई । पुआल पर पड़े पड़े देह अकड़ गई थी । उठकर बैठ गया और सोचा—यही समय चुपचाप चलने का है । मेरा क्या है जहाँ जाऊँगा खाने पीने का प्रबंध हो जायगा । फिर उन रुपयों के आसरे तो मैं निकला नहीं था । [illegible] की भेंट का इससे अच्छा उपयोग और क्या होगा ?

मैंने चुपचाप अपना झोला उठा लिया और घर के बाहर निकल आया । अँधेरा अभी छाया हुआ था । तारों की छाँह में बदन में चादर लपेटे और कंधे पर झोला डाले मैं खेतों के बीच से होकर चल पड़ा । कोई इस समय रोककर मुझे पूछता कि इतने तड़के कहाँ जा रहे हो तो मैं क्या उत्तर देता, मैं यह नहीं जानता । मुझे केवल एक ही धुन थी कि कहीं भगिनी की माँ के अनुरोध से विवश होकर उनका धर्म भीरु पति अतिथि भगवान की खोज में पीछे दौड़ा न आ रहा हो । नहीं तो सारा खेल खत्म हो जायगा । एक दो पीढ़ियों तक उनके परदादे का ऋण और आगे चलता जायगा ।

स्मृति से वह्निक्रान्त चाँद की मुझे याद आ गई। मेरे राई से त्याग के साथ हिमालय समान उसके पृथुल त्याग को याद करना मेरे लिए कोई शोभा की बात नहीं थी। फिर भी आदमी का स्वाभाविक छिछलापन कहाँ जावे? मेरा मन बारम्बार चाँद से ईर्षा करने लगा। इतना महनीय कार्य करने से ही उसके मुख पर शान्ति और सन्तोष की आभा विराजती है। उसकी एक किरण भर मेरे आचरण में झाँक पाई है कि मेरे उल्लास की सीमा नहीं है।

धूप में प्रखरता बढ़ चली। मेरी गति का प्रवाह जारी था। कहाँ ठहरना होगा, इसका अभी कोई विचार न था। मेरे मुँह के सामने उत्तर दिशा को लक्ष्य करके यदि सीधी रेखा खींची जाये तो सामने से गुजरती हुई पक्की सड़क को काटते समय वह चार समकोण बनायेगी। वहीं पर घने वृक्षों की छाया में से एकाएक स्त्रियों के चीखने चिल्लाने की आवाज सुन पड़ी। मैं उधर ही जा रहा था। कुछ तेजी से बढ़ गया। देखा, एक बैलगाड़ी के पास दो स्त्रियाँ और तीन बच्चे रो रहे हैं। गाड़ी का परदा अलग जा पड़ा है। गाड़ी छोड़कर बैल न जाने कहाँ भाग गये हैं। गाड़ीवान का भी पता नहीं है।

पार किया। दूसरे को पार-करके तीसरे को। पाचवें खेत की मेड़ पर जब मैं पहुँचा तो खेत के भीतर आदमी के कराहने की आवाज सुनाई दी। मैं उसी को लक्ष्य करके खेत मे प्रविष्ट होगया। भीतर जाकर देखता क्या हूँ कि एक आदमी जिसके लँगोटी छोड़कर सब कपड़े उतरवा लिये गये हैं, जमीन पर पड़ा है उसके हाथ पाव जकड़े हुए हैं।

मुझे देखते ही उसने बताया—सब कुछ लूट ले गये है।

मैंने बड़ी मुश्किल से उसे बंधन मुक्त किया और अपने साथ लाकर गाड़ी के पास खड़ा कर दिया। दोनों स्त्रियों के जी मे जी पड़ा। एक ने मेरे पांव पकड़ लिए और कहा—भगवान् तुम्हें जुग जुग जियावे भैया!

दो पत्नियों के लाडले पति का अभाव दूर हुआ तो उन्होंने दूसरी की चिन्ता की। सब से पहले चम्पा के लिए उनका माथा ठनका। किसानों और कमकरों से ब्याज मे कमाये हुए पैसों से जवान बेटी को गहनों और कपड़ों से लादकर मेला दिखाने लिये जा रही थीं कि रास्ते में यह प्रलय काण्ड मच गया। लाला हरलाल अपनी दुर्दशा तो भूल गये। चम्पा के लिए उनका जी व्याकुल हो उठा। उन्होंने कांपते हुए कण्ठ से कहा—तुमने यह भी नहीं देखा कि लड़की कहा गई। कहीं डाकू तो नहीं ले गये उसे ?

उन्हीं का गाड़ीवान है। वह भागकर गाँव के आदमियों की मदद लेने गया था। कई लोग लाठी ले लेकर डाकुओं के पीछे जा चुके हैं।

इस समाचार से कुछ राहत हुई लेकिन चंपा का कोई अनुसंधान न मिला। गाड़ीवान भी न बता पाया कि वह कहाँ गई। लाठी की चोटों से लालाजी की हड्डियाँ दुख रही थीं। उनकी दोनों स्त्रियों के कान और नाक से खींच खींचकर गहने उतारने के परिणाम स्वरूप खून निकल रहा था।

पूरब की ओर से गाड़ीवान अभी आया था। दक्षिण की ओर एक बड़ी लंबी चौड़ी झील थी। उत्तर की ओर सीधी सड़क चली जा रही थी। इन तीनों दिशाओं में चंपा के मिलने की संभावना न जानकर मैं पश्चिम दिशा की ओर चल पड़ा। लाला जी और उनकी दोनों स्त्रियों को अच्छी तरह समझा दिया कि यदि लड़की का पता लगा तो मैं लौट कर खबर दूँगा नहीं तो नहीं।

मैं चला और साँझ तक चलता रहा। बीच बीच में पेड़ों पर चढ़कर भी पता लिया परन्तु चंपा का कहीं चिह्न दिखाई न दिया। जाने कौन ले गया उसे? आज भी कभी कभी मैं सोचा करता हूँ कि आखिर चंपा अपने मा बाप को मिल सकी या नहीं।

सेठजी—कहीं छटपटाकर चारपाई से नीचे गिर पड़े।

मैं—मैं ध्यान रक्खूँगा।

इसके बाद मैंने लगभग पौन घंटे तक लक्षणों की मीमांसा करके अपने पास की तीन चार दवाओं में से एक की कुछ बूँदें गिलास के पानी में मिलाकर दीं। एक खुराक अपने हाथ से बीमार को पिलाई और कहा—आधे आधे घंटे से तीन खुराकों के बाद फिर दो घंटे से देनी होगी।

सेठजी ने कहा आपके खाने पीने का यहीं प्रबंध कर लिया है। आप कृपा करके जायें नहीं यहीं पर सो जायें।

इस सुन्दर और उपयुक्त प्रस्ताव का विरोध करने की मूर्खता मैं क्यों करता? अच्छी तरह भोजन किया। बीमार के पलँग के पास ही आरामकुर्सी पर लेटकर नींद ली। बीच बीच में दवा पिलाने के लिए जागा तो देखा कि रोगी सुख की नींद सो रहा है। उसे जगाकर दवा पिलाने का हठ मैंने नहीं किया। इसका परिणाम और भी अच्छा हुआ। लम्बी और गहरी नींद के बाद जब सबेरे उसने आँखें खोलीं तो अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव किया। मैंने सेठजी को भीतर बुलाकर कहा—अब मुझे जाना होगा। आकस्मिक प्रकोप था। अब कोई डर नहीं है। सिर्फ थोड़ी सी आराम की जरूरत रहेगी।

सेठजी बोले—थोड़ी देर और ठहर जाइये। नहा धोकर भोजन करने के बाद ही जाइयेगा।

मैंने स्वीकार कर लिया।

में कभी न मिलती, क्यों डाक्टर साहेब ?

इसकी मुस्कराहट में शरारत भरी थी। इसे मैंने पूरी तरह लक्ष्य कर लिया। कमरे से बाहर जाते मुझे कल रात के अपने साथी की बातें याद आ गईं। उसे, जिसने मुझे ठोक पीटकर वैद्यराज बनाया था, इस समय भी याद न करता तो बड़ी कृतघ्नता की बात होती।

इतनी माहिर है कि बस कुछ मत पूछो।"

"तो और क्या बात हुई ? मैंने जो समझा था उसमें कोई नई बात तो निकली नहीं।"

"सानम, देखो इसमें तुम्हारा अन्याय है। इसमें कोई नई बात नहीं, यह भला तुम कैसे कहती हो ?"

"सिर्फ शब्दों के हेरफेर से बात का आशय थोड़े ही बदल जाता है।—क्यों साहब बोलिये न ? आप तो सब कुछ सुन चुके हैं ? मैं सही हूँ या ये सही हैं।" आखिरी शब्द सानम ने मुझे लक्ष्य करके कहे।

"आप दोनों ही सही हैं, यह कहकर भी मैं इससे इन्कार नहीं कर सकता कि आदमी औरतों को अपने रास्ते से चलाने की हमेशा जिद करता है और इस तरह उनके साथ न चाहते हुए भी वह अन्याय कर डालता है।"

मेरी बात पर हामिद और सानम दोनों ही हँस पड़े। कहा—आपने तो दोनों को खुश कर दिया।

हामिद ने चुटकी भरी—नई भाभी से नई मुलाकात है। उनके खिलाफ कैसे कह सकते हैं ?

तजुर्बा है कि किसी की पहली बीवी पर तो आंख मीचकर यकीन किया जा सकता है। दूसरी से धोखा ही धोखा होता है, और तीसरी तो माशाअल्ला—तीसरी से खुदा वास्ता न डाले।

चाय बनाती हुई खानम के कानों में ये बातें पड़ गईं। वह वहीं से बोली—रमेशबाबू, आप पंच की जगह हैं। दोनों तरफ की सुने बिना फैसला मत देना।

या खुदा, अब तो किसी तरह खैर नहीं है—कहकर हामिद ने अपना कान पकड़ लिया और शेरवानी को सँभालते हुए इस तरह भागे कि मैं जोर से हँस पड़ा।

खानम ने कहा—मियां भागने से पनाह थोड़े ही मिल जायगी। मेरी हजारी का जवाब देना होगा। पहली औरत को बदनाम करने से वह बात साबित होती है। दूसरी के सिर तोहमत लगाना उससे ज्यादा होता है, और तीसरी तो सिर पर बदनामी का टोकरा लेकर ही आती है। नहीं तो इस तरह मुँह न चलता।

मुझे ही इसकी जरूरत पड़ी।

दुखिया के जीवन में आशा की किरणों के समान सुनसान बियाबान में मुसाफिरों ने इस स्थान को अपनी पसन्द से पड़ाव बना लिया था। आसपास दूर तक कोई बस्ती नहीं थी। मुसाफिरों की इस जरूरत-पूर्ति के लिए लाला देवीदीन ने कहीं से आकर अपने गुजर बसर की परवाह न करके दो चार लकड़ियों से घेरकर अपनी दुकान मकान घर गृहस्थी सब कुछ बसा रक्खी थी। देहात के मुसाफिर की हर तरह की जरूरत उनके पाँच सात सौ साज सामान से पूरी हो जाती थी। नोन तेल, चना-चबेना, बीड़ी सिगरेट सबका व्योपार वे कर लेते थे। जाड़ों में चाय का कुल्हड़ और बरसात की दो चार बूटी नोटें भी औषधि के रूप में रहती थी।

गगा के दिये हुए जल से गला सींचकर मैंने बकरी का दूध पिया। शरीर में कुछ बल आया पर एक तरह की ऐसी पीड़ा और जलन का मैं अनुभव कर रहा था कि जी उठकर बैठने को नहीं होता था। गगा ने यह समझकर कहा—मेरे शरीर का सहारा लेकर चलो यह जगह छोड़ दो। उस पेड़ की घनी छाया में आराम भी ज्यादा मिलेगा।

मेरी आँखों के सामने मृत बाबू का प्रेतात्मा अपनी भयाकार काया में खड़ा मुझे डराने लगा। कभी जिस पर भूलकर भी विश्वास नहीं किया था वही इस सुनसान कालीरात में आँखें फाड़ फाड़ कर मुझे ताक रहा था। एक हल्की सिहरन से शरीर के रोंगटे खड़े होगये थे। मैंने हिम्मत से गगा के मांसल शरीर को बाहुवेष्टित करके मैं खड़ा होगया। उस समय एक क्षण के लिए मेरे मन में यह विचार न उठा कि मैं पुरुष हूं और वह नारी है। मेरा मन चारों ओर से एक ही विचार पर केंद्रित हो रहा था कि कैसे मैं घुमड़ रहे भय के वातावरण से निकल जाऊँ।

देना होगा? तुमने मेरे प्राण बचाये हैं। मेरे पास जो कुछ है तुम मांग सकती हो।

माँगने से कोई चीज मिलती है? देने से कोई चीज दी जाती है?—कह कर वह गंभीर होगई। अँधेरे में मैं मालूम न कर सका कि उस नारी के हृदय में कैसे विचार उठ रहे हैं। पीछे सहज कंठ से उसने पूछा—क्या दवाई दी है, तुमने जान पाई?

मैं—तुम्हारी इस दवाई के जोर से ही तो मैं जीवित हूं। यह मेरी बचपन की साथिन है।

गंगा—चाय है।

मैं—हाँ, चाय है।

लगा जैसे मेरे हाथ कट गये हों। मैंने व्यथित और दुःख [illegible] से पानी तथा साहूकार और उपकारी के वेष में चोरों के सिरताज को [illegible] कोसा।

दवाओं के अभाव में जो परिचर्या संभव थी मैंने की। उस गरीबी [illegible] में, अनजान सुनसान जगह में, मैं विशेष कर ही क्या सकता था? गंगा मेरे आदेश के अनुसार भागभाग कर जो मैं मांगता उसे लाकर देती रही। भाग्य, भगवान् और पानी के भरोसे इतनी कठिन बीमारी को [illegible] दिया, जो प्राय नब्बे प्रतिशत गरीबों के लिए साधारण सी बात है।

रोगी 'पानी पानी' की रट लगाये था। इधर पीना उसे [illegible]। उस छोटी सी तंग जगह में इतनी गन्दगी फैल गई थी कि मैं घबरा गया। परन्तु वाह री गंगा! जगह जगह पर सफाई करती। [illegible] लाकर बिछाती। बाहर थोड़ी सी आग जला रक्खी थी। उसी के [illegible] में मैं उसके सुगठित यौवन के वरदान से [illegible] शरीर को [illegible] देखता था। अपनी समस्त शक्ति लगाकर वह लड़ रही थी। [illegible] थी। उसके मुँह में एक ही रट थी—बाबा न जाने कहाँ रह गये? [illegible] तक आयेंगे!

को छोड़ जायगा ? रात दिन 'अम्मा अम्मा' की रट लगाये था, आखिर अम्मा के पास पहुंच जायगा। पर मैं क्या करूँगी ? मैं कहाँ जाऊँगी ? लल्ला तुम कहाँ गये ? आकर बताते नहीं। गगा कहाँ जाय ? तुम्हारी गगा को कहाँ ठौर है ? सास गई, ससुर गये। आदमी गया। अम्मा गई। भैया चला। गगा को जाने को ठौर नहीं। वह कहाँ जाय ?

इस तरह के उसके हृदय-विदारक विलाप से व्यथित हो मैंने कहा—आखिर समय तब आता है। अभी से निराश क्यों होती हो गगा।

"आता है, तुम कहते हो आता है ? जरा उसका मुँह तो देखो। आँखें कहाँ धँस गई हैं, आम की फाँक जैसी मेरे भैया की आँखें।"

सचमुच ही चेहरा इतना बिगड़ गया था कि पहचाना नहीं जाता था। आँखें अपने कोटरों में धँस गई थीं। [illegible] गई थी, उससे भली भाँति इतना देखा जा सकता था।

मैंने कहा—देखो कुछ मत। राम-राम करो। वही मालिक है। वह चाहेगा तो—

"नहीं। अब उसके चाहे भी कुछ न होगा। लाओ थोड़ी देर इसे भैया को गोद में तो सुला लूँ।"

पड़ी गंगा को। दोनों अवाक्, दोनों निस्पन्द, दोनों विजड़ित।

मैंने कहा—निमूढ़ से क्या खड़े हो। उसकी गोद से बालक के शव को हटाओ।

मेरे वाक्य ने निस्तब्धता को भंग कर दिया। बप्पा को मानो में जीवन की हलचल प्रतीत हुई। वे आगे बढ़कर बालक की मृत देह को उठाने का उपक्रम कर ही रहे थे कि पीछे से एक नारी कण्ठ ने गरज कर कहा—क्या कर रहे हो? मुझे ऐसे हत्यारे के घर में ही लाकर डालना था तो पहले ही बता देते। मैं तुम्हारे साथ आने से पहले चार बार सोच समझ लेती।

बप्पा का बढ़ा हुआ पग रुक गया। नारी कण्ठ की इस कठोर गर्जन से गंगा का चेत लौट आया। उसने पुतलियां फिराकर मुझे, बप्पा को, फिर बाहर खड़ी हुई नवागत माँ को देखा।

तो उसकी गोद में वह बेटिया पड़ जाती होंगी। न बाबा, इस घर में मेरा निबाह न होगा।

इस स्त्री के अशोभन हल्लेगुल्ले को सुननेवाला यद्यपि वहां हम दोनों के सिवा कोई नहीं था तो भी लज्जा से मेरा सिर जमीन में गड़ गया। जी में आया कहीं ऐसी जगह जाकर छिप जाऊँ जहाँ नारी का ऐसा अभद्र रूप दिखाई न पड़े जिसकी मैंने अपने जीवन में कभी कल्पना न की थी।

कप्पा की नई बहू तिनककर चार हाथ दूर जा खड़ी हुई। गंगा वज्राहत सी मुँह झुकाये बैठी यह नाटक देख रही थी। इतनी देर में अपने को बटोरकर वह शांत भाव से बोली—इसकी बातों का भी कुछ विचार करोगे बाबूजी, तब तो बालक की देह की ख्वारी हो जायगी।

गंगा के इस साहस से मुझे धैर्य बँधा। मैंने कहा—तो क्या करना होगा?

गंगा—यह चादर देती हूँ। इसमें लपेटकर इसे ले चलेंगे।

उसने चादर निकालकर बालक की मृत देह पर डाल दी। कप्पा से जैसे सरोकार ही न रह गया हो और जैसे मैं ही उसकी गृहस्थी का निर्वाहक होऊँ इस तरह वह मुझसे बरतने लगी। मुझे भी वर्तमान परिस्थिति में यह कोई अयुक्त न प्रतीत हुआ।

इस घर में मेरा रहना अब बनेगा नहीं, और कोई जगह सूझती नहीं जहाँ चली जा सकूँ।"

नई अम्मा और बप्पा कब नहा कर लौट आये थे इसका ध्यान हम में से किसी को नहीं था। पर जब हमारे बीच चल रही बातों में एक तीसरा अनिमन्त्रित कंठ शामिल होगया तो हम समझ गये कि हमारी बातचीत हम दोनों तक ही नहीं रहने पाई है।

वे बोलीं—यही बात तो मैं तुम्हारे बाप से कह रही थी। जवान लड़की का बाप के घर कैसे निभाव होगा? तुमने इन भैया से मन मिलाकर बेटी कोई ऐसी बात नहीं कर डाली है जो तुम्हारी उमर की मेहरिया के लिए अनहोनी हो या अँगुली उठाने लायक हो। तुम पहली बार ही मिले हो सही पर तुम दोनो को देखकर लगता है जैसे तुम्हारा हेलमेल बहुत पहले से हो। तुम दोनो मेरी बात का बुरा मत मानना। तुम्हारे बाप बहुत कह सुनकर मुझे ले आये हैं। इस जरा सी झोंपड़ी में हम दोनों के लिए ही ठौर नहीं है। सब रहें भी तो कैसे रह सकेंगे? तुम्हें भी आराम नहीं, हमें भी आराम नहीं। तुम्हारे हँसी खेल के दिन। अपने अकेले घर में रहो हँसो, खेलो, बोलो। हमारे साथ रहे तो मन की मन में लिये रहोगी। लाज, सरम, सकोच में मरती रहोगी। सो मेरी हमारी बात कड़वी चाहे लगे पर फल मीठा आयेगी। आज नहीं तो कल तुम इसे मानोगी।

गंगा मेरे से जो कह रही थी वह उसके गले में ही अटक रहा। वह एकटक दृष्टि से इस व्यवहार-कुशल और मुँहफट स्त्री के चेहरे की ओर ताकती रह गई।

जब वह अपना उपदेश समाप्त कर चुकी, तो गंगा से न रहा गया। बड़ी देर से वह भीतर ही भीतर उबल रही थी, इसलिए अब झुंझलाहट के साथ बोली—मुझे किससे नाता करना है क्या यही निर्णय कराने के लिए बप्पा तुम्हें यहां लाये हैं? यदि यही बात है तो उन्होंने बड़ी भूल की। मैं किसी की राह से बँधी नहीं हूँ। इस घर में

गंगा सिसक सिसक कर रोने लगी। मैंने कहा—धूप तेज होरही है। मैं ठहरूँगा नहीं गंगा। विश्वास रक्खो, भगवान् तुम्हारे लिए कोई मार्ग निकाल देंगे।

मेरी बात उसकी सिसकियों में लीन होगई। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। किसी तरह का प्रतिवाद नहीं किया। मैं जी कड़ा करके अपने रास्ते पर चल पड़ा। मेरा रास्ता, जीवन पथ की भांति, सुख दुख आकर्षण-विकर्षण, त्याग और प्रलोभन से भरा हुआ है। यदि हर एक के लिए मैं ठहरने लगूँ तो यात्रा पूरी कैसे हो? निठुर, निर्मोही बने बिना मेरा काम कैसे चलेगा? कितनों को छोड़ आया हूँ। कितनों को छोड़ता जाऊँगा। गंगा तू रोती रह, पारू तू याद किया कर, विशाखा तू प्रतीक्षा में बैठी रह, कल्याणी तू आंसू पिया कर, मैं तो चला जा रहा हूं। मेरा मार्ग बहुत लम्बा है, किस पड़ाव पर फिर किस दिन पहुँचना होगा। यह घटनाओं के चक्रव्यूह में कौन जान सकता है? कहां कब किसके साथ बँध रहना होगा, कहां जाकर यह प्रवाह रुक जायगा, इसका कुछ पता नहीं। कुछ निश्चय नहीं।

एक किसान परिवार खेत में झोपड़ी डाले था। ठीक दोपहरी में मेरे जैसे अतिथि को पाकर उसने अपने को धन्य माना। अपने खाने की मोटी रोटी और मट्ठा से बड़ी आवभगत से मुझे साझीदार बना कर उसने आतिथ्य भी किया और उपकार भी। ऐसा तृप्तिकर भोजन बहुत दिनों में मिला था। खा पीकर मैं निश्चिन्त हुआ। जब दूसरे दिन चला तो उसने पैदल न जाने देकर अपनी बैलगाड़ी जोत दी। कहा—जब कब कभी भगवान हम गरीबों के घर आते हैं। पैदल आपको कैसे जाने देंगे। घर के बैल हैं, घर की गाड़ी है। इसी पर आपको पहुँचायेंगे।

दिन के कठिन श्रम का बदला चुका दिया जाय वहां श्रम के प्रति लोगों में नीची भावना क्यों न हो ? तो भी उस युवक के प्रोत्साहन से मैंने सोचा, हर्ज क्या है इन लोगो के जीवन को समीप से देखने के लिए फिर कब समय मिलेगा ? मैं तैयार होगया। उसके साथ मैंने भी फावड़ा उठा लिया। मिट्टी पर फावड़े को आजमाया। थोड़ी देर तक विनोद मालूम पड़ा। जिन हाथों में सदा कलम ही पकड़ी थी। उनमे फावड़ा कितनी देर तक आनंद का कारण बन सकता था ? मैं थोड़ी ही देर मे हाफ गया। हाथों की चमड़ी दुखने लग गई और मैं बार बार हथेलियों को देखने लगा कि छाले तो नहीं पड़ गये हैं। मेरा साथी युवक मुझसे भी शरीर मे कोमल था पर वह इस कार्य से अभ्यस्त होगया था। वह इधर उधर ध्यान दिये बिना अपने कार्य में लगा था। मैंने पूछा—तुम यहीं के हो ?

"नहीं—एक संक्षिप्त सा उत्तर मिला।"

"यहा कितने दिन से काम करते हो ?"

"ग्यारह दिन से।—अपना काम किये जाओ। गुमाश्ता जी देखने आयेंगे। उन्हें काम दिखाई पड़ना चाहिए।"

मैंने कहा—यह काम मेरे वश का नहीं है।

मेरी बात सुनकर उसने एक बार गर्दन टेढ़ी करके मेरी ओर देखा। मुझे लगा कि उस दृष्टि मे एक शीतल मरहम है जिससे थके आदमी को थोड़ी राहत मिल सकती है। उसने फिर अपने आपको काम में लगा लिया।

मैंने कहा—बड़ा कठिन काम है।

मैंने कहा—तुम क्या ओढ़ोगे ?

"मुझे नहीं चाहिए।"

"क्यों, सर्दी नहीं लगती तुम्हें ?"

"नहीं।"

"तब तो अच्छी बात है" कहकर मैंने कपड़ा बदन पर डाला और पड़ा रहा। सवेरे कुछ उजाला होने पर देखा कि मैं एक जनानी ओढ़नी लिये पड़ा हूं। मैंने पूछा— यह ओढ़नी किसकी है भाई ?

लोचन पहले ही वहां से उठकर चला गया था। मेरी बात का कोई उत्तर नहीं मिला। मैंने ओढ़नी तह करके उसके सामान पर रख दी और पास की नहर में नहाने धोने चल पड़ा।

नहाकर लौट रहे लोचन से मैंने पूछा—जनानी ओढ़नी किसकी साथ लिए फिरते हो ?

ओठों पर सदा खेलनेवाली मुस्कान के साथ उसने उत्तर दिया—भाभी की।

"तब तुम भाभी को पूरा पूरा धोखा दे आये हो।"

"कैसे ?" उसने सहास पूछा।

"खुद भाग कर। उनकी चीजें चुरा लाकर।"

"और जो उन्होंने ही दी हो ?"

"वे क्यों देने लगीं ? भगोड़े आदमी को कोई कुछ क्यों देगा भला ?"

"निशानी भी नहीं देगा ?"

"तो भाभी की निशानी लिए फिरते हो ?"

नहीं बताता। कपट ही कपट है।"

"यह तो कोई नई बात नहीं है। जहां आदमी है वहीं कपट है, वहीं अविश्वास है। वहीं धोखा और वहीं छल है। इसके बिना आदमी का काम जो नहीं चलता है।"

"घरों में बंद। छतों के नीचे अपने स्वार्थ के लिए वह जो भी करे लेकिन खुले आसमान के नीचे, पवित्र वायुमंडल के बीच, अकारण घृणा करने की क्या आवश्यकता है?"

"भेड़िया सब जगह है। आसमान हो चाहे जमीन। मंदिर हो चाहे बूचड़खाना। तीर्थ हो चाहे दूकान स्वभाव किसी का बदलता नहीं है। पर यह सब इसी समय सोचने की जरूरत क्यों पड़ी?"

"इसलिए कि तुम्हारे प्रति मेरे मन में किसी ने संशय पैदा कर दिया है। तुम स्त्री हो चाहे पुरुष यह जानकर मेरा कुछ आता जाता नहीं है तो भी उस बुड्ढे की बातों ने मेरे मन में एक अशांति पैदा कर दी है। मेरे लिए अब यहां ठहरना ठीक नहीं है।"

मेरी इस बात ने उसके चेहरे के सहजभाव को एक दम बदल दिया। उस पर कुछ देर में काबू पाकर उसने कहा—तब तो तुम्हारे लिए नहीं मेरे लिये यहां से भाग जाना आवश्यक है। स्त्री स्त्री के रूप में पहचानी जाकर क्या कहीं एक क्षण के लिए भी निरापद है?

"सो तो ठीक है, परन्तु—"

डाल डालकर तुम उसके भाग्य की प्रशंसा नहीं कर सकती।—करती हो, तो उसका उपहास करती हो। तुम्हारी ही तरह अन्य अनेकों का आभार इस शरीर पर है। जिस दिन उस ऋण का अंश हलका करने की स्थिति में हो जाऊँगा उस दिन समझूँगा कि मैं सचमुच भाग्यशाली हूँ।

अपने व्यंग्य के इंगित और मेरे उत्तर के बीच की असंगति को उसने समझ लिया। कितनी ही फूहड़ स्त्री हो प्रेम की भाषा के गूढ़ इशारों को समझने में वह सहज समर्थ होती है। वह बोली—यह तो हँसी की बात थी।

"मैं भी समझता हूँ।" मैंने कहा।

एकान्त निर्जन में अपनी इच्छा से एक छद्मवेशिनी नारी एक पुरुष की सहचरी अन्तर के पूर्ण विश्वास के बिना नहीं हो सकती। तब भी उसे अपनी भावनाओं में ठेस लगने का खटका हो तो इतना साहस वह नहीं करेगी, यह स्पष्ट है। लेकिन दुनिया क्या इस सत्य की कठोरता को स्वीकार करने के लिए तैयार है? पर दुनिया की चिन्ता उसने उस दिन भी नहीं की थी जब अपने मामा का घर छोड़कर निकल आई थी। और अपनी रक्षा अपने उपाय से करने में समर्थ हुई थी। अब भी दुनिया की बात की चिन्ता किये बिना ही वह अपने रास्ते चली जा रही है। यही सोचकर वह बोली—सुख में दुख में हम दोनों बहुत दूर तक एक दूसरे के सहायक हो सकते हैं।

"लूट का माल झपटने की होड़ाहोड़ी में जो प्रवृत्त हों उन्हें अपने भरोसे और विश्वास का पात्र समझना ही कुछ अशोभन सा है। मेरे पिताजी ने बचपन से मेरे मन को अपने सुसंस्कृत विचारों में इतना डुबो दिया है कि किसी बात के व्यावहारिक और उपयोगी पहलू तक ही सोचकर मैं नहीं रह जाती उसकी शोभनता अशोभनता को लेकर भी थोड़ीबहुत उधेड़बुन किया करती हूँ यद्यपि उनकी यह देन मेरे सुख दुख दोनों को बढ़ाने का कारण बनी है।

सौंदर्य बोध की इसी भावना ने मुझे ऐसा करने से वंचित कर रखा और इसी कारण मैं वहाँ से निकल भागी। स्त्री का जीवन यों ही आधार पर जमी लता की भांति अस्थाई और परवश है। फिर यदि वह समाज द्वारा स्वीकृत परंपरा के अनुसार भी न हो तो उसकी समाज द्वारा, अवहेलना और अपमान की वस्तु इस दुनिया में दूसरी नहीं है। इससे कम मैं उसकी कल्पना नहीं कर सकती।"

मैं—लेकिन आँधी कम होरही है।

'और सर्दी बढ़ रही है'—उसने कहा।

उसका कथन सत्य था। सर्दी के कारण खून जमता मालूम होता था।

मैंने कहा—जो भी हो अब वृक्षों की छाया तले पहुँच जाना चाहिए।

सुलोचना—तो मुझे अपना हाथ दो। गिरने से मेरे घुटने में चोट आगई है। बिना सहारे के चलना कठिन है।

अँधेरे में अन्दाज से मैंने उसकी ओर गति करते हुए अपना हाथ बढ़ा दिया—चोट कब लगी थी? तुमने बताया तो नहीं।

"बताने से इस आँधी पानी में कोई इलाज हो सकता था?"—कहकर अपने दोनों हाथों से उसने मेरी बाँह का सहारा लिया पर मुझे मालूम होगया कि इतने पर भी वह उठकर चल सकने में समर्थ नहीं है।

मैंने पूछा—अधिक कष्ट है? चल न सकोगी?

कोई उत्तर न देकर एक बार पूरी शक्ति से उसने उठने का प्रयास किया पर न उठ सकी। पीड़ा से व्याकुल उसने मेरी बाँह छोड़ दी और धड़ाम से पृथ्वी पर जा पड़ी। चोट पानी और सर्दी के संयोग से और भी दुखदायी हो उठी थी।

मैंने कहा—यों न होगा।

खड़ी हो सकूँ?" उसने कहा।

"थोड़ी देर ठहर जाओ।" कहकर मैंने मसलना जारी रखा। थोड़ी देर घड़ी में उसे उठकर खड़े होते और चलते देखकर मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा। सेठानी की चिकित्सा कर यश और पैसा पाया था पर आत्मानंद नहीं। आज अपनी युक्ति को सफल होते देखकर रोम रोम खिल उठा। थोड़ी देर पूर्व जिसे हृदय विदारक पीड़ा से व्याकुल पाकर मैं व्यग्र हो रहा था अब उसके ओठों पर खिल उठी मुसकान से मन प्रसन्न हो गया।

मैंने पूछा—सरदी अब भी लग रही है?

"हाँ थोड़ी थोड़ी।"

मैंने कहा—एक उपाय करो। चादर लपेट लो। ये भारी कपड़े खोल कर सुखा डालो।

पेड़ की ओट में जाकर उसने कपड़े बदले। घाघरे के ऊपर ओढ़नी ओढ़कर जब मेरे निकट आई तो नारी की सहज मोहनी से उसकी काया भरी हो उठी थी। उसे देखते ही मुझे उस दिन की चाँद का स्मरण आ गया। अचानक मेरे मुँह से निकल गया—जाओ तुम वही कपड़े पहन लो।

"क्यों?"

"मेरे साथ रहना है तो वहम नहीं चलेगी। मैं जो कहूँ उसे मानो।"

"तुमने कहा था तभी तो बदले हैं।"

"मैं ही फिर कहता हूँ, जाओ कपड़े बदल डालो।"

"बारबार कवायद मुझसे न होगी। बिना कारण, मैं नहीं।"

"तो हम तुम साथ न रह सकेंगे।"

"मुझे छोड़कर चले जाओगे?"

"हाँ।"

"इसी दशा में, यहीं?"

"हाँ।"

"क्यों, अपने ऊपर भरोसा नहीं रहा है?"

"सुलोचना मैं भी आदमी हूँ। आदमी की कमजोरियाँ मेरे साथ भी हैं। तुम्हें इस तरह अपने इतने समीप पाकर मेरी मुक्ति का एक ही मार्ग है कि या तो तुम उसी तरह रहो या मैं यहाँ से भाग जाऊँ।'

"कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है, तब मैं क्या कहूँ ?"

"तुम्हीं बताओ दूसरा मार्ग। अपने ऊपर विश्वास खोकर तुम्हारे साथ बना रहना अनुचित समझता हूँ।"

"परन्तु हमारे बीच में बाधा कौन-सी है ?"

"तुम्हारे जैसा साहस मुझमें नहीं है। यह साहसहीनता ही यही बाधा है। पृथ्वी पर से उखाड़कर एक लता को पत्थर पर रोपने की भूल विनाशक ही हो सकती है।"

"मैं साहस साथ लेकर पैदा नहीं हुई हूँ। दुख दर्दों की मारी जो समझ पड़ा वही कर डाला। यही मेरे साहस की कथा है। वैसे साहस से शून्य तुम भी नहीं हो। कोई भी नहीं होता।"

"मैं शून्य हूँ, बिलकुल शून्य। तुम इस पर विश्वास करो। मेरे सामने कोई समस्या आ जाती है तो उसे सहज रीति से निपटाना मेरे लिए कठिन हो पड़ता है।"

"यह तो ऐसी कोई बाधा नहीं है। स्त्री की सहज ईर्षा से नहीं यों ही मेरे मन में एक बात आरही है कि इसका कोई दूसरा ही कारण होगा।"

"हो सकता है परन्तु मैं स्वयं उसे नहीं जानता। इस पर विश्वास करो।'

अविश्वास क्यों करूँगी ?—कहकर वह उठी और मेरी आज्ञानुवर्तिनी बनकर फिर मर्दाने वस्त्र पहनने चली गई।

आज मैं सोचता हूँ कि मैंने ऐसा हठ क्यों किया था ? दुर्दिन और दुर्भाग्य हम दोनों के सिर पर नाच रहा था। दुर्दैव ने हम दोनों के ज्ञान को हरण कर लिया था।

तीन

प्रातःकाल हुआ। डाली डाली पर सोने की वर्षा हुई। जीवन के स्पन्दन से मुरझाये हृदय करवटें बदलने लगे। जबकि मैं सुलोचना की प्राणहीन देह को अपनी गोद में लिए बैठा था। मेरे हठ की पूर्ति करने के लिए जब वह वृक्ष की ओट में जाकर कपड़े बदलने लगी तो उसका पैर एक विषधर भुजंग पर पड़ गया। हम दोनों की तरह ही वह भी भारी पानी से बचने के लिए वहाँ आ पहुँचा होगा।

स्नेह, सेवा, सहानुभूति, अपनापा और प्रेम बखेर कर वह सोन-चिरैया क्षण भर में उड़ गई ? मैं विजड़ित, विमूढ़ और वेदनादग्ध बैठा था। कुछ दिन पहले गंगा के अनुज की मृत्यु का दृश्य देखा था और इतने ही पास से, परन्तु हृदय इतना प्रज्ज्वलित न हुआ था। उसके समीप पहुंच कर भी कुछ दूरी रह गई थी जिसके कारण दुख की ऐसी यथार्थता का बोध नहीं हुआ था। सुलोचना के सहज सामीप्य ने मुझे उसके अभाव को और अधिक दुखदायी बना दिया। उसीमें डूबा मैं चुपचाप बैठा था।—एक विस्तृत शून्य संसार मेरे सामने फैला था।

अचानक मेरे कानों में ये शब्द पड़े—धन्य हो भगवन्! तेरी लीला अपार है। तेरी बातें बड़ी बड़ी हैं। कहाँ रात का प्रलय-तांडव और कहाँ यह शांत सौम्य सुनहला प्रभात।

ऐसा कहते हुए दंडधारी, भगवा वस्त्र धारण किये, स्वामी ब्रह्मचारानन्द मेरे सामने अचानक आ खड़े हुए। इस प्रकार एक निष्प्राण नारी को गोद में लिए मुझे देखते ही वे उछलकर दो कदम पीछे हट गये और एक अपशकुन-सा मानकर बड़बड़ाये—राम राम! शिव शिव!!

मैंने पथराई आँखों से उनकी ओर देखा। कुछ कहने की मेरी इच्छा नहीं हुई। तब तक शायद स्वामी जी की शिष्य मंडली भी आकर उपस्थित हुई। एक ने दूर से ही आवाज दी—कुशल तो है गुरुदेव?

दूसरे ने कहा—स्नान ध्यान हो।

ब्रह्मचारानन्द—नहीं रामदास, हटो। आज कर पाने पड़ना नहीं होगा।

हम लोगों को खाली हाथ और खाली पेट ही लौटना पड़ा था। आश्रम में पहुँचने पर भोजन नसीब हुआ था, वह भी सन्ध्योपरांत।"

रामदास—"परन्तु मुझे तो वहाँ जाने की आज्ञा दीजिए भगवन्।"

"मैं जानता हूँ तुम मानोगे नहीं रामदास। अच्छा तुम जाओ। हम लोग आश्रम में चलते हैं।"

स्वामी जी लौट गये। रामदास दौड़कर कौतूहल से भरा मेरे सामने पहुँचा। मेरी गोद में सुलोचना का निर्जीव शरीर रक्खा था। उसने पास आकर पूछा—इन्हें क्या रोग हुआ था महाशय?

मैं—कोई रोग नहीं हुआ था भाई।

"तब यह दशा कैसे हुई?"

"साँप ने डस लिया।"

"सर्प दंश से शरीर ऐसा हो जाता है।"

"हाँ, भाई।"

"आपके पास कुछ रुपया हो महाशय तो शायद आपकी स्त्री के लिए कुछ हो सके। हमारे स्वामी जी सर्प का विष मंत्रों से उतारते हैं।

रक्खा था। उससे विजड़ित और विमूढ़ मैं बैठा था, और पता नहीं कब तक बैठा रहूंगा।

ब्रह्मचारी रामदास बिजली की भांति चपल और कर्तव्यशील था। उसकी सेवापरायण वृत्ति ने मुझे सहारा दिया और सुलोचना के अंतिम संस्कार के लिए वहाँ निर्जन में जो कुछ मिल सकता था वह उसने जुटा दिया। ऐसे कठिन दुर्योग में इतने बड़े सुयोग का संजोग उपस्थित होना किसी अलक्ष्य शक्ति की अनुकम्पा के बिना नहीं हो सकता, यह मानकर अपनी कुछ दिन की सहचरी को विपण्ण मन से चिता की भेंट कर मैं किसी प्रकार निवृत्त हुआ।

मेरी पलकों पर उमड़ आये जलबिन्दुओं को अपने उत्तरीय से ब्रह्मचारी रामदास ने पोंछते हुए मुझे धैर्य बँधाया—महाशय, दुनियाँ में मरना-जीना नित्य हुआ करता है पर शोक आपकी पत्नी ने बीच रास्ते में और अचानक ही आपका साथ छोड़ दिया। स्त्री का वियोग जिसे सहना पड़ता है वही जानता है। मैं आपके लिए बहुत दुखी हूँ। आप हमारे 'सत्पथ आश्रम' में चल सकते हो तो चलिए। वहाँ थोड़ा देर शांति से विश्राम करने को मिलेगा। परन्तु 'सत्पथ आश्रम' जैसे पवित्र स्थान पर इतनी देर मुर्दे के साथ चिता जलने के कारण रामदास के लिए भी स्थान न रह गया था। स्वामी जी के एक शिष्य ने हम दोनों का सदा के लिए उसमें प्रवेश निषिद्ध ठहरा दिया।

प्रकार मेरी बात को नहीं माना। 'सत्पथ आश्रम' का द्वार रामदास के लिए बन्द ही रहा।

इससे रामदास को कोई विशेष क्षति नहीं हुई, ऐसा कहना ठीक न होगा। विद्या और भोजन का निःशुल्क प्रबन्ध आश्रम में था। यह संरक्षकहीन रामदास जैसे ब्रह्मचारियों के लिए छोटी सहायता न थी। परन्तु आश्रम में रहकर और वहां के रहस्यों से अवगत हो जाने से रामदास उसके अणुअणु से परिचित होगया था और मन में वहां की प्रत्येक बुराई के प्रति विरोध की भावना उसके भीतर घुमड़ रही थी। उसने मेरा हाथ झटक कर कहा—आप इस तरह अनुनय क्यों कर रहे हैं महाशय? उसकी कद्र करनेवाला इस गोशाला में एक भी नहीं है। मैं इन जानवरों के बीच में अधिक रहना नहीं चाहता।

खड़े खड़े क्या ताकते हो। आश्रम और उसके अधिपति का इस प्रकार अपमान करनेवाले इस कुलागार को अक्षत चला जाने दोगे ?

इतना कहना था कि आश्रम के भीतर से दस द ब्रह्मचारी बड़े बड़े दंड लेकर निकल आये। रामदास ने निर्भीक भाव से कहा— हां हां, गुरुदेव की आज्ञा को पूरा करो। मारो, रामदास खड़ा है।

क्षणभर इसका प्रभाव पड़ा। सब रुक गये पर एक ब्रह्मचारी ने पैंतरा बदलकर लाठी रामदास पर चला ही दी। उसके बाद उसके शरीर पर लाठियों की एक बौछार हो गई। दौड़कर मैंने अपनी देह से उसके लहूलुहान शरीर को ढक लिया।

इसके बाद पुलिस आई। रामदास गिरफ्तार कर लिया गया। उसके ऊपर दुराचरण का अभियोग लगाया गया। एक नाबालिग लड़की ने न्यायाधीश के सामने बयान दिया कि रामदास ब्रह्मचारी ने उससे बलप्रयोग की चेष्टा की थी।

रहता हूँ कि बहुत से लोग यह नहीं जानते कि ये बड़े घरानों के लड़कों को सुसंस्कृत बनाते होंगे। मैं उन्हें बताना भी नहीं चाहता।"

मैंने सिर हिला दिया। पर वे कहते ही रह गये, "यहाँ जितने भी सम्मानित लोग हैं उन सबका तकाजा रहता है। मना कर देता हूँ, फिर भी दो चार ऐसे हैं जिनको इनकार नहीं किया जा सकता। इज्जत से उनके यहाँ हो आता हूँ। बेचारे खुशामद करते रहते हैं। बड़े लोगों में जाने आने से अपना भी रुतबा रहता है। यों तो घर में खाने को रोटी दाल बहुत है। यह भी सब लोग जानते हैं। इससे भी अच्छा असर पड़ता है। कोई भूखा-नंगा मास्टर हो तो उसका क्या असर पड़े? महीने में चार छुट्टी रखता हूँ। होली-दिवाली अलग। कोई मजदूर तो हूँ नहीं। इज्जतदार पढ़ा लिखा अध्यापक हूँ। विलायत तक की चिट्ठियां लिख पढ़ देता हूँ। इन सबों को और चाहिए ही क्या?"

आपका बहुत प्रभाव है लोगों पर।—मैंने कहा।

वे बोले—खासकर बड़े लोगों रईसों, सेठों और अफसरों पर। मैं किसी छोटे आदमी के यहाँ कदम नहीं रखता।

इस पर मेरे मुँह से निकल गया—सब गरीबों के बच्चे तो वंचित ही रहेंगे साहिब? आप जैसे विद्या बुद्धि निधान शिक्षक सब दौलतवालों के होकर रहने लगेंगे तो गरीबों का कौन मालिक है?

मैं—परदेसी तो नहीं हूं। नया आदमी जरूर हूँ।

प्रकाश जी—नई जगह ही तो परदेश है। मैं आपके लिए भरसक प्रयत्न करूँगा।

यह प्रकाश जी का ही काम था कि इतने सहज में मुझे इतना अच्छा स्थान मिल गया। परन्तु स्थान की अच्छाई का सारा महत्व मेरी नजरों में गिर गया, क्योंकि वे उस घर में किसी को पढ़ाने आया करते थे। इस वास्ते रोज मुझ से भेंट हो जाती। आते ही पूछते—कहिए महाशय गुप्त का स्थान इससे भी अच्छा मिल सकता है कहीं? यह सब मेरे रसूख की वजह से है।

मैं उन्हें प्रकटत: धन्यवाद देता पर जी कुढ़ जाता इस आदमी की ओछी मनोवृत्ति पर। छुद्र से छुद्र सहायता जो कभी उन्होंने की होगी उसका विधिवत् वर्णन नमक मिर्चसहित सुनने को मुझे बाध्य होना पड़ता। फिर भी जाने की छुट्टी नहीं होती और वे नये नये प्रसंग छेड़ देते। कभी अपनी प्रशंसा करते। कभी अपनी गृहिणी के गुण गाते। कभी अपनी वंशावली के विरद को सुनाने में तल्लीन हो जाते।

मेरी बातों से उन्हें शक होगया कि शायद मैं उनकी धारणाओं से सहमत नहीं हूं। अब वे बोले—आप चाहें मेरी बातों को कुछ भी महत्त्व न दें महाशय, पर यह आपको मानना ही पड़ेगा कि धन की बड़ी महिमा है। आज जिस आलीशान भवन में आप शरण ग्रहण किये हुए हैं वह धन का ही प्रताप है। धन से ही धर्म पुण्य सभी कुछ होता है। ये बड़ी बड़ी धर्मशालाएँ, ये पारमार्थिक चिकित्सालय और ये विशाल सभाभवन धन की महिमा से ही खड़े हैं।

मैंने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, किसने आपसे कहा है कि इस दास को आपकी वाणी पर अविश्वास है? मैं तो पूरी तरह उसका कायल हूं। जो कुछ शंका थी भी वह आपसे मिलने के साथ ही दूर होगई।

इस प्रकार मैंने रामराम करके उनसे पीछा छुड़ाया। तब फिर मित्र ने प्रश्न किया—आप इन पैसेवालों को कैसा समझते हैं?

मैंने कहा—देवता।

यह सुनकर वे मेरे मुँह की ओर ताकने लगे और बोले—आप हँसी करते हैं?

मैं—हँसी क्यों करूँगा? ऐसा ही तो शास्त्रों में लिखा है।

"सच कहो?"

"आपने पढ़ा नहीं है कि पूर्वकृत पुण्यों से ही इस तरह का वैभव किसी को मिलता है।"

है, लेकिन इन सेठ साहूकारों में तो दया-मया सभी कुछ है। चाहे इसीलिए सही कि इससे उन्हें परलोक में सुख शांति की आशा है या इहलोक में कीर्ति की कामना है।—एक बात और भी है। पूँजीवाद केवल धन का ही नहीं है, नाना प्रकार का पूँजीवाद दुनिया में छाया हुआ है। यों तो सभी भेड़िये हैं। आप जैसे योग्य अध्यापक ज्ञान के पूँजीवाद से दूसरों को आत्मसात् कर लेना चाहते हैं। किसी समय ब्राह्मणों ने सांस्कृतिक पूँजीवाद से आधी दुनियां को ग्रस्त कर डाला था। क्षत्रियों ने शक्ति के पूँजीवाद से सभ्यता को रौंदा था। वैश्यों ने सम्पत्ति पर एकाधिकार करके यही किया। वह लूट का समय था, और अभी तक लूट का वह युग बड़े मजे से चला आ रहा है। जिसके पास पूँजी है—धन, शक्ति ज्ञान, संस्कृति किसी भी तरह की पूँजी, वह शेष समुदाय को पददलित करता आ रहा है। पूँजी के कुफल मंदिर, मस्जिद, विश्वविद्यालय, उद्योगशालाएँ, रंगमंचशालाएँ, मिलिटरी एकाडेमी दफ्तर, कचहरी, न्यायालय अपने अपने वर्ग को शक्तिशाली बनाने के लिए ही हैं। किसी भी तरह जो इनके सम्पर्क में आकर योग्यता संपादित कर लेता है वह शेष मानव समाज से अपने को पृथक कर लेता है और इसी वर्ग से मिलकर इसी वर्ग में शामिल हो जाता है।"

इस देश ने जहाँ एक महात्मा (गांधी) को जन्म दिया है वहीं एक दिव्यदृष्टा महर्षि (टैगोर) को पैदा किया था। वह अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े पड़े पहले ही यह सब देख चुका था। उसके ये शब्द अमर हैं कि अंग्रेज हिन्दुस्तान से जाते जाते अपने पीछे धूल, कीचड़ और सड़ाँध छोड़ जायँगे। अस्तु हिन्दुस्तान आज नियन्त्रणों के कारण खंड खंड हो गया है। यह चीज यहाँ से वहाँ नहीं जा सकती। एक गज कपड़ा और एक सेर चीनी एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का अधिकार आज हिन्दुस्तान के स्वतन्त्र नागरिक को नहीं रह गया है। ऐसा मालूम पड़ता है जैसे देश की भलाई का सारा ठेका अधिकारियों और अफसरों ने ही ले लिया हो। नागरिक तो सभी उच्छृंखल, स्वार्थी और देशहित से शून्य हैं। मजा यह है कि नेहरू और राजेन्द्र प्रसाद जैसे स्वतन्त्र चेता नेताओं के हाथ में सरकार की बागडोर है परन्तु वे भी [illegible] शासन के डर एवं वस्तु की कमी का भय सदा करते हैं। क्यों, इसलिए कि [illegible] ने उन्हें अपनी ब्लैक मार्केट से परिस्थिति का भान भुला दिया है। जो नैतिक कानून इसने लागू किये थे वे अभी चले जा रहे हैं। नागरिक स्वतन्त्रता आज सपना होगा है, और हमें कहा जाता है कि स्वतन्त्रता देवी का स्वागत करने के लिए हम तैयार हैं [illegible]

यह जेब में से क्या झांक रहा है ?

उन्होंने हाथ डालकर तीन चार परचे बाहर निकाल लिए और हँ बोले—क्या बतायें भाई। परमिटों के इस जमाने में जेब में और होगा। यह लकड़ी का, यह तेल का, यह चावल का, यह दियासलाई यह कपड़े का, यह साबुन का, पांच सात साट लिये हैं। लोगों को हाथ नहीं आतीं। आपकी दया से अपने राम को यह दिक्कत नहीं। भी घर में औरत खाये जाती है। अपना पेट भरा रहता है। तो भी कभी सोचता हूं कि दुनिया की ये सारी चीजें कहां गायब होगई हैं ?

"युद्ध के कारण चीजों की कमी जरूर हो गई है पर ऐसी नहीं है कि हर एक चीज का अकाल ही हो। प्रतिबन्धों की बहुतायत लोगों में ऐसा भय छा गया है कि कुछ भी नहीं मिलेगा। सरकारी अफस के हाथ में बहुत दिनों के बाद ऐसा सुयोग आया है। वे जनता की एक मांग की अपने द्वारा पूर्ति देखना चाहते हैं और उनके अमलों को इ बात में प्रसन्नता होती है कि लोग उसके सामने हाथ पसारकर गिड़गिड़ा हैं। वे अपने इन विस्तृत अधिकारों का अन्त देखना नहीं चाहते। वे मनाते हैं कि यही स्थिति स्थायी होजाय। युद्ध के ये काले कानून ही दुनिया में साधारण जीवन की व्यवस्था का स्थान ग्रहण करलें। यही कारण है कि सरकार के सामने हर एक वस्तु की कमी की रिपोर्ट दिन रात उपस्थित की जा रही है। जैसे भृंगी किसी भी जाति के कीड़े को अपनी भनभनाहट से अपने सरीखा बना लेता है उसी तरह वस्तुओं की कमी के आन्दोलन ने सबको उसी धारा में सोचने के लिए बाध्य कर दिया है।

होने देना कौन चाहेगा ? जिनके अधिकार छिनेंगे, जिनकी नौकरियां जायगी, वे क्या मुझे जिन्दा रहने देंगे ?"

"आप कुछ भी करने को तैयार नहीं हैं।"

"तैयार हूँ, पर मैं जानता हूँ कि कर नहीं सकूंगा।"

"तो चुप रहिये। अपने तो रसूक बहुत हैं। हर चीज का परमिट सहज ही मिल जाता है। और थोड़ी दौड़धूप के बाद आवश्यकता की चीजें भी प्राप्त हो जाती हैं।"

"एक आपको प्राप्त हो जाती हैं।"

"मैं तो अपनी ही जानता हूँ। आजकल दूसरों की चिंता कौन करता है ?"

"ठीक है, अध्यापकों का ऐसा ही आदर्श होना चाहिए।"

"आदर्श, आज आदर्श की बात करते हो ? आप एक आदर्श के पीछे घूमते रहो। न खाने को मिलेगा, न पहनने को, न रहने को। धन नहीं है तो धनवानों की पूजा करो। निर्बल हो तो शक्तिवानों की शरण जाओ। ऐसा करना कुछ बुरा भी नहीं है। हमेशा से दुनिया में यही होता आया है। आगे भी यही होता रहेगा। धन और शक्ति यही दो पूजा की चीजें हैं। पूजते हैं वे सुखी रहते हैं। नहीं पूजते हैं वे कुढ़ा करते हैं।"

अच्छी बात, आपकी राय मानूंगा--मैंने कहा।

"मानते कहां हैं ?"--उन्होंने शिकायत की। "मानते तो उजाड़ चूल्हे की तरह इस जमाने में फिरते नहीं होते। किसी न किसी सेठ साहूकार के दो चार लड़कों को घेरकर शिष्य बनाकर बन जाते। जिनके मुनाफाखोरी से जो कुछ आता है उसमें से कुछ बंटाते। मजे करते। जिनके नसीब नहीं हैं वे कन्ट्रोलों और नियन्त्रणों को कोस रहे हैं। हम तो इनसे उल्टे सुखी हैं। शर्त यही है कि पैसा जेब में हो। वह अनायास मिल रहा है।"

पड़ रहा। एक स्त्री लोटे में ठंडा पानी ले आई। उठकर मैंने आचमन किया। अतिथि के योग्य सुन्दर स्वादिष्ट भोजन पाकर मेरा मन प्रसन्न होगया।

इस सुखी सम्पन्न परिवार में मेरे पहुंच जाने से एक संतोष सा छा गया। पूछने पर पता लगा कि वृद्ध के दो बेटे कई दिन पूर्व व्यापार के सिलसिले मे घर से गये हैं। दो तीन दिन पहले ही आजाने चाहिए थे पर वे आज तक नहीं आये। वे भी शाम को थके माँदे मेरी ही तरह कहीं आश्रय तलाशते होंगे। इसी ख्याल में सारा परिवार मेरे आतिथ्य में सुख मान रहा था।

मुझे विश्राम करते कुछ ही समय बीता था कि वृद्ध गुरुचरन के दोनों बेटे सकुशल आ पहुँचे। सारे घर में आनंद की एक लहर दौड़ गई। गुरुचरन अपने दोना बेटों, शिवचरन और रामचरन, को बाहों में लपेटे मेरे सामने खींच लाये, बोले—अतिथि भगवान्, आपकी कृपा से मेरे दोनों बच्चे घर आ गये हैं।

ऐसा कहते हुए उन्होंने बारी बारी से दोनो के सिर पर प्यार से इस तरह हाथ फेरा कि मेरा जी गद् गद् हो गया। मैंने पुलकित होकर कहा—बाबाजी, यह आपके पुण्य का प्रताप है।

दोनो लड़कों को भीतर भेजकर वृद्ध मेरे समीप ही बैठ गये। कहने लगे—हम दोनों ने दुनिया में आकर जो इच्छा की वही पाया। आज तक कभी हमारी इच्छा अपूर्ण नहीं रही।

मैंने कहा—आप महात्मा हैं। आप भाग्यशाली हैं। आगे भी आपकी सब इच्छाएँ इसी तरह पूर्ण होंगी।

गुरुचरन—आप जो चाहें कहिये। बात सच है। अब केवल हम दोनों की एक ही इच्छा शेष है—शकुन्तला का ब्याह। हमारी शकुन्तला को आपने देखा ही है।

मैंने श्रद्धापूर्वक सिर हिलाकर जताया—देखा है।

गुरुचरन—कैसी है?

वृद्ध की अनिंद्य सुन्दरी कन्या को देखकर मैं थोड़ी देर पहले ही अपनी दृष्टि पवित्र कर चुका था। मैंने कहा—कुछ मत पूछिये बाबाजी, आपकी कन्या आपके अनंत पुण्य का प्रसाद है। जिस घर में वह पहुँच जायगी वह धन्य होजायगा।

वृद्ध इस बात से खिलकर खीलें होगया। थोड़ी देर मेरे साथ हिलमिल कर बातें करने के बाद वह सोने चला गया। मैं भी लेटा और निद्रामग्न होगया।

आधीरात के समय अचानक बन्दूकों की धाय धांय से मैं अपनी चारपाई पर उछल पड़ा। घर के स्त्री बच्चे चीखने-रोने लगे। पुरुषों में हल्ला मच गया। मैं झपटकर उठा, दरवाजे के पास गया पर वह बाहर से बंद! मैंने किवाड़ों को भड़भड़ाया पर हल्लेगुल्ले में कौन सुनता था। थोड़ी देर में मेरी कोठरी के आगे ही मारधाड़ आरंभ होगई। केवल बीच बीच में एक गंभीर आवाज सुनाई देती थी। किसी को बेजा तौर से सताया न जायगा। हमारी माँग पूरी होनी चाहिए।

मैं कमरे में तड़प रहा था। बाहर लोग सताये जा रहे थे। उन्होंने जो कुछ दिया वह काफी नहीं था। इतने बड़े डाके में इतनी थोड़ी रकम लेकर डाकू छोड़ने को तैयार न थे। उन्हें इस घर से अभी और अधिक लेना था।

मैं विषाद से लगा खड़ा था। द्वार पर बुड्ढे गुरुचरन अड़कर खड़े होगये, और बोले—जो कुछ था वह हमने दे दिया। अब हमारे पास देने को कुछ नहीं है।

"हम यह कोठरी देखेंगे"—एक दबंग और डपटभरी आवाज ने कहा।

गुरुचरन—बात मानो। इसमें कुछ नहीं है। इसमें हमारे मेहमान ठहरे हैं। उनकी देह पर जीते जी हाथ न लगाने देंगे।

"यह कुछ नहीं, चौधरी। तुम्हारी यह चाल न चलेगी। इसीमें तुम्हारा खजाना है। सिर्फ साढ़े सात हजार रुपया लेकर हम इस घर से जाएँगे? तीन सौ गाँवों में अकेला तुम्हारा घर। कम से कम पचास हजार

रुपया नकद होना चाहिए।"

"अब हमारी खाल उतार लो तो भी एक कौड़ी बेशी न पाओगे। चाबियां तुम्हारे आदमियों के पास हैं। उन्होंने कोना कोना झाड़ लिया है।"

"अच्छा तो दरवाजे के सामने से हट जाओ। हरदेव, चौधरी को धक्का देकर अलग करो और दरवाजा तोड़ दो। हम भी इनके मेहमान को देखें, कैसे हैं।"

गुरुचरन—भगवान् के नाम पर अतिथि को छोड़ दो। मैं बूढ़ा तुम्हारे आगे भीख मांगता हूँ।

'हरदेव, इतनी देर क्यों, लाठी का हुदा मार और दरवाजे को पटक दे।"

"तोड़ने की जरूरत नहीं है। दरवाजा भीतर से खुला है।"—मैंने चिल्लाकर कहा।

परन्तु चौधरी गुरुचरन दरवाजे से चिपट गये थे, और हटाने पर भी न हट रहे थे। दस्यु सरदार ने अपने आदमी को ललकारा—यह बुड्ढा नहीं पागल कुत्ता है। शूट करदे, शूट।

तत्क्षण पिस्तौल भभक उठा और वृद्ध गुरुचरन का शरीर देहरी पर लोट गया। खून का एक फुहारा कमरे के भीतर पहुँचने का मैंने अनुभव किया। मैंने अपनी पूरी ताकत से शेर की भाँति दरवाजे को भीतर से झकझोर डाला। ठीक इसी समय भीतर जनाने में हो-हल्ला मच उठा। उसके बाद उधर भागने की धपधप आवाजें सुनाई दीं।

मेरे दरवाजा भड़भड़ाने से न जाने किस तरह बाहर की कुण्डी अलग आ पड़ी। द्वार खुल गया। मैं बाहर निकला। निकलते ही दौड़कर जनाने घर की ओर भागा। वहां जाकर देखता क्या हूँ कि एक नौजवान अपने जैसे एक अन्य युवक को गिराकर उसकी छाती पर सवार है और पिस्तौल की नली उसके कपाल से अड़ाये है। थोड़ी दूर पर शकुन्तला खड़ी सिसक रही है।

नीचे पड़ा युवक गिड़गिड़ाने की मुद्रा में कह रहा था—माफ करो सरदारजी।

सरदार—नहीं, तू नापाक है, कमीना है, पापी है। इतने दिन हमारे गिरोह में रहकर भी नहीं समझा कि हमारे उसूल क्या हैं।

"मैं आपके पैर छूता हूँ हाथ जोड़ता हूँ। मैं अपनी भूल के लिए शर्मिंदा हूँ।"

"अच्छा, हाथ जोड़कर इस बहिन से माफी माँग। यह मेरी तेरी और हम सबकी बहिन है।"

धीमी और काँपती आवाज में उसने सरदार की आज्ञा का पालन किया। वृद्ध गुरचरन की स्त्री ने आगे बढ़कर सरदार का माथा चूम लिया और बोलीं—तुम तो देवता हो भैया। तुम्हें डाकू किसने बनाया है?

सरदार अपने साथी की छाती पर से उतरकर खड़ा होगया। एक स्वस्थ सलोना नौजवान, पंजाबी लहजे में बोला—हम डाकू तो हैं, पर माँ बहनों की अस्मत पर हाथ नहीं डालते। हमें रुपये चाहिए। हमारे सामने बहुत बड़े बड़े काम हैं उसके लिए हमें रुपयों की दरकार है। धन की कमी से हमारा काम रुक जाता है तब हम अमीरों के धन पर कब्जा करके अपना काम चलाते हैं। गरीबों को नहीं सताते। कमजोरों की रक्षा करते हैं।

इसके बाद सिसक रही शकुन्तला की ओर मुँह करके उसने कहा—बहिन, तू रो मत। बोल तुझे क्या चाहिए?

उत्तर शकुन्तला की माँ ने दिया—तुमने मेरी बेटी को बहिन बनाया है भैया। याद रखना भगवान् तुम्हारा भला करेंगे। तुम जिस काम के लिए इतना बड़ा खतरा उठाते फिर रहे हो, वह कोई साधारण काम नहीं होगा। वह कुछ भी हो उसमें तुम सफल हो, यही मेरा आशीर्वाद है।

सरदार—मैं तुम्हारे आशीर्वाद का पात्र नहीं हूँ माताजी। मैं डाकू तुम्हारे घर को लूट खसोटकर जा रहा हूँ। मेरी इस बहिन को मेरे एक कमजोर साथी ने अपमानित करने की चेष्टा करके मेरे नाम और उसूल

को कलङ्कित कर दिया है। इसके लिए मैं दुखी हूँ। निहायत दुखी हू। मैं किसी तरह उसे क्षमा न करता बल्कि उसके भेजे को उसके कपाल से बाहर निकाल देता यदि वह मेरी बात मानने में एक क्षण की भी देरी करता। अपनी समझ में अच्छे उद्देश्य में लगे रहने पर भी हम लोगों के हाथ खून से रँगे रहते हैं। इसके बिना हमारा काम नहीं चलता।—

बाहर बारबार सीटी की आवाज होरही थी। मालूम पड़ता था यह उनके इकट्ठे हो जाने का सिगनल था।

सरदार ने एक दफा फिर कहा—बहिन, तू बोल नहीं रही है? एक भाई के सामने कहने में तो सकोच न होना चाहिए।

इस बार भी शकुन्तला की माँ ने ही उत्तर दिया।—वह बहुत शर्मीली लड़की है। वह न बोलेगी भैया। तुम बड़े भैया की तरह यही आशीर्वाद दे जाओ कि उसके लिए हमारे हाथ पांव न रुकें।

सरदार ने शकुन्तला की मा की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा। यह देख वे बोलीं—इस समय तो हमारे हाथ कट गये हैं भैया। कुछ बचा नहीं है, पर तुम भी तो किसी अच्छे काम में ही लगाओगे। इसीसे चुप हूँ। मुझे अपना शकुन्तला को व्याहना है। यही एक बड़ा काम है हमारे सामने।

"तुम्हें इसका विश्वास है कि हम यह रुपया किसी अच्छे काम में ही लगायेंगे?"

"क्यों न होगा?"

"तो बोलो तुम अपनी लड़की के व्याह में कितने से काम चला सकोगी?"

"दो हजार से।"

"इसके लिए मैं तीन हजार छोड़े जा रहा हूँ। इतने से तो काम चल जायगा?"—कहकर उसने इशारा किया। तत्काल तीन थैलियां आकर पड़ीं।

फिर भी काम न चले तो फतेसिंह डकैती को याद कर लेना,

माता जी। कहता हुआ वह युवक रिवाल्वर हाथ में लिए हमारे सामने से शेर की तरह निकल गया। उसके साथी भी उसके आगे पीछे निकल गये।

शकुन्तला की माँ आश्चर्य से अवाक् वहा खड़ी रह गई। शकुन्तला ने भी सकोच और भय से मुक्त-सी होकर उधर देखा जिधर सरदार फतेसिंह गया था।

क्षणभर में बाहर रास्ते पर आदमियों के भारी पैरों की धमक भर सुनाई पड़ती पड़ती शून्य में विलीन होगई।

उसके बाद मैं वहा क्षणभर भी नहीं ठहर सका। सरदार फतेसिंह अकाली की वीरोचित बातें मेरे कानों में गूँजती रहीं। आज भी उस रात की दिल दहला देने वाली घटनाओं के बीच में इस नाटक का मनोमुग्धकर दृश्य आँखों के सामने सजीव हो उठता है। उसे किसी तरह भूल नहीं पाता हू।

सारा गांव चौधरी गुरुचरन के घर पर उमड़ आया। डाकुओं के भय से लोग घरों में छिप गये थे या बाहर भाग गये थे वे सब इकट्ठे होगये।

शेष रातभर इस अनहोनी घटना की चर्चा ही होती रही पर चौधरी गुरचरन इस गोष्ठी में सम्मिलित होने के लिए वहा न थे। उनकी अंतिम क्रिया में अपना सहयोग देकर एक मनहूस अतिथि की भाति चुपचाप मैं अपने पथ पर हो लिया।

इकतीस

संभवत. नहीं। इनका पूरा लेखा तैयार करनेवाला मुनीम प्रकृति के दरबार में भी शायद नहीं है। और इसमें तो कोई सदेह नहीं है कि दुखों की इस विपुल राशि का अधिकांश स्त्रियों के हिस्से में पड़ा है। इसीसे नारी जाति मेरे निकट और उन लोगों के निकट, जो कष्टसहन को तपस्या का गौरव प्रदान करते हैं, महनीय और पूजनीय है। उसकी विकृतियों, विरूपताओं और त्रुटियों को इसीसे घृणा की नहीं सहानुभूति की दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन ऐसे नर-पिशाचों की कमी नहीं है जो सदा ही इस सबध में हृदयहीनता का परिचय देते हैं। तपस्विनी नारी के ऊपर इनके अत्याचारों का अन्त नहीं होता।

मुझे याद आती है कि वह पतिता विन्ध्येश्वरी जो दुनियाँ की लानत-मलामत को अपने सिर पर ओढ़कर भी अपने प्रेमपात्र के लिए घर-बार छोड़ उसके पीछे हो ली थी। भाई-चारे, बन्धु-बिरादरी सबने उसके नाम पर थूका था। एक कुलीन घराने में जन्म लेकर भी भाग्य ने उसे पतन की ओर ढकेल दिया था। फिसलती हुई वह एक कठोर चट्टान से आ टकराई और उसे ही अपनी समस्त ममता के साथ जकड़ लिया था। उसके ऊपर अपना सर्वस्व होम देने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

यह तो स्त्रियों की स्वाभाविक कमजोरी है कि वे स्वभावत अपने समीपी पुरुष के ऊपर अपने मोह का विस्तार करने के लिए उसी तरह विवश होजाती हैं जिस प्रकार एक लता पास के वृक्ष को आवेष्ठित किये बिना नहीं रहती। परन्तु सदीप विन्ध्येश्वरी का न तो समीपी था और न उसके हृदय में उसके लिए कोई विशेष स्थान था। फिर भी वह उसे जब किसी तरह पा गई तो उसे ही संसार सागर का जहाज समझ उसके सुख दुख की अनन्य सहचरी बन गई। वह दिन मैंने देखा तो नहीं पर सुन चुका हूँ कि जब सदीप सब आशाएँ खोकर रोग-शय्या पर पड़ा था और डाक्टर ने उसे रक्त देने की व्यवस्था की थी। उस समय विन्ध्येश्वरी ने डाक्टर से कहा था—कोई चिन्ता नहीं है डाक्टर साहब। मेरे शरीर में काफी खून है। आप जितना चाहिए लीजिए।

डाक्टर—तुम बरदाश्त नहीं कर सकोगी।

विन्ध्येश्वरी—बरदाश्त की कौनसी बात है। आप बेफिक्र होकर अपना काम करें। मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है।

डाक्टर—अच्छी बात है।

इसके बाद एक बार नहीं तीन तीन बार काफी मात्रा में रक्त लेकर सदीप के शरीर में पहुँचाया गया। वह नीरोग हुआ। बेचारी विन्ध्येश्वरी का सुकुमार शरीर इस रक्तदान से इतना अशक्त होगया कि जब बैठे बैठे खड़ी होती तो आखों के आगे अन्धकार छा जाता।

वे सब कष्ट उठाकर सदीप को उसने प्राप्त किया था। वह उसे आधीरात के समय कुछ रुपयों में एक शख्स को बेच गया। उस नरभक्षी बकासुर ने उसका अंगभंग करके उसे फुटपाथ पर डाल दिया, जहाँ दुर्गन्ध को बहाती हुई नाली उसकी सहचरी बनी है। अचानक उस विन्ध्येश्वरी ने मेरा ध्यान खींच लिया। साधनहीन मुझ परदेशी की सहायता से उसे जो लाभ हुआ, सो हुआ, मेरे लिए मेरा यह दया दान अनन्त पुण्यों का प्रतिफल बन गया। यदि मेरी दृष्टि उसपर न पड़ती और मैं यों ही निकल जाता, या देखकर भी सहज करुणा का उद्रेक न होता तो मैं क्यों वहा ठहरता? अपने रास्ते चला जाता और भाग्य की रेखा पर जैसे चलता आया था वैसे ही चलता रहता।

मैं विन्ध्येश्वरी के पास बैठ गया और अपने झोले में से थोड़ा सा कपड़ा निकालकर उसके घावों की मरहम पट्टी करने लगा। एक कठोर निर्मम घट ने गुर्राकर पिछले मकान की छत से धमकाया—ओ डाक्टर के बच्चे, खैर चाहता है तो अपना रास्ता ले।

मेरी बातें सुनकर उसने कुछ कहा नहीं। केवल मेरी ओर देखता रहा। मैंने फिर कहा--लेकिन भाई, जिस चीज के लिए तुमने रुपया खर्च किया है, जिस चीज को तुम अपने आनन्द का आधार समझते हो, उसकी ऐसी दुर्दशा क्यों? क्या फूलों के हार को मसल डालने में कोई आनद है!

किसी भलेमानस को कभी इस तरह दया दिखाते हो तो मैं मानूँ। जहां देखा वहा स्वारथ के सिवा कुछ नहीं। एक नौ जवान औरत की जगह पर किसी बुढ़िया का पजर होता बाबूजी आपको भी दया शायद ही आती?—कहकर गनपत एकबार ठठाकर हँसा और मेरी भर नजर देखा।

मैंने अपने मनको टटोला और उसके आरोप में बहुत कुछ तथ्य पाया। वह अपनी इस बात में दुनियां के व्यवहार की सचाई के व्यक्त कर गया था। क्षणभर उस गँवार और उद्दंड मनुष्य की स्पष्टोक्ति ने मुझे चुप कर दिया। उसके बाद अपने को बटोर कर मैंने कहा—तुम्हारी बात ठीक हो सकती है। पर दुनिया में ऐसे आदमियों की बिलकुल ही कमी नहीं हो गई है जो—

उसने मुझे आगे कहने नहीं दिया। बीच ही रोककर बोला—रहने दो बाबूजी, रहने भी दो। ऐसे अदमियों की दुहाई मत दो। इसमें कुछ सार नहीं है। मैं उन सब की असलियत जानता हू। जिस काम को शंकर भगवान जीत नहीं सके, उसे हाड़मास के पुतले जीत लेंगे? लेकिन सचाई मर मैं सदेह करता।

मैंने कहा—धन्यवाद।

गनपत—नहीं नहीं बाबूजी, आप इसे अपने ही पास रखिये। इससे मैं बहुत डरता हू। आप मेरे सौ रुपये लौटा देते तो मैं खुशी खुशी उन्हें रख लेता, फिर वह कुतिया जहन्नुम में जाती। आपका यह धन्यवाद मुझे नहीं चाहिए।

मैंने खीझ कर कहा—मुझे तुम्हारे साथ बात करने की फुरसत नहीं है।

गणपत—फुरसत नहीं है तो जाइये यह रास्ता पड़ा है। अगर आप ले जाना चाहते हों तो मैंने उसे बख्श दी। अब खुशी से लेते जाइये।

मुझे क्रोध आगया। मैंने कहा—तुम जानवर हो। तुम नहीं जानते कि सौ रुपये में एक औरत को खरीदकर उसके मालिक बन जाना चाहते हो। उसके ऊपर मनमाना अधिकार चलाना चाहते हो ?

"मैं क्या चलाना चाहता हूँ। सारी दुनिया में रुपये की हुकूमत चलती है। आप नाराज न हों बाबू साहेब ! मैं ठीक बात कह रहा हूं।"

मैंने देखा वह सचमुच ही ठीक बात कह रहा था। कोई भी तो ऐसी जगह नहीं है जहाँ रुपये का जोर न हो। मैंने अपने क्रोध को दबाया, कहा—मैं समझता हूँ तुम निरे राक्षस नहीं हो। तुम उस औरत के प्रति हमदर्दी का बर्ताव करोगे।

उसने मेरी बात को मान लिया। बोला—ऐसा ही करूँगा बाबू साहेब। मैंने सौ रुपये यों ही नहीं गँवाये थे। उसे लेकर सोचा था कि अब एक किनारे पर लग गया। तमाम जिन्दगी आवारगी में बिताकर अब वह सुख पाऊँगा जिससे भलेमानसों की जिन्दगी कटा जाता है, पर वह ऐसी दुरैल निकली कि मेरे रोमरोम में आग लगा गई। अभी भी क्या पता उसे समझ आई या नहीं ?

मैंने समझाया—देखो गणपत, तुम थोड़ी देर के लिए उसको अपनी जगह और अपने को उसकी जगह रक्खो। फिर सोचो तुम ऐसी हालत में क्या करते ?

समर्थन किया।

इसके बाद दो मित्रों की तरह हम लोग विलग हुए। आरंभ की कटुआहट और तेजी पानी होगई। मैं नहीं जानता मेरी किस बात का उसके ऊपर इतना प्रभाव पड़ा।

आदमी का स्वभाव कितना विचित्र है? उसमें परिवर्तन कब, और कैसे किस हद तक हो सकता है इसका पूर्ण रूप से अनुमान किसने लगा पाया है?—उस संध्या को मेरे सोचने का केवल यही विषय था। नगर के बाहर एक अस्थायी निवास की छत के नीचे, कोलाहल रहित निस्तब्ध अँधेरी रजनी में, स्वप्न की भांति आज दिन भर के दृश्य मेरी कल्पना को कुंठित कर रहे थे।

मुझे लगा कि मेरी यात्रा का उद्देश्य विफल होगया है। मैं मार्गभ्रष्ट होकर घटनाओं से टकराता फिर रहा हूँ उसी तरह जिस तरह कतिपय आकाशपिंड अनन्त अवकाश में आंख मूंद कर परिभ्रमण कर रहे हैं। किसी उद्देश्य, किसी लक्ष्य, से वे प्रेरित नहीं मालूम पड़ते।

जो सचमुच डाकू हैं, जो दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण करने का ही पेशा करते हैं, मनुष्य के हृदय में स्थित दुष्प्रवृत्तियों का जो अपने आचरण से निरन्तर प्रचार करते हैं वे भी कभी कभी जनसाधारण के हृदय में सरकार के अस्तित्व के लिए आस्था बनाये रखते हैं। अगर किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती और बलात्कार व अपहरण का लोगों को भय न रहे तो सरकार की सत्ता की आवश्यकता कौन महसूस करे? यही कारण है सरकार किसी हद तक चोर और डाकुओं को सहन कर लेती है, लेकिन जहां इन कुख्यात पेशों में किसी आदर्शवाद की उसे गंध आती है वहां वह चौकन्नी हो जाती है और उसकी छानबीन आरम्भ कर देती है।

यों चौधरी गुरचरन जैसे कितने ही बूढ़े साधारण डकैतियों में मरा करते हैं वे पुलिस की फाइलों में ही अपनी मर्यादा की रक्षा कर पाते हैं। दुनिया को उनका कोई ज्ञान नहीं होता। पर चूँकि चौधरी गुरचरन की मृत्यु और उनके घर की डकैती के साथ एक आदर्शवाद जुड़ा हुआ नाना

गया है। इसलिए उसकी काफी छानबीन हुई है। यहाँ तक कि सरकारी जासूस मेरे पीछे भी लगे हैं। रागपत से छुटकारा पाने के बाद एक भोजनगृह में मेरी ऐसे एक जासूस से बड़ी मजेदार बातचीत हुई। उसे अन्य बातों के साथ मैंने यह भी बता दिया कि संयोग से ही उस दिन मैं यहाँ पहुँच गया था, परन्तु अपनी बात का सरकार को यकीन दिलाने के लिए मुझे तीन महीने तक एक स्थान से दूसरे स्थान पर पुलिस की कड़ी निगरानी में रहना पड़ा। प्रायः प्रति सप्ताह मेरी नाना प्रकार से जाँच की जाती रही। अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक यन्त्रणाओं के बावजूद वे मुझसे कुछ नहीं पा सके तो तंग आकर एक दिन छोड़ दिया।

भी अशक्त, विवश और जर्जर होगया। थका मांदा, भूखा-प्यासा, आशातंतु से विच्छिन्न मैं आंधी के झोंके से ढहे हुए वृक्ष की भांति, उपायहीन सा गिर पड़ा। इसके बाद अँधेरा ही अँधेरा रहा। एक लंबे अरसे तक शरीर की सुरक्षा की चिंता के दायित्व से भगवान् ने मुझे विमुक्त कर दिया। आंख जब खुली तो मेरा सिर मेरी बाल्य-सहचरी की जंघा पर रक्खा था। शरीर और आकृति में अपार अन्तर हो जाने पर भी उसे देखते ही मैंने पहचान लिया। कहीं स्वप्न न हो यह निश्चय करने के लिए दोनों आंखें बंद कर लीं और चुपचाप विचार मग्न होगया। मैं कहाँ हूँ? कैसा हूँ? यहां मुझे कौन लाया? यह कौन सा स्थान है? मैं कब से बेसुध पड़ा हूँ? मेरी क्या दशा है? मैं सचमुच बीमार हू, शरीर निशक्त क्यों हो रहा है? यह निश्चय करने के लिए मैं भीतर से जितना सजग हो सकता था उतना होकर अपनी ज्ञानशक्ति को एकत्रित करने लगा।

पता नहीं मेरी या अपनी या हम दोनो की दशा पर गलकर वह बह चली। उसकी आखो से ढुलक ढुलक कर आंसू मुझे भिगोने लगे और मुझे निश्चय होगया कि यह मन की छलना या स्वप्न नहीं है, यह भी जीवन का एक सत्य है। ऐसा सत्य, जो किसी परम तपस्या का फल हो सकता है। जिन हाथों में पड़ने से मेरी अधिक से अधिक रक्षा और सेवा हो सकती थी उन हाथो में मैं पहुच गया हू। भगवान की कृपा सचमुच कोई वस्तु है तो मैं आज उसका पात्र बना हूँ। मेरा अन्तर बाह्य दोनो पुलकित हो उठे। पलक उघार कर मैंने उसकी उमड़ती हुई आखों की ओर ताका और कहा—अपनी दशा को मैं भगवान का प्रसाद कहूँ या अभिशाप?

धरती की ओर दृष्टि गड़ाये उसने उत्तर दिया—यही तो मैं भी पूछ रही हूँ?

मैं—तो हम दोनों ही नहीं जानते?

"कैसे जान सकते हैं? जब तुम्हें पाना मेरे लिए प्रमाद हो सकता था तब, तब ' "

हिचकियों में उसकी शेष बात खो गई। मैंने कहा—खैर, जाने दो। मेरे लिए तो तुम्हारी शरण आना अब भी एक वरदान है।

उसने अपना सिर मेरी छाती में छिपा लिया। फफक फफककर रोते हुए बोली—हाय, तुम नहीं जानते। तुम्हें पता नहीं, मैं कहां हूं और कैसी हूं।

मैंने एक हाथ से उसे समेटकर कहा—तुम्हारी जैसी दुखियारी कोई दूसरी नहीं है। मैं जानता हूं, तुमने बड़े दुख उठाये हैं बिट्टो।

"नहीं, तुम नहीं जानते। वे कुछ भी नहीं थे। आदमी की देह धर कर वैसे दुखों से तो भागा नहीं जा सकता, पर ये राक्षसी संकट, जिनका अंत न जाने कब होगा, जिनकी याद आते ही शरीर कांप उठता है। आततायियों की एक भीड़ ने उमड़कर बच्चों से लगाकर बुड्ढों तक को काट डाला, और घरों में आग लगा दी। मां के सामने बेटी की दुर्दशा की। बेटी के सामने मां का अंग भंग किया। गांव भर के हजार नौ सौ स्त्री पुरुषों में हम दो दरजन अभागी लड़कियां बची हैं। अम्मा तो मेरी आंखों के सामने गाय की तरह जिबह होकर चली गईं। मैं यह नारकी जीवन जीने को बच गई। लारी में डालकर हम यहां लाई गईं। जिन हाथों में गंगाजल लेकर तुलसी का पूजन नित्य नियम था उनसे गोमांस पकाकर इन अपने मुल्ला जी को संतुष्ट करना पड़ा है जिन्होंने दया करके इन लुटेरों के प्रतिदिन के अत्याचार से हम दो चार को बचाकर अपनी भूख मिटानेतक ही सीमित रक्खा है। एक महीने से कुछ अधिक हुआ होगा पर लगता है कि मैं सौ बरस की बुढ़िया हो गई हूं।"

मेरी प्रगाढ़ देह क्रोध और आवेश से झनझना उठी। मैं बलपूर्वक उठकर बैठ गया। बिट्टो ने मुझे पकड़ लिया, हाथ जोड़कर बोली—लड़कपन मत कर बैठना।

क्या कर डालते यदि लूट का नया सामान न आजाता। वे उसमें लग गये और मैंने तुम्हें लाकर इधर छोड़ दिया। मुल्ला जी से अनुनय करके तुम्हें सबेरे तक के लिए प्राप्त किया है। इसलिए अभी अँधेरी रात में अपने प्राणों को बचा लो। जाओ, उठो।

मैंने उसे डपटकर कहा—"छि प्राणों के डर से तुम्हें छोड़कर मैं भाग जाऊँगा? बिट्टो, तुम भी ऐसी बात कहती हो?"

"तुम्हें भागना होगा। अपने प्राणों की रक्षा करनी होगी।"

"किसलिए? तुम्हें क्या होगया है बिट्टो? तुम कहती हो तुम्हें यहाँ छोड़कर मैं प्राणों के भय से चला जाऊँगा?"

"ठहरकर क्या कर लोगे? एक दो हों तो उनसे पेश आ जाओ।"

"कुछ भी हो। इन प्राणों को यहीं छोड़ना हो तो छोड़ दूँगा, तुम्हें भेड़ियों के मुँह में देकर जाना मुझसे न होगा।"

"मेरी रक्षा जिन्हें करनी चाहिए वे ही न कर पाये। जब मेरे भाग्य में यही दिन लिख दिया था तो उसे मिटा सकना क्या किसी की सामर्थ्य में है?"

"यहाँ से जायँगे तो हम दोनों जायँगे बिट्टो, यह क्या तुम्हें समझाना होगा? सजोगवश ही सही, तुम्हें यहाँ छोड़कर चले जाने के लिए ही मेरा आना हुआ है क्या?"

"आखिर समय इन चरणों की धूल मुझे बदी थी वह मिल गई। अब मेरा कर्तव्य मेरे सामने है।"

"इन बातों को छोड़ो—यही बताओ हम दोनों को यहाँ से किधर और कैसे चलना होगा?"

"कुछ पता नहीं और अपनी यह कलंकित देह लेकर मैं किस ठौर जाकर समाऊँगी?"

"राम राम तुमने आज तक नहीं जाना। मेरे निकट आज ही तो तुम्हारा चरित्र पावनता की अन्यतम मूर्ति बन सका है। विपत्तियाँ, और अनाचार ही तो मानव-चरित्र की स्वर्ण प्रतिमा गढ़ते हैं।"

"मैं जानती हूं तुम्हारा हृदय विशाल है परन्तु जहाँ तुम मुझे ले चलोगे उस दुनिया की सकुचित दृष्टि सारे जीवन भर सहने की शक्ति क्या मुझमें बची है?"

समाज की परवाह मत करो। मैंने कभी उसकी परवाह नहीं की। और भी कितने ही हैं जो उसकी परवाह नहीं करते। भाभी कल्याणी, चाँद, गगा और कितनी ही ऐसी हैं। उन सबको जिसकी वक्र दृष्टि नहीं दरा सकी वह तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगी।"

उसने सिसक कर कहा—नहीं मुझमें वैसा साहस नहीं हैं। न अब इस दुर्दशाग्रस्त जीवन का सुन्दर अभिलाषाओं से शृंगार करना है। यदि भगवान् ने चाहा तो अगले जन्म में वे मुझे वह सब देंगे जिसकी कामना बचपन की भोली घड़ियों में कभी की थी। इस पर मेरा अटल विश्वास है।

मैंने उसे समझाने की गरज से कहा—प्यारी बिट्टो!

मैं जो कहने जा रहा था वह असमाप्त ही रह गया। एक फौजी गाड़ी की घड़घड़ाहट के साथ ही बन्दूकों के कुछ फायर सुनाई दिये और थोड़ा सा सघर्ष हुआ—पुलिस हमारी रक्षा को आ पहुंची थी। कुछ मिनटों की प्रतीक्षा के बाद हमने अपने को आततायियों से मुक्त पाया। मैंने बिट्टो से कहा—भगवान की बड़ी बड़ी बाहें हैं, इस पर अब तो विश्वास करोगी?

उसने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वह किसी दुर्वह विचारधारा में डूबी थी। केवल उसकी वे दोनों बड़ी बड़ी चिरपरिचित आखें, जिन्होंने मोहनपुर में दुआरे के यहाँ एक दृष्टि में मुझे पालतू बना लिया था, मेरी ओर एकटक ताक रही थीं। उनमें कौन सा मर्म भरा था यह मैं जान न पाया।

मैंने उसके कधे को हिलाकर पूछा—बिट्टो, क्या सोच रही हो? कहाँ खो गई हो सुन?

मैं सोच रही हूं—कहकर वह चुप हो गई, आगे कुछ कहा नहीं। दो चार मोती उसकी आँखों से निकलकर पलकों पर प्रकट हो गये।

बाहर पुलिसदल शीघ्रता कर रहा था। मैंने बिट्टो से कहा—तुम्हें क्या डर है वह मैं जानता हूं। उसे छोड़ो, उठो। वह तुम्हारा डर मिथ्या है। क्या तुम मुझ पर भी भरोसा नहीं कर सकतीं? यदि समाज तुम्हें वक्र दृष्टि से देखेगा तो हम उसे त्याग देंगे और ऐसे देश में चलकर रहेंगे जहां सतप्तों की दशा पर कटाक्ष नहीं किया जाता। उन पर रहम किया जाता है। उन्हें प्रेम के साथ हृदय से लगाया जाता है।

मेरी बातों से वह उत्साहित नहीं हुई। मिट्टी की प्रतिमा की भांति विजड़ित बैठी रही। केवल उसकी आंखों से नि सृत अश्रुप्रवाह ही बता रहा था कि अभी तक उसकी काया में जीवन का स्पन्दन शेष है।

पुलिस रक्षक-दल अपने कार्य मे व्यस्त था। बिट्टो की तरह ही दुर्भाग्य की सताई जो लड़कियां उसे मिलीं उन्हें गाड़ी मे चढ़ाना एक समस्या थी। उनमें से अधिकांश यह निश्चय नहीं कर पा रही थीं कि इस प्रकार ले जाई जाने पर उनका भविष्य क्या होगा? उन्हें समाज स्वीकार करेगा? घर के लोग उन्हें दुरदुरायेंगे तो नहीं? असमंजस की दशा में ही उन्हें गाड़ी पर चढ़ाया गया। मैं भी बिट्टो का हाथ खींच कर उसे गाड़ी तक लेगया और बलपूर्वक चढ़ा दिया।

पत्थर की प्रतिमावत् वह अपने स्थान पर बैठ गई। मैंने गाड़ी के भीतर की घुटन को दूर करने के लिए कहा—बिट्टो, देखो एकाएक आसमान कैसा निर्मल होगया है।

बिट्टो की आंखों की जड़ता को मेरी बात दूर न कर सकी परन्तु समीप बैठी कौशल्या का मुंह आकाश की ओर उठ गया। क्षणभर क्षितिज पर टकटकी लगाने के बाद वह बोली—सच ही तो, सारे दिन की धूमिल छाया कहां चली गई?

मैंने कहा—आकाश हमारे भावी जीवन का दर्पण हो रहा है।

दूसरी लड़कियां भी हमारी बातचीत से खिचकर अपने भावों की जड़िमा से जाग उठीं। उन्होने जैसे आकाश की प्रसन्नता और उल्लास को पढ़ लिया। उनके चेहरों पर छायी सघन उदासी का आवरण क्षणमात्र के

लिए हट गया। बिट्टो का म्लान मुख परन्तु ज्यों का त्यों घटाच्छादित बना रहा।

अपना प्रयत्न विफल होते देखकर मैं चुप होरहा। मुझे समझ में नहीं आने लगा कि कैसे अपनी बाल्य सहचरी को मैं उस अवस्था से बाहर निकालूँ।

मैंने उसके कान के समीप अपना मुँह करके आश्वासन के तौर पर कहा—अपनी गाड़ी के पहिए की ही भाँति जीवन का चक्र भी घूम रहा है। इस दुनिया में जो कुछ है वह सभी ऊँचा-नीचा होता रहता है। किसी एक अवस्था पर विश्वास करके उसे स्थायी मान लेना भूल है। जीवन की यह सबसे बड़ी विडंबना है।

निरंतर खामोशी में मेरी शब्दावली लीन होगई। कौशल्या यह देखकर व्यथित हो उठी। उसने बिट्टो के कंधे पर हाथ रखकर मृदु कंठ से कहा—बहिन, चिन्ता क्यों कर रही हो? इस तरह हमारी जिंदगी कैसे कटेगी?

बिट्टो जैसे सोते से जाग पड़ी। वह कौशल्या के मुँह की ओर स्थिर दृष्टि से अवलोकन करती रही। उसकी इस समय की मुद्रा को देखकर मुझे भय होने लगा।

तेजी से चलती हुई हमारी गाड़ी बाईं ओर मुड़ गई। अचानक सामने से आता हुआ शीतल हवा का झोंका हम सबको झकझोर गया। बिट्टो में भी जैसे जीवन का स्पंदन आया। उसने एक बार गाड़ी में बैठी सब मूर्तियों पर दृष्टि डाली, फिर मेरे म्लान मुख की ओर देखा, उसका अन्तर जैसे आहत होगया। विगत जीवन की रुद्ध वेदना से उन्मथित उसका मन काबू में न रह सका। उसने अपनी देह को अवश छोड़ दिया। मेरे कंधे पर अपना सिर झुकाकर वह असहाय सी हो रही। लज्जा और संकोच उसे रोक न पाये। अपनी दाहिनी बाँह से वेष्टित करके उसके शिथिल शरीर को मैंने सहारा दिया और कहा—बिट्टो, क्यों कैसा लग रहा है?

विट्टो अश्रुविगलित वाणी से बोली—मैं कैसी अभागिन हूँ। सदा ही तुम्हें दुःख में डालती रही हू। आज भी मेरे दुर्दिन में भाग्य ने तुम्हें मेरे समीप ला दिया है।

मैं—छि, ऐसा क्या सोचती हो ?

"तो क्या सोचू ? जीवन का पथ चारो ओर से अवरुद्ध होगया है। सास लेने को अवकाश नहीं है। मेरा उद्धार करके अब कहा ले जाओगे?"

"कुछ भी अवरुद्ध नहीं हुआ है। तुम व्यर्थ दुखी होती हो।"

"मेरा मन किन्तु आश्वस्त नहीं हो पाता।"

"उसे आश्वस्त करो। मेरे ऊपर भरोसा करो। उस ईश्वर पर भरोसा करो जो सब कुछ सहने की शक्ति देता है।"

"यही तो कठिन है। ईश्वर के निकट पहुचने की पवित्रता अब कहां पाऊगी ? यह कलकित काया "

"काया कलङ्कित नहीं होती। मदिर अपवित्र नहीं होता। मन रूपी देवता जिसमें प्रतिष्ठित है उसे कौन अपवित्र कर सकता है ? तुम इस धारणा को ही हृदय से निकाल दो। बोलो, कर सकोगी ?'

"प्रयत्न करूगी। तुम कहते हो तो करके देखूगी। तुम पर अविश्वास कैसे कर सकूगी ?"

इतना कहकर वह चुप होगई किन्तु उसका हृदय उमड़ता रहा और भीतर तरल अश्रुप्रवाह अविरल गति से बहता रहा। मेरे कधे पर छलछल करके मानस मोती गिरते और मुझे भिगोते रहे। अकथनीय आनद की वेगवती सरिता में मैं न जाने कितनी देर तक स्नान करता रहा। हमारे साथी और साथिनें स्तब्ध होकर इस दृश्य को देखते रहे।

छत्तीस

समाज का शासन कितना कठोर और भयावह है। वह किसी पर दया नहीं करता। वह लोहे के हाथों से अपने बनाये नियमों का पालन कराता है। दुर्बल मानव हृदय संस्कारों के पाश में बुरी तरह जकड़ा है। वह मुक्ति की चाह तो करता है पर समाज की दासता से छूट नहीं पाता। उसके फौलादी पंजे से न उसका तन मुक्त हो पाता है न मन। मैंने कितना यत्न किया। कितना बिट्टो को समझाया। इतिहास, पुराण, शास्त्र, वेद से कितने हवाले दिये। लेकिन मैं उसे यह विश्वास न करा सका कि जो काम उसने इच्छा से नहीं किया, बलात् उससे लिया गया है, उसके लिए पाप और पुण्य का प्रश्न ही नहीं उठता। उसका फल उसे छू भी नहीं सकता। संस्कार विमर्दित उसके मन में यह बात जम गई थी कि उसका लोक परलोक सब कुछ नष्ट हो गये हैं। आततायियों के अत्याचार की शिकार होने से उसकी सहज पवित्रता कलंकित हो चुकी है। अब इस शरीर से कोई पवित्र कार्य कर सकने का उसका अधिकार इस जीवन में लुट चुका है। नया जीवन, नया शरीर, पाये बिना उसकी यह काया अकारथ है।

खाना, पीना, सोना, हँसना, बोलना जैसे उसका सब कुछ खोगया हो। विक्षिप्त-सी, व्याकुल-सी, व्यथित-सी, उन्मन सी एक उदास काली छाया में ढकी उसकी आकृति घोर घटाच्छादित सी प्रतीत होती थी। कुम्हलाई हुई कली की तरह वह म्लान हो रही थी। आकाश की ओर

ताकने लगती तो उधर ही देखती रह जाती। धरती पर दृष्टि गड़ा देती तो उसी ओर लीन हो जाती। शून्य स्थिर दृष्टि से दिशाओं की अनन्तता में डूब जाती तो मैं थकता ही रहता। मेरे मुख से निकला हुआ एक भी शब्द उसके कानों में न पहुँचता। उसके साथ जो दूसरी लड़कियां आई थीं। उनका दुर्भाग्य भी उससे मिलता जुलता ही था। उनके सामने भी उदास और निराश जीवन था। कोई उनकी जीवन-नौका पार लगाने वाला न था। वे कहां जा रही हैं, कौन उन्हें आश्रय देगा, इससे वे पूर्णतया अनभिज्ञ थीं। इसके विपरीत बिट्टो को तत्काल सहारा देने के लिए भगवान ने मुझे उसके पास भेज दिया था। उन बेचारियों के सामने तो इतना भी अवलम्ब न था। वे निरुद्देश्य यात्रा के लिए चल पड़ी थीं। फिर भी वे शांत थीं। उनके चेहरों पर इस प्रकार की निरन्तर उदासी न थी। हँसती थीं, बोलती थीं, रोती थीं और कलपती थीं, पर उनमें जीवन के प्रति एकदम उपेक्षा न थी।

मैंने उनकी ओर संकेत करके बिट्टो से कहा—क्या तुम इनकी तरह अपने जी को धीरज नहीं दे सकतीं? इन्होंने भी तो तुम्हारा सा ही दुख-दर्द सहा है। ये भी दुनिया की हिंसा और प्रतारणा को भोग चुकी हैं। परन्तु इनमें इतनी समझ है कि ये उसे अपने संकल्पित कर्मों के साथ नहीं जोड़तीं।

मेरी बातों को वह सुनते हुए भी समझती नहीं थी। अपने साथ की उन लड़कियों को अपनी आंखों से देखती पर उनसे कुछ ग्रहण नहीं कर पाती। उसकी दशा क्षीण और दुर्बलतर होती जा रही थी। उसके मुख को देखने से प्रतीत होता कि वह निचोड़े हुए वस्त्र की भांति सत्वहीन हो गया है। उसकी नैसर्गिक शोभा न जाने कहां चली गई है।

अन्त में मैंने उसे बहुत सीधी तरह समझाया—देखो बिट्टो, जिस भाग्य ने हम दोनों को ऐसे समय और ऐसी परिस्थिति में इतने अर्से बाद अचानक ला मिलाया उसका कुछ उद्देश्य होना चाहिए। अकारण इतनी बड़ी घटना नहीं घट सकती। तुम इसे निश्चय मानो कि यह विधि का

निश्चित विधान है। उसने यातनाओं की शृंखला में गुजार कर इस बात की परीक्षा ले ली है कि हम दोनों का भाग्य एक सूत्र में बँधने के लिए ही है। तुम यदि ऐसे समय अपने शरीर और जीवन के प्रति इस प्रकार उदास हो जाओगी और उनकी रक्षा न करोगी तो तुम अपने साथ ही मेरा भी अनिष्ट कर बैठोगी। इससे पहले मैंने अपनी स्वाभाविक भूलों से तुम्हें बहुत दुरदुराया है। उसी अभिशाप के फल स्वरूप मुझे इतना भटकना पड़ा। कहीं भी जीवन में मैं सुख, शांति और विश्राम नहीं पा सका। तुम्हारी अम्मा ने एक दिन जो विधना से चाहा था, हमारी बुआ ने आँचल पसारकर अनेक बार जिसकी याचना की थी, उसे मेरे कर्मों ने नष्ट कर दिया। आज विधि-विधान ने उसी संजोग को उपस्थित किया है। आज मैंने अपने खोये हुए स्वर्ग को फिर से पाया है। आज मैं उस रत्न का मोल आँकने के लिए सहज बुद्धि बटोर पाया हूँ। तुम उसे अपनी स्वीकृति देकर सार्थक करो। मेरे समर्पण को अंगीकार करने में तुम्हारे लिए कोई बाधा नहीं है। तुम पूर्ववत निष्कलंक हो, पूर्ववत् शुद्ध हो। उठो, चलो। हम दोनों अपनी नई दुनिया का निर्माण कर उन सबको सुखी करें जो हमें इस रूप में देखने की अभिलाषा करते रहे हैं।

मैंने समझा मेरे इस लंबे और भावुक वक्तव्य से उसका हृदय बदल जायगा। वह अपने निश्चय को छोड़ देगी और शेष जीवन भर मेरा साथ देने के लिए उत्साह प्रदर्शित करेगी। परन्तु उसका तो वही उत्तर था। वह बोली—तुम समझते हो कि तुम मुझे अप्रिय हो? क्या इस जीवन के प्रति मेरे मन में मोह नहीं है? मेरे जीवन व्यापी स्वप्नों की दुनिया सत्य हो रही है तब मैं अभागी उससे विमुख रहना चाहूँगी?

मैं—तो फिर उदासी छोड़ो। यों खोई खोई न रहो। मेरी ओर देखो। मुझे बल दो, स्थिरता दो, सहारा दो। मुझे उठाकर ले चलो।

उसने—अच्छा उठो।

बैठी रही।

इस बीच मैंने सोहनपुर पत्र देकर बुआ का समाचार मंगाया। उत्तर में उन्होंने बैलगाड़ी भेज दी। अब मेरे लिए वहां और अधिक रुकना कठिन हो गया। मैंने बिट्टो से कहा—आज रात को ही हम लोगों को चल पड़ना है।

उसने मेरे मुंह की ओर देखा और ठंडी सांस खींचकर चुप हो रही, इस प्रकार जैसे अब उसे किसी से सरोकार न हो।

मैंने उसकी परवाह किये बिना ही फिर कहा—बुआ अशक्त होरही हैं। उनके पाँव में फोड़ा निकला है। वे चलने फिरने से मोहताज हैं। वैसे शायद खुद ही आ जातीं। हम दोनों को अपना आशीर्वाद भेजकर उन्होंने तुरन्त बुलाया है।

आशीर्वाद भेजा है बुआ ने, हम दोनों के लिए! काश उनका आशीर्वाद मेरे लिए वरदान हो पाता—वह बड़बड़ाई।

मैंने कहा—बड़ों का आशीर्वाद सब समय ही कल्याणकर है। वह एक वरदान ही है।

वह अचल प्रस्तर-प्रतिमा सी बैठी सुनती रही।

उसकी अनुमति की अपेक्षा न करके मैंने चलने की तैयारी करदी। रात को जब आग्रहपूर्वक उसे गाड़ी पर चढ़ाया तो वह केवल इतना बोली—तुम मुझे ले तो चल रहे हो पर मैं वहां पहुँचूंगी भी? सोहनपुर में कलङ्कित शरीर लेकर मुझ से रहना हो सकेगा?

मैंने कहा—पागलपन छोड़ो। ये सपने की बातें अँधेरी रात के साथ बीत गईं। जीवन का नया सवेरा हमें बुला रहा है।

उसकी साथिनों ने अश्रुपूरित नेत्रों से हमें बिदा किया और कहा—तुम जा रही हो? जाओ, भगवान् तुम्हें सुखी रक्खे। हम लोगों का ठौर-ठिकाना देखें कहां किया जाता है?

बिट्टो ने हाथ जोड़कर और होठों में कुछ धीरेधीरे कहकर उनसे विदा ली। उसकी आखें बराबर आसू गिरा रही थीं और गला हिचकियों

से भरा था।

गाड़ी चल पड़ी। मैं अपनी चिर अभिलषित निधि को अपने पार्श्व में लिए अनेक कल्पनाओं के बोझ से बोझिल मन के साथ गाड़ी में लेटा चला आ रहा था। मेरा सिर गाड़ीवान के कंधे के पास रक्खा था। मेरे पांव गाड़ी के दूसरे पार्श्व पर टिके थे। उनके समीप ही मेरी बाल सहचरी अस्तव्यस्त दशा में बैठी थी। वह दाहिने हाथ की हथेली पर अपना माथा टेके गाड़ी के धचकों के साथ झोंके खा रही थी। उसकी पलकों से आंसू थमते नहीं थे। मेरा विचार था कि इसे अच्छी तरह रो लेने दिया जाय ताकि घर पहुंचने से पहले इसका मन हल्का हो जाय।

उनके वरदान की वाणी अभी समाप्त भी न हुई थी कि गाड़ीवान के कोहराम से मेरी नींद खुल गई। मैं चौंककर उछल पड़ा। देखा, गाड़ी गंगा के पुल पर खड़ी है और एक नारी की धुंधली आकृति पुल के किनारे फीकी चांदनी में जलधारा में कूद पड़ने को तैयार खड़ी है। मैं गाड़ी से उछलकर नीचे गया और वायुवेग से उसकी ओर झपटा पर मेरे पहुचने से पहले ही उसने छलांग लगा दी। उसके साथ साथ मैं भी नदी में कूद पड़ा। हहराती हुई अनंत जलराशि में वह कहां गिरी और मैं कहां गिरा तथा कितनी देर तक मैं उसे खोजता रहा, नहीं कह सकता। चेत होने पर मैंने अपने आपको बिस्तर पर पड़ा हुआ पाया। मेरे सिरहाने अश्रुपूरित नेत्रों के साथ बुआ बैठी थीं। मुझे आंखें खोलते देखकर वे प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरते फेरते बोलीं—रमेश बच्चा, हाय तुझे इस जीवन में अकेले रहना ही बदा है क्या ?

कुछ विशिष्ट अवसरों पर ही द्रवित होने वाली मेरी आंखें बह चलीं और मैं उनके चरणों को अश्रुजल से चुपचाप न जाने कब तक अभिषिक्त करता रहा। सुदूर बचपन से लेकर अबतक की अगणित सुखदुख की स्मृतियां एक एक करके मेरे सामने सजीव हो उठीं। उनसे एक ही बात मेरे मन में आती है कि यह जीवन पाप और पुण्य का, हार और जीत का, अद्भुत परिणाम है। इसके प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता, मोड़ भी नहीं सकता।—और उसमें वह मगरमच्छ हर कदम पर बैठा हुआ अपने ग्रास की प्रतीक्षा कर रहा है। मेरी सखी मेरी सहेली, मेरी रानी उसी की मुखकन्दरा में चिरविश्राम पाने को चली गई प्रतीत होती है ?—मेरे भाल के शिलालेख पर अंकित है मेरा एकाकी जीवन, और वह अमिट है—उसे मिटाने वाली इस दुनिया में कोई जन्मी भी है या नहीं कौन जाने ?

समाप्त